

प्रेषम सस्करण १६५७  
मर्वाधिकार सुरक्षित  
मूदय ६)

प्रकाशक :  
वेवेण्ड बाहरी  
भारती प्रेस प्रकाशन  
१०, दरभंगा रोड,  
इलाहाबाद-२



मुद्रक :  
ईस्टर्न प्रिण्टर्स,  
२२-बी, चार्नहिल रोड,  
इलाहाबाद

★  
निस्दसाज :  
मृगशी राजा एण्ड बरर्स  
होवेंट रोड,  
इलाहाबाद

## पुरस्कथन

हिन्दी-काव्य उस नदी के समान है जो पहाड़ों से उद्भवती-कूदती, रेत और मिट्टी बहाती, बनकर करती और अपने घंडर छोटे-छोटे बीजों भावों को समेटती हुई भोजपूर्ण रूप में पहले मैदान में प्रवेश करती है जहाँ उसकी गति धीमी, गंभीर और स्वस्थ होती चली है (कभी-कभी नैवर अवश्य पड़ने है— बाड़ भी घा जाती है), उसके पेटियाँ मिचती हैं, प्राणी-जगत का उपहार होता है और उसके किनारे घाट बनते हैं, नगर लड़े होते हैं, बाग-बगीचे लगते हैं, किनारियाँ बनती हैं, परन्तु वह चली ही चली है अपने में मे शायाएँ छोड़ती और अनेक बड़ी-बड़ी नदियों को अपने में मिचाली हुई। फिर वह उस प्रियतम समुद्र में मिल जाती है जिस की धोज में वह हजारों मीलो से चल कर आई थी।

हिन्दी का धार्मिक साहित्य धीरकाव्य है। उसमें धोज है, उद्भव-कूद है परंतु वह है, शाह-बंशाह भी है, उस में काव्य रस भी है। यह काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी भावना महा प्रेमर रही है। धार्मिक काल में, शृंगारी काल में एवं आधुनिक काल में धीररत्नपूर्ण कविताएँ प्रेमरों के समान हिन्दी-साहित्य की नदी में चली ही रही है। अतः, इन का रूप अवश्य बदलता रहा है।

फिर धार्मिक काव्य का युग आया। हिन्दी साहित्य में गंभीरता, धार्मिक और स्वस्थता आई। इसमें प्राणीमात्र के उपहार की भावना उठी। इसकी अनेक शायाएँ चली—ज्ञान-मार्ग, भक्ति-मार्ग, रामोत्तमाना, कृष्ण-भक्ति, शृंगार इत्यादि। आगे चलकर ध्यानावाद और रहस्यवाद भी इसी में निरने—काव्य अपने प्रियतम की गोद में जाने को विद्वान हो उठा—फिर प्रकृति और पुरुष बिना ही गये। परन्तु इस विनन में जहाँ युग और धार्मिक का अनुभव हुआ, वहाँ अपने प्यारे देश के विद्वानों का दुःख भी हुआ। अंत में जाने में पहले भी यह भावना काव्य-नदी में जागृत थी। परन्तु विजोगावस्था में यह भावना नष्ट उठी। काव्य में नई शैली, नई भाषा का रुच उठा। जिस प्रकार समुद्र का जल उड़कर फिर बादलों के रूप में बार बार नदी में धारित घा जाता है उसी प्रकार हिन्दी-काव्य का प्रतिवर्तन प्रगतिवाद और धीरभावना के रूप में हमारे सामने आया। यही इस काव्य के एक हजार बरस का भविष्य इतिहास है।

काव्य की इन्हीं अवस्थाओं का ऐतिहासिक विवेचन इन पृष्ठों में दिया गया है। वीर-काव्य की प्रारम्भिक पद्धति क्या थी, पीछे किन भावनाओं का समय-समय पर सन्निवेश हुआ, किन सैलियों का त्याग और किन का विकास हुआ, प्रक्रिया में कौन-कौन से परिवर्तन हुए, युगों के बीच से होकर प्राधुनिक काल में 'वीरता' की परिभाषा क्योंकर बदली और भाव तथा भाषा में क्या नवीनता आई—इन सभी बातों का विवरण एक ही प्रकरण में दिया गया है ताकि कविता की विशालता, अनेकरूपता और धामता का अनुमान हो सके। इसी प्रकार धार्मिक काव्य का दूसरे प्रकरण में और श्रृङ्गारी काव्य का तीसरे प्रकरण में आदि से लेकर धन तक क्रमिक विकास दिया गया है। इस से काव्य-साहित्य का एक व्यापक चित्र हमारे सामने उपस्थित हो गया है और काव्य के रूप भी निखर गये हैं। प्राधुनिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बहुमुख हैं इस लिए उनकी चर्चा अलग भी करनी पड़ी है। जैसे तो प्रत्येक काल में भिन्न-भिन्न विषयों पर कविताएँ होती ही रही हैं, परन्तु धाजकता की सी स्वच्छंदता पहले न थी। इस स्वच्छंदता और खड़ी बोली काव्य का एक साथ उदय होना हमारे साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना थी। संघाति-काल (हरिद्वय-युग और द्विवेदी युग) में जो-जो प्रयोग हुए उनका उल्लेख किये बिना छायावाद-रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की परंपरा का मूल्यांकन करना कठिन था। इस प्रकरण में कुछ-कुछ पुनरावृत्ति हो गई है, परन्तु इसके बिना काम नहीं चल सकता था।

समस्त पुस्तक में यह भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि परंपरा और परिस्थिति का साहित्य पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है।

सैली के अन्तर्गत विषय-प्रतिपादन, भावाभिव्यक्ति का ढंग, काव्य की टैक्नीक, भाषा-प्रयोग, छंद-योजना, रसालंकार-विधान, सब पर विचार किया गया है।

काव्य और प्रक्रिया की भिन्न-भिन्न सैलियों का स्पष्टीकरण उदाहरणों द्वारा कर दिया है। ये उदाहरण कवियों का व्यक्तित्व दिखाने के लिए नहीं, अपितु भाव, भाषा और कविता के भिन्न-भिन्न प्रकारों का परिचय देने के लिए चुने गये हैं। विभिन्न धाराओं की रचनाओं की सूचियाँ भी जगह-जगह उसी उद्देश्य से दी गई हैं। यह इतिहास नहीं, "कविता" का ऐतिहासिक अध्ययन है—इस कारण जिन कवियों के नाम हममें नहीं आ गये उन्हें शिकायत नहीं होनी चाहिये।

इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है कि हममें हिन्दी-काव्य की प्रत्येक धारा का साद्योगान्त वर्णन है। हिन्दी के सारे काव्य-साहित्य का विकास विवे-विश्रुति दिया गया है। कविताओं के विविध और प्रतिनिधि उदाहरण देने की

चेष्टा की गई है । इस दृष्टि से यह एक अमूल्य काव्य-संग्रह भी है । काव्य हमारे साहित्य का अत्यन्त पुष्ट अंग है और उच्च कोटि का है । भारत के साहित्यी ही में नहीं, विश्व-साहित्य में इसका गौरवपूर्ण स्थान है । इस पर बड़ी सहानुभूति और आत्मनिष्ठा के साथ विचार किया गया है । जहाँ इसके गुणों और विशिष्ट सत्त्वों को उभार कर रखने का प्रयत्न किया गया, वहीं इसकी नुटियों और हीनताओं को स्पष्ट करने में संकोच भी नहीं किया गया । पुस्तक की पद्धति ऐतिहासिक भी है और साहित्यिक भी, किन्तु है संयत और प्रासंगिक । किन्तु भी विषय पर बहुत सम्यक्-सम्यक् व्याख्यान नहीं दिये गए । अनावश्यक रूप से धारों को मूल देना उचित नहीं समझा गया । मंदान्तिक पक्षों पर भी आवश्यकता से अधिक नहीं लिखा गया । सूत्र रूप में छोटे-छोटे, सरल और अर्थगर्भित वाक्य रख दिये गये हैं । विषय-प्रतिपादन वर्णनात्मक नहीं है, विचारान्तरिक है । इन हम समझते हैं कि इस पुस्तक की अपनी उपादेयता होगी ।

पुस्तक की तय्यारी में हमें अनगिनत पुस्तकों में महायत्ना मिली है । सर्वश्री रामचन्द्र शुक्ल, डा० व्यासगुप्तर दाम, आनिप्रिय द्विवेदी, कृष्णशंकर शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा डा० रामशंकर शुक्ल गगान, डा० लक्ष्मीनारायण बाण्येय, डा० श्रीकृष्णलाल, डा० यशदेवप्रसाद, डा० केमरीनारायण शुक्ल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० नरेन्द्र, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० विनयमोहन शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, डा० माला प्रसाद गुप्त, श्रीमृप्रकाश अग्रवाल, डा० धर्मवीर भारती, डा० टीकम-सिंह तोमर, पं० परमुराम धनुर्वेदी, डा० मुन्शीराम शर्मा, डा० राजेश्वर वर्मा, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, डा० सत्येन्द्र, डा० रामरत्न भटनागर, डा० भोलानाथ, पं० नन्दकुमार बाजंशी, लक्ष्मीनारायण वर्मा और दूसरे जीसियों आलोचकों की कृपियों को हमने ध्यान में रखा है, और कुछ-एक की राशियों को दिया भी है । हम उन सब के अनुगृहीत हैं ।

—लेखक

# विषय-सूची

[ १ ]

पृष्ठभूमि

वैदिक काव्य, १; मस्तूत काव्य, २; प्राकृत काव्य, ६; अपभ्रंश काव्य, ८ ।

[ २ ]

वीरकाव्य

परंपरा, १३; चारणो का राजपूत वीरकाव्य, १३, हिन्दू वीरकाव्य, २२; राष्ट्रीय उत्थान, ३३ ।

[ ३ ]

धार्मिक काव्य

परंपरा, ४८, शान्तिकाव्य, ५४, भूमी काव्य, ७४, सगुणवाद, ८८; राम-काव्य, ९२; कृष्णकाव्य, १००; भक्तिपूर्ण कृष्णकाव्य, १०१; रीतिकालीन कृष्णकाव्य, १११; आधुनिक काल की कृष्ण-कविताएँ, ११८; सामान्य भक्ति, १२४ ।

[ ४ ]

शृंगारिक काव्य

प्रेमार्थान, १२५; मुक्तक प्रेमकाव्य, १२७, रीतिकालीन शृंगारिकता, १२९, संवाति काल की शृंगारिक कविता, १४४, नवीन प्रेम-काव्य, १४८ ।

[ ५ ]

स्वच्छंद कविता

पारल, १६१, पारम्भ, १६२, द्वितीय उत्थान, १७१; द्विवेदी युग का महत्त्व, १७७; आधुनिक काव्य, १८६ ।

[ ६ ]

काव्य के बाद

वादों का समन्वय, १९४, छायावाद-रहस्यवाद, १९६; छायावाद, २००; रहस्यवाद, २०४; छायावाद और रहस्यवाद का संतुलन, २०६; प्रगतिवाद, २२३; प्रयोगवाद—नई कविता, २३५ ।

हिन्दी की काव्यशैलियों  
का  
विकास



The Development  
of  
Styles in Hin Poetry



## पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य का आरम्भिक रूप वेदों में उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य की अनेक स्थितियाँ हैं—महिलायें, ब्राह्मण ग्रन्थ, धारण्यक, उपनिषद्, वेदांग, दर्शनशास्त्र और धर्मशास्त्र। इन में ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदांग और वैदिक काव्य दर्शनादि सूत्र ग्रंथ गद्य में हैं। प्रायः धर्मशास्त्र हैं तो पद्यवद्ध, किन्तु उनमें काव्यत्व की मात्रा बहुत कम है। उपनिषदों में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौशीनकी विषयवस्तु की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं, ये सब गद्य में हैं। केन और आष्विन उपनिषदों के कुछ भाग गद्य में और कुछ पद्य में हैं। ऋग्वेद, ईश, इवेताम्वतर, मुण्डक और महानारायण पद्यमय हैं। पर इन में भी विषयवस्तु की गम्भीरता के कारण काव्यसौन्दर्य का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ऋग्वेद की ऋचाओं में यजुः सुन्दर काव्य के दर्शन होते हैं। ऋचाओं की संख्या १०१० है। अधिराज ऋचायें गायत्री छन्द में हैं, अथवा गायत्री और जगती के मिश्रित रूप में। सामवेद में बहुत सुन्दर और हृदय को छूने वाली गंधर्वगीत गीतियाँ मिलती हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में जो देवी-देवताओं के गीत, दानगीत राजाओं की स्तुतियाँ, गाथक की प्रायः-नाएँ हैं वे भारतीय काव्य के प्रथम निदर्शन हैं। इन में इन्द्र और अग्नि के वर्णन में घोष, वरुण के वर्णन में मधुरता और उषा के वर्णन में सुकुमारता के दर्शन होते हैं। वैदिक ऋषि कठोर बात को कोमल शब्दों में कहने का धाँदा है। उस में



उत्तम और हर्ष का भाव प्रबल है। वेद में निराशावादी स्वर कहीं नहीं मिलता। वर्णन प्रायः यथावत् है, पर कहीं-कहीं अत्युक्ति भी है। अलंकारों में उपमा का प्राधान्य है और प्रायः उपमाएँ मनुष्य जीवन से सम्बद्ध हैं।

किन्तु, यह मानना पड़ेगा कि वैदिक साहित्य में काव्य का इतना महत्व नहीं है जितना कि यक्ष का। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस साहित्य में विषय प्रधान है और धार्मिक है। उस में भावपल और लीरिका की कमी है। वैदिक साहित्य में कोई काव्यशैली विकसित होकर आगे नहीं बढ़ी। वैदिक साहित्य के छंद, धर्मकार, वर्णन, आदि सब विशिष्ट हैं। अतस्त वेद के विषय अवश्य चलने रहे हैं। वेद की उत्तमपूर्ण धार्मिक भावना, ब्राह्मण ग्रन्थों का ब्रह्मन्, वेदान्त की जीव, ब्रह्म, प्रकृति और आत्मा की जिज्ञासापूर्ण प्रवृत्ति, उपनिषदों की रहस्यमयता, दर्शनशास्त्रों का धर्माचार परवर्ती भारतीय काव्य में स्थान पाता रहा, पर काव्यशैली की दृष्टि से वैदिक काव्य का प्रभाव नगण्य कहा जायगा। साहित्याचार्यों ने तो बाल्मीकि ही को आदि कवि माना है, किसी वैदिक ऋषि की नहीं।

यात्मीकृत रामायण से महाकाव्य का आरम्भ होना है। कुछ आचार्यों ने महाभारत और पुराण के साथ रामायण को भी इतिहास के अन्तर्गत लिया है।

पुराणों में कथावर्णनों के अलावा अनेक धार्मिक व्यवस्थाओं की संस्कृत काव्य रचना हुई है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, अविष्यत् और ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा की; विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म, और वाराह पुराण में विष्णु की, एव मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, वायु, स्कन्द और अग्नि-पुराण में शिव की प्रगल्भा हुई है। इन पुराणों में वर्णित कथाओं, वर्णन-शैलियों और धार्मिक आस्थाओं का बहुत गहरा प्रभाव परवर्ती प्राकृत, अपभ्रंस और हिन्दी के साहित्य पर पड़ा है। महाभारत का प्रभाव भी खगभग इसी तरह का रहा है। इसके अतिरिक्त महाभारत, भगवद्गीता, शकुन्तला, मत्स्योपाख्यान, रामायण, ऋष्यभृगु की कथा, राजा शिव का उमान्यास, द्रौपदी-हरण, मावित्री-नाट्यवान् की कथा, नर्तकान्यास एवं हस्विना (शृण्वरिण) भी परम्परा के रूप में महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक साहित्याग रहे हैं। किन्तु रामायण का काव्यगत प्रभाव अपूर्व और व्यापक रूप में पड़ा। संस्कृत में निम्नलिखित महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं—

काव्यशैली	रघुवन्, कुमारवन्धव ।
अवधारण	बुद्धचरित ।
भारविहृत	किरातार्जुनीय ।
भाषण	शिशुपालवध ।

हर्षकृत	नैयधचरित ।
भक्तहरिकृत	भट्टिकाव्य ।
कविराज पद्मिनीकृत	राघवपाण्डवीय ।
पद्मगुप्तकृत	नवसाहस्रनामचरित ।
रत्नाकरकृत	हरविजय ।

कालिदास का 'मेघदूत' और विश्वम्भर की 'चौरपञ्चाशिका' महत्वपूर्ण और प्रामाणिक साहित्य हैं ।

मुक्तिका में शत्रुघ्नहर्ष, पटवर्धन, शृंगारतिलक, शृंगारशतक, धर्मशतक और गीतगोविन्द उल्लेखनीय हैं ।

नीति-काव्य में नीतिसतक, बंगम्पसतक, नीतिमञ्जरी और शान्तिशतक गिनाये जा सकते हैं ।

संस्कृत में अनेक स्तोत्रग्रन्थ हैं जो वैदिक परम्परा में आते हैं । पौराणिक स्तोत्रों की परम्परा भी भिन्न नहीं है । इन परम्परा में जैन और बौद्ध स्तोत्र भी आते हैं ।

वैदिक साहित्य की अपेक्षा संस्कृत साहित्य में काव्य का अधिक महत्व है और इस में भी महाकाव्य का प्राधान्य है । महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण 'साहित्य दर्पण' में वर्णित हैं—

सर्ववर्णो महाकाव्यं तत्रैको नामकः शूरः ।  
 सत्वंशः सत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥  
 एषवंशभवा भूषाः कुलजा वर्ययोगि वा ॥  
 शृंगारधीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते ।  
 अगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाट्यसंधयः ॥  
 इतिहासोद्भूय वृत्तमन्यद्वा सज्जनान्धयम् ।  
 आदौ नमस्त्रिभुवनैर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।  
 क्वचिन्निगदा सत्तावीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥  
 एषवृत्तमयः पद्यैरवसानेऽथवृत्तकैः ।  
 नातिव्यव्या नातिवीर्याः सर्गा अप्याधिका इह ।  
 सान्ध्याग्रामेन्दुरगनीप्रदोषध्वान्तवातराः ।  
 प्रातर्मध्यार्द्रमुषणशतनुवनसागराः ॥  
 गङ्गाविप्रवन्धनी च मुनिदण्डपुराप्यराः ।  
 रत्नप्रदाणोपममन्त्रप्रोदपादयः ॥  
 वर्णनोदा वसायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥

## अर्थानु

महाकाव्य सगों में विभाजित होता है। उस में एक नायक होना चाहिये जो कोई देव हो अथवा अच्छे वन का स्वयं हो—धीर, उदार धीर गुणवान्। अनेक नायक हो तो एक ही वन में उत्पन्न राजा हो। शृंगार, वीर, सान्त् रसों में से एक की प्रधानता हो, सोंप रस गौण हो। नाटक की मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विपक्ष और निर्वहण नाम की पांच सधियाँ महाकाव्य में होनी चाहिये। कथानक कोई ऐतिहासिक विषय अथवा सज्जन-वृत्तान्त होना चाहिये। आरम्भ में भस्कार आशीर्वाद हो अथवा कथानक ही कहा जाये। कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का सापुवाद हो। एक सगं में एक ही छंद हो, परन्तु मर्म के सत में छंद बदल जाना चाहिये। सगों को सख्या घाठ से अधिक होनी चाहिये। सगं न छोटे हो न बहुत बड़े। निम्ननिम्न विषयों का वर्णन यथायोग सागोपाग होना चाहिये—मन्त्र्या, मूर्ख, अन्ध, रात्रि, सायंकाल, अधकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वण, वन, समुद्र, भोग (नायक-नायिका का मिलन), विप्रसम्भ (नायक-नायिका का विवाह), मृति, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध के लिए प्रस्थान, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रजन्म।

वाल्मीकि का आदिकाव्य मरुत भारती का गौरवशाली निकेतन है। मर-मत्ता और स्वाभाविकता के साथ-साथ नाना रसों का संकुल समन्वय, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, धर्मशास्त्रीय, स्वाभाविक धार्मिकता, मानव और मानवतर प्रकृति का मस्तिष्क वर्णन एवं गुरुविपुल प्रवृत्त-व्यपना इसकी अपनी विशेषता है। कालिदास में इसी सुकुमार शैली का उत्कर्ष मिलता है। कालिदास प्रकृति के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी कविता की समशीलता का यह मुख्य कारण है। उस में धनकारों का गौरव और पशुवन् की मनोरमता तो है, साया का भद्रकीर्माण भी है। भारवि ने महाकाव्य में अलंकार-बहुल शैली का प्रवेश किया। वाल्मीकि और कालिदास में विषय की विज्ञापता है। 'रघुवंश' के १६ सगों में दिमीय से लेकर अभिवर्ण तक शेषकुल की कई शोधियों का वर्णन हुआ है। किन्तु भारवि ने धनु के किरात के पास जाने और उसमें युद्ध करके अस्व र्छान सेने की कथा को २० सगों में कह डाला है। प्रकृति का वर्णन बहुत विस्तृत है। अर्थात् के बाद बचावस्तु कम होने लगी और विस्तार अधिक। भारवि और उनके बाद का काव्य धनकार-भार से लदा है। इस धनकुल शैली का उत्कर्ष भाष में प्राप्त होता है। पद्यपुन और धोर्ष ने तो वाल्मीकि की प्रगाढ़-गुणयुक्त समशील शैली को धननाया, किन्तु वहीं-वहीं धनवृत्त शैली के नमूने भी प्रकाश दिये। धनकुल शैली का प्रतिनिधि काव्य 'हरविजय' है। इन में और परवर्ती कवियों में प्रकृति-चित्रण का गौरव वहीं है। वहीं-वहीं समशीलता भी

नहीं है। अलंकृत शैली का विकट रूप तब सामने आता है जब एक ही प्रबन्ध में राम और धनुंन दोनों की कथा बतानी चलती है। एक-एक श्लोक से दो-दो तीन-तीन प्रथं निकलने लगते हैं। ऐसे महाकाव्यों में घनश्रव्य का 'द्विमन्वान', विद्या-भाष्य का 'पार्श्वतीर्यमख्यौय' और कविराजसूरि का 'राधवपाण्डवीय' मुख्य हैं। इनमें पाण्डित्य का प्रदर्शन है और काव्य का नितान्त अभाव।

साहित्यदर्पणकार पंडित विश्वनाथ ने खण्डकाव्य का साराग लिया है—'मनु घटनाप्राधान्यात् खण्डकाव्यमिति स्मृतम्। अन्यत्र यह साराग भी मिलता है कि 'खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च।' इस प्रकार खण्डकाव्य में एक ही घटना होती है और उस में मानव जीवन के एक ही पहलु पर प्रकाश डाला जाता है। उस में महाकाव्य के अन्य गुण पूर्णतया विद्यमान रहते हैं। गम्भीर में मेघदूत के अनुकरण में अनेक 'संदेश-काव्य' लिखे गये हैं। प्रायः खण्डकाव्य का संस्कृत साहित्य में बहुत महत्त्व नहीं रहा। लेकिन इसकी परम्परा बगबग चलती रही है। वैष्णव और जैन कवियों ने अपने मिष्ठान्तों की व्याख्या के लिए काव्य के इस रूप को विशेष करके अपनाया—'उपवसतक' इसका उन्मूलन निदर्शन है।

गम्भीर में मुक्तक काव्य की कभी नहीं है, लेकिन प्रायः यह गमता जाता रहा है कि मुक्तक में तो वह रसपूर्णता आती है और न ही वह काव्य-शौन्दर्य जो कि महाकाव्य का प्राण है।

सामान्यतः संस्कृत के अधिवक्त्र कवियों का सम्बन्ध वैभवशाली महोपाता के साथ रहा। राजाघों के दरबार बस्तुन कला-कौशल-साहित्य-भोगों के प्रधान केन्द्र थे। संस्कृत काव्य इन राजाघों, मामन्तो और धनी-भानी लोगों की मस्तुति के चिन्नों में भरा है। तत्त्वानीन गिष्ट अमात्र की दृष्टि तथा प्रवृत्तियों का सर्वोत्तम रूप इस काव्य में उपलब्ध होता है। यह काव्य लिखा ही गया है नितान्त गम्भीर, गिष्ट, अमात्रवीण, रसिक नागरिक के लिए। लेकिन ऐसा नहीं है कि ये कवि साधारण जीवन से अनभिज्ञ थे अथवा उनके प्रति उपेक्षापूर्ण थे। अनेक काव्यों में दीन-हीन लोगों, दृष्टि बिगानों, धान के भेन की रगड़ानी करने वाली धाम-बपूटियों, पहरा देने वाले मिनाहियों, निर्धन बालक्यों, मापुओं, गन्दारियों और दूसरे लोगों का बड़ा अनुभूतिपूर्ण वर्णन मिलता है। इन कवियों की महानुभूति मानव तब ही सीमित नहीं है, पशुपक्षियों और पेड़पौधों के साथ भी इनका गामक्य है।

प्रायः रसगिष्ठ कवि बाह्य शौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक शौन्दर्य के चित्रण में दक्ष हैं। किन्तु, उत्तर काल के कवियों में काव्य की अपेक्षा कला और विद्वान् दृष्टि होती गई है। उनका काव्य धरंवारों और धरों की विविधता के प्रकाश

में उलझ गया है। वे अपने कल्पना-चातुर्य और अपनी लेखनशैली की पटुता में पाठकों को मोहित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। उनका काव्य अधिकाधिक कृत्रिम, कठिन और जटिल बन गया है। यह रीतिबद्ध बनावटीपन प्राकृत साहित्य के उदय के बहुत पीछे गंस्कृत काव्य में आया।

पालि में कथावर्णन और पौराणिक पद्धति का विकास भले ही हुआ हो, काव्यशैलियों पर कोई विशेष प्रभाव ग्रहण नहीं किया गया, क्योंकि पालि भाषा में गद्य साहित्य का प्राधान्य है। त्रिपिटक साहित्य उपदेशात्मक और प्राकृत काव्य गद्यमय है। केवल पद्य में रचित गद्य 'गाथा' है। गाथा की

परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश में चलती रही है। इसी में कालान्तर में 'दोहा' शैली का विकास माना जाता है। नावगाहित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण पालि साहित्य में उपमाओं का अनुठापन, जनमाधारण के जीवन का स्वाभाविक चित्रण, भाषा और शैली की अद्वितीयता विशेष दर्शनीय है।

मध्यकालीन प्राकृत का अधिकांश साहित्य जैनधर्म-सम्बन्धी है और पद्यप्रधान है। काव्य कुछ तो मुख्यतः गीतों के रूप में गंस्कृत नाटकों में उपलब्ध होता है और कुछ 'मैतुवन्ध', 'शौडवहो', 'गाथासप्तशती', 'वज्रालाङ्ग' प्रभृति ग्रंथों में। यह काव्य लगभग सारे का मारा माहाराष्ट्री प्राकृत में है। जैन-काव्य अन्य प्राकृतों में भी मिलता है। जैन प्रबन्ध रचनाशैली की दृष्टि में लौकिक काव्यों की कठिनाई में ही आते हैं। उन पर बहुत शीघ्र-सा आवरण धार्मिकता का रहता है। कथा-वस्तु प्रायः लौकिक है, कभी-कभी अद्वैतिहासिक है। केवल अन्त में प्रधान पात्रों को जैनधर्म की ओर प्रवृत्त होते दिखाया जाता है। जैन-कथा 'लीलावर्द्ध' और लौकिक कथा 'मुरमुन्दरी' की शैली और प्रबन्धान्यकता में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। हेमचन्द्रवृत्त 'कुमारपाल-चरित' में लौकिकता धार्मिकता की अपेक्षा अधिक मात्रा में है। इस में का राज्यानी पट्टण का वर्णन, राजवैभवं, उद्यानों का सौन्दर्य, प्रजा का विनोद, कुमारपाल और कोशरण के राजा महिमा-कार्जुन का युद्ध, कुमारपाल द्वारा दक्षिण और उत्तर के अनेक राजाओं का दमन, इत्यादि वर्णन लौकिक काव्य के गुन्दर निदर्शन हैं। पञ्चम चरित, वसुदेव-हिण्डी, दामारा-गुण-चरित, गुणाम्नाह-चरित, और कुमारपाल-चरित आदि धार्मिक चरित-काव्यों में भी यत्र-तत्र गुन्दर कवित्वपूर्ण स्वतन्त्र प्रान्त होते हैं। आस्थानों में तरंगवती, मुरमुन्दरी-चरित, बाननाचार्य-न्यायक, भुवन-मुन्दरी, मिर्मिरि-बहा में बहुत रोचक प्रेम-कथाएँ हैं। रणगेहर-बहा तो 'पद्मावन' का पूर्व-रूप ही है। इन काव्य-ग्रंथों की भाषाशैली प्रायः सरल और सरस है। लोक-विद्वानों का चित्र कितने दम में हुआ है। जनसरो का प्रयोग स्वाभाविक है। वर्णन विस्तृत और कथानुल्लेख है।

प्राकृत का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य मेनुवन्ध (रावणवध) है। इसके १५ आख्यारों (भागों) में मे प्रथम आठ में नल-नील तथा वानरों द्वारा समुद्र पर मेनु वाधने का और उत्तरार्द्ध में रावण-वध तक की घटनाओं का वर्णन है। कथारा बहुत मधुर है। पुरुषार्थ में प्रवृत्ति-वर्णन और उत्तरार्द्ध में मानव-प्रवृत्ति के चित्रण में कवि की अनुभूति और गम्भीर एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। राम के शोभ, रावण की चिन्ता, सीता के त्रास, विभीषण की कृतज्ञता, राक्षसों की हृदयहीन दुरादि मानवीय भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। काव्य योग्य प्रधान है। अन्य रस यथास्थान समाविष्ट हुए हैं। सूक्तियों का तो यह ग्रन्थ भाण्डार ही माना गया है। भाषा समान-बहुला और पाण्डित्यपूर्ण है। इस कृति का प्रभाव मंस्त्रुत, प्राकृत और अपभ्रंस सब पर पड़ा है। इन के पीछे 'रावणवध', 'निगुप्तानवध', 'कंसवध' आदि अनेक प्रबन्ध लिखे गये। 'गौडवध', 'सीतावध', 'मिरिचिधक्ख' और 'सौरि-वरित्त' इसी परम्परा के प्रबन्ध काव्य हैं। 'सीतावध' बहुत मधुर प्रेम-काव्य है। 'मिरिचिधक्ख' मंस्त्रुत के भट्टिकाव्य की धनी का है। इस में श्रीकृष्ण-सीता-वर्णन के माध-माय वररवि और त्रिविध के व्याकरणों की व्याख्या की गई है। इस में पाण्डित्य तो है, रसपूर्णता नहीं। मौरि चरित में भी कृष्ण की कथा वर्णित है।

उमानिरुद्ध और बंमवहो भागवत के आधार पर लिखे गये लण्डकाव्य है। दोनों में चार-चार सर्ग हैं और दोनों में अनेक मंस्त्रुत छंदों का प्रयोग किया गया है।

प्रगणवश यही जर यह कह देना आवश्यक है कि प्राकृत में चरित-काव्य की एक नई शैली का प्राग्भ्य अवश्य हुआ, पर सामान्यतः प्राकृत काव्य-शैलियों मंस्त्रुत काव्यशैलियों में भिन्न नहीं हैं—शायः वही रचना-प्रवृत्ति, वही पाण्डित्य-प्रदर्शन, वही छंद प्राकृत के प्रबन्ध काव्य में भी मिलने हैं। अन्यतः प्राकृत के मुक्तक काव्य का सौन्दर्य निश्चय ही अपूर्व है। मुक्तकों में सोव-जीवन के विविध पक्षों की गंभीर अभिव्यक्ति हुई है। मंस्त्रुत में जो कल्पना और आश्चर्य का प्राधान्य है वह प्राकृत के मुक्तक पद्यों में नहीं है। इन में अनुभूति और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य है। मध्य और सुन्दर, एवं जीवन और काव्य का समिश्रण है। इनमें इन में भाविकता अधिक है। इन में रागा-तरा सुतियों का विभाग स्वाभाविक ढंग से पाया है। इनका अधिनार पद्य विषय गुणार, नीति, धर्म तथा प्राकृतिक सौन्दर्य हैं। खेत, रोड अथवा भयानक रस के लिए इन में स्थान नहीं है। प्राकृत मुक्तकों का-मा साहित्य, भाष्य और उत्तराध्याय्य दुर्लभ है। इनकी भी व्याख्या की सुदरता भी सर्वत्र नहीं मिलती।

प्राकृत के नाटकों में और काव्याधारों के उदाहरणों में कृष्णगीता मिलने

है। स्वतंत्र ग्रंथों में 'गाथासप्तशती', 'वज्रजालम्', 'विदम वाणलीला', 'मदन-मुकुट' आदि प्रसिद्ध हैं। 'गाथासप्तशती' की गणना विश्व के श्रेष्ठ काव्यों में की जाती है। इस में अनेक कवियों के सात सौ से कुछ अधिक गाथा-पद्य संगृहीत हैं। शृंगार इग का प्रधान विषय है। युवक-युवतियों, नायक-नायिकाओं, विशेषतया अनेक प्रकार की स्त्रियों—साध्वी, कुलटा, पतिव्रता, वैश्या, स्वकीया, परकीया, सयमशीला, चंचला, वियुक्ता, सयुक्ता, परित्यक्ता, आशान्विता, निराशाकुला—की मन स्थितियों और भावनाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रेम की भूमिषा में रमणीक ग्राम, सहस्रहाते खेत, वेतस-निकुञ्ज, पलास-कुञ्ज, निर्जन वन, निर्धर, नान्हे, जोहड़, तालाब आदि के अनूठे और यथार्थ वर्णन इग ग्रंथ की एक विशेषता है। ग्राम-जीवन के चित्र, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, व्रत-नियम, तीज-त्योहार, पूजापाठ आदि के काव्यपूर्ण चित्र अनुपम हैं। प्राकृतिक स्थानों के मनोहारी वर्णनों के साथ मेघ, विद्युत, पवन, ममूर-नृत्य, वाक्केलि, शुकषकि आदि और ऋतुओं के स्वाभाविक चित्रण अत्यन्त सुन्दर हैं। कही-बही नीति-व्यवहार के उपदेश और सुभाषित भी मिल जाते हैं। उपमाओं का अनुठापन भी उत्प्रेक्षनीय है। परम्परागत पिटी-पिटाई उपमाओं और रूपकों का प्रयोग प्रायः इस में नहीं मिलता। वज्रजालम् में नक्षत्रवर्णन, नायक-नायिका-वर्णन, प्रेम की अनेक अवस्थाओं की व्याख्या मिलती है।

अपभ्रंश साहित्य अभी पूरी तरह प्रकाश में नहीं आया। जैन-भण्डारों में न जाने कितने ग्रन्थ-रत्न पड़े हैं। इस समय तक जैनो द्वारा लिखे कुछ महापुराण, पुराण, चरित आदि (ग्रन्थ जो संस्कृत और प्राकृत के इसी प्रकार अपभ्रंश काव्य के ग्रन्थों की परम्परा में लिखे गये), बौद्धों द्वारा लिखे गये पद, गीत और दोहे (धर्मान् सिद्ध साहित्य) जिन से कुछ-कुछ नई परम्पराओं का उत्तरी भारत के साहित्य में प्रारम्भ होता है, संस्कृत ग्रंथों में बिलेटे हुए फटकार पद्य (जो 'गाथासप्तशती' और 'वज्रजालम्' के मुक्तकों के अनुरूप माने जा सकते हैं), विद्यापतिवृत्त 'कीर्ति-नता' और भट्टरंहमानवृत्त 'महेश-रागक' (जिन में क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी भारत के साहित्यों में नवीन काव्य-शैली का विकास हुआ)—बग इतना कुछ ही अपभ्रंश साहित्य उपलब्ध है।

यह बात विशेषतः वर्णनीय है कि वैदिक साहित्य में प्रारम्भ करके क्रमशः काव्य का रूप और आकार बढ़ता रहा है, गद्य का घटता रहा है। अपभ्रंश तक आते-आते काव्य ही काव्य उपलब्ध होता है, कोई गद्यग्रन्थ अथवा नाटक अभी तक नहीं मिला।

जैन काव्य प्रधानतः धार्मिक है। इसके अन्तर्गत चरित ग्रंथ उत्प्रेक्षनीय हैं—पद्मगिरि-चरित, मुदंगण चरित, त्रिणदत्त चरित, भविष्यत् बट्टा आदि। धर्मि-

काश में प्रेमकथाएँ वर्णित हैं। इन प्रेमकथाओं को नीति और धर्मसम्बन्धी उप-देशों से समन्वित किया गया है। प्राकृत की 'ममराइच्च कहा' तथा 'वसुदेव हिण्डी' जैसी धर्मकथाओं की परम्परा अपभ्रंश के इन चरित-काव्यों में चलती हुई दिखाई देती है। प्रेम का समारम्भ प्रायः गुणध्वज, चित्रदर्शन, प्रथम सप्ताहकार, अथवा स्वप्नदर्शन से होता है और उसकी परिणति विवाह में होती है। नायिका की अपेक्षा नायक को अधिक कष्ट भोगने पड़ते हैं और उने प्रायः मिहलद्वीप की यात्रा भी करनी पड़ती है। कथा में आश्चर्य-तत्त्व अवश्य लाया जाता है। यज्ञ, गन्धर्व, विद्याधर आदि नायक-नायिका की महायत्ना करते रहते हैं। चरित-काव्यों में लोक-विश्वामों की पर्याप्त जानकारी मिलती है।

लगता है कि अधिकतर जैन कवियों ने किसी राजा, मन्त्री अथवा सेठ की प्रेरणा से काव्य-रचना की। कुछ एक ने अपने आध्ययदाता की विजय और वीरता का वर्णन भी किया; किन्तु वे मिथ्या यशोगान अथवा चाटुकारिता में दूर रहे।

यह बता देना आवश्यक है कि अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों के रूप-भगडन में संस्कृत-प्राकृत की परंपरा में कुछ निधिलता आ गई है। कथातत्त्व इनमें भी कम है, वर्णन-विस्तार अधिक और कृत्रिम है। भाषा असुवृत्त और बही-बही बोझिल है। भावों के चित्रण में मार्मिकता कम है। काव्य का विभाजन अधियों में होता है। प्रत्येक मग्धि के अन्तर्गत कुछ कड़वक होते हैं जिनकी सख्या निर्दिष्ट नहीं है। प्रत्येक कड़वक की समाप्ति धृता में होती है। कुछ पुराण ग्रन्थों में काण्ड हैं और काण्डों के अन्तर्गत सधियाँ आदि हैं।

हिन्दी के अनेक चरित ग्रंथ इस परम्परा में आते हैं।

बौद्ध सिद्धों की रचनाओं के संग्रह 'दोहा कोष', 'बौद्ध गान और दोहा' 'धर्मापद' आदि नामों से हुए हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि पद भिन्न-भिन्न, राग-रागिनियों में लिखे गये हैं। महजयानी सिद्धान्तों की व्याख्या, प्राचीन ऋद्धियों का संकन, मंत्रमंत्र, धारत्रज्ञान, कर्मकाण्ड, और बाह्याचारों का निषेध, गुरु-महिमा—गिद्ध साहित्य के ये मुख्य विषय हैं।

गिद्ध साहित्य प्रमुखतः धार्मिक है, पर उम में धार्मिक मोन्दय का अभाव है। बही-बही काठ-घटा है तो गहरी पर गीत रूप में। प्रायः गिद्ध कवि काव्य-धारत्र के नियमों में अनभिज्ञ थे। भाषा और कविता का अर्थ ही इन की परिभाषा में भिन्न था—नैतिक न होकर धार्मिक। धारत्र, पद, वाक्य गय को मान्त्रिक गायनाओं का धग बना लिया गया था। गिद्ध साहित्य के रूप थे—धर्मापद, धर्मगीति, मुक्ताव, दोहे तथा अर्द्धानियाँ। इन में प्रथम दो गीतिवाक्य और अन्तिम तीन मुक्ताव काव्य के अन्तर्गत आते हैं। गीति काव्य भावप्रधान और मुक्ताव नीतिप्रधान है। धर्मापदों में मुख्यधर्मा, लक्ष्यचिन्तन और गायना हैं, दोहों



में उसी का जनता में प्रचार, साम्प्रदायिक गठन-मडन, एवं सैद्धांतिक विवेचन । गीति-नाट्य में स्व है, भुक्तक-काव्य में पर । कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि गीतिकाव्य में नीति-सत्त्व और भुक्तक काव्य में भावतत्त्व उभर आया है ।

सिद्ध-साहित्य के भावपक्ष का लक्ष्य है महासुख की प्राप्ति की प्रणाली का वर्णन तथा उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति । इस प्रणाली को दाम्पत्य प्रेम के रूपक में वर्णित किया गया है । नायक भगवान् तथागत है और नायिका उनकी भगवती नैरात्मा । दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक हैं । किन्तु ज्ञान के बिना वे राकिन हैं । उन्हें पथ नहीं ज्ञात, एक दूसरे का व्यक्तित्व और प्रकृति नहीं ज्ञात । अतः शुरू उनके बीच में दूती का कार्य करना है और उनका मिलन करा देना है । उस मिलन से निःस्वभाव की प्राप्ति होती है । सिद्धों ने स्वकीया नायिका—गृहिणी, वधू—को ही प्रतिष्ठित किया है । बाद में वैष्णवों ने परकीया रूप का प्राप्ति किया । शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण मिलता है । नायक (भाषक) तथा नायिका (नैरात्मा) के रूप-वर्णन में सिद्धों ने प्रतीकात्मक शैली का आश्रय लिया है । ऐसे चित्रण लौकिक दृष्टि से भी यथान्याय्य है । प्रकृति का वर्णन अपेक्षाकृत कम है । सिद्ध बाह्य प्रकृति को वर्णन का कारण मानते थे । प्रकृति मिथ्या है, धर्मशून्य है । वे प्रकृति को अन्तस्थ मानते थे । वे बाहर की गंगा-यमुना असत्य है, वास्तविक गंगा-यमुना तो दोनों नादियों में है जिन के मध्य में अवधूनि पथ द्वारा गहजवान् प्रवाहित होता है । वास्तविक कामरूप, प्रयाग, वाराणसी शरीर के भीतर है । वास्तविक पर्वत तो मेरुदह है जिन के शिखर पर नायिका बस करती हैं । चन्द्र और सूर्य सब इसी देह में हैं । इसी में नाना रंग के कमल खिले हैं । ये कमल सदा खिले रहने हैं । हठयोग मंथनी मंथनों के लिए अनेक अमंगलियाँ—कच्छरों का दूध दुहा जाना, 'घडियाल का दमनी मथना, बैल का प्रगड़ करना आदि वर्णित हैं ।

नाथ साहित्य और भक्ति साहित्य की समझने के लिए इन बातों की जानकारी आवश्यक है ।

गीति के पदों और दोहा में धर्म प्रभुत्व है, लौकिक व्यवहार गीत । यदि रहे कि सिद्ध समाज के सिद्धांतों से । वे परम्परागत सामाजिक अनुनागत की उपेक्षा करके वैयक्तिक साधना पर बल देने हैं । वे अपनी रचनाओं में साधनामय का विशेषण करने, विरोधी साधनापथों का मडन करने और अपने साधना मार्ग के पारों का मंथन करते हैं । उनके मंथन में व्यर्थ के गाय धन उपहन, माहंग और निर्भीचना है ।

सिद्ध काव्य में तीव्र-योजना एक विनिश्चिता है । अग्रम अगोचर का ज्ञान न्यून और गोचर द्वारा बताया जाता है । शायद प्रतीक प्रवृत्ति और साधारण

जीवन में निधे गये हैं—मूषक और माय इन्द्रियां हैं, माय मगार है, हत अथवा मिह चित्त है । अघेरी रात का चूहा अज्ञानी चित्त है । मोने हिरन का व्याध के जान में फंमना मनुष्य का कान्पास में बँधना है । कहीं-वहीं विरोधमूलक प्रतीकी (घोर उलट्यामियों) का प्रयोग भी किया गया है । इनका मुख्य उद्देश्य या जनना को चमत्कृत करना । मत्त बबीर आदि की शैली और मूग्दाम के दृष्टकूटो का बीज मिटो की इस सन्ध्या भाषा में देखा जा सकता है ।

‘कोनिलता’ एक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य और ‘मन्देस-रामक’ लौकिक प्रबन्ध काव्य है । हिन्दी के प्राचीन काव्य की परम्परा के लिए ‘मन्देस-रामक’ का महत्त्व बहुत अधिक है । इस में का नायक-नायिका भेद, नक्षत्रिय-वर्णन, पद्मस्तु वर्णन और चरित काव्य की रचना-शक्ति उल्लेखनीय शैलियाँ हैं । जिनके मूर्तिरूप ‘उपदेश रमायन रास’, जिनप्रभरचित ‘नेमिराम’ और ‘अंतरंग राम’ आदि रामा ग्रंथ हिन्दी के चारण काव्य की पृष्ठभूमि में घाते हैं । लोकसाहित्य के आधार पर चूनरी, चंचरी, कुलक आदि काव्यरूप भी अपभ्रंश में उपलब्ध होने हैं ।

सामान्य रूप में अपभ्रंश की कृतियों में प्रायः भाषा शीघ्र और भाव मुख्य रहा है । भाषा की दो स्थितियाँ रही हैं—साहित्यिक अलङ्कृत शैली और बोल-चाल की सहज स्वच्छन्द शैली । लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग मन्वृत्त-प्राकृत की अपेक्षा अधिक हुआ है ।

छंदों में भी नवीन प्रयोग अधिक मिलते हैं । मन्वृत्त वर्णवृत्तों की अपेक्षा मार्मिक छंदों की अधिकता पाई जाती है । छप्पय, बुडतिर, कन्दायन, रहु, पम्प-टिका, अमिल्लह, अडिना, तोटक, दोघक, चौपाई आदि अपभ्रंश के प्रिय छंद हैं । प्राकृत के गाथा और घत्ता छंद भी चलते रहे हैं ।

उपमाप्रां और रूपकों में मौखजीवन की क्षमक स्पष्ट हैं ।

रंगों में शृंगार, वीर और शान्त रंग की प्रधानता है । कभी शृंगार रंग वीर रंग का और कभी वीर रंग शृंगार रंग का महानक होकर आया है । इन दोनों का पर्यावर्तन शान्त रंग में होता है ।

अन्त्यनुप्रास एक नई प्रवृत्ति है जो विशेष उल्लेखनीय है ।

हिन्दी काव्य की शैलियों के विकास में इस पृष्ठभूमि की जानकारी बहुत आवश्यक है । १६वीं शती के अन्त तक बराबर वैदिक, मन्वृत्त, प्राकृत और अपभ्रंश की विभिन्न काव्यशैलियों का प्रभाव बना रहा है । २०वीं शती के काव्य में भी प्रेरणा के अनेक स्रोत इसी पूर्वदर्शी साहित्य में प्राप्त होते रहे हैं और आगामी युगों में भी इस का अनुगाधिकार बना रहेगा ।

## वीरकाव्य

हिन्दी साहित्य का आरम्भ वीरकाव्य से होता है। यद्यपि ऋग्वेद में मुदास और दिवोदाम की विजयों के वर्णन मिलते हैं, पर भारतीय साहित्य में वीरकाव्य का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के अथर्ववेध प्रकरण में ही उपलब्ध होता है। लौकिक शास्त्र में रामायण को महाकाव्यों के अन्तर्गत तो माना जाता है, किन्तु उन में वीररम का अभाव सा है। रामायण का आरम्भ भी कुरु रस से होता है—त्रैलोक्य से—, और अन्त भी कुरुनगर से होता है—गीता के धरती में समा जाने से। महाभारत, अलबत्ता, वीररस-प्रधान काव्य है। इस का आरम्भिक रूप वैसा ही था जैसा होमर की 'इलियड' और 'ओडिसी' का और इसका उद्देश्य था एक वर के योद्धाओं के वैयक्तिक पराक्रम का वर्णन। सेबिन, बाद में इस को राष्ट्रीय रूप दिया गया और इस का अर्थ जाति के माहित्यक इतिहास में बही स्थान है जो सेंटिन में बर्जिल के 'ईनीड' का। महाभारत में मूल और भाग्यो की बाधों में भाग्य का 'निरातार्जुनीय' और नाटको में 'मृताशरणवृत्त' 'बेनी-संहार' गहन माने गये हैं। प्राकृत में रामायण और महाभारत की परंपरा में तो काव्यनिर्माण हो गये, गाय में अनेक राजाओं, दानवीरों, धर्मवीरों और मुद्गवीरों के कर्तव्यों की रचना भी हुई।

जिन दिनों हिन्दी कविता का जन्म हुआ उन दिनों मल्लूत और प्राकृत

कविता वृद्धावस्था में थी। अथर्वश का जीवन भी टग रहा था। पश्चिमी अथर्वश में संस्कृत की प्रशस्तियों और 'भोज-प्रबन्ध' आदि ग्रंथों के परंपरा ढंग पर राज-स्तुतियाँ, शृंगारी काव्य तथा लोक-प्रचलित कथानक लिखे जा रहे थे। सन् ६०० ईसवी में अनेक चारणों का उत्थान मिलता है। महाराज हर्ष के दरबार में थाण कवि का बहुत सम्मान था। दक्षिण के महाराजाओं के आश्रय में भी कई कवि प्रतिष्ठित थे। इन्होंने प्रचलित भाषा में अपने-अपने आश्रयदाताओं के चरितों अथवा फुटकल वृत्तों का वर्णन प्रबन्ध किया था—इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। मुख्य-मुख्य चारणों के नाम भी हमें प्राप्त हैं—गुण्य, केदार, अनन्यदास, ममीद, कुतुब धनी आदि कई कवियों ने अथर्वश से निकलती हुई प्राचीन हिन्दी में कविता की थी, परन्तु खेद है कि इनमें किसी की भी रचना हम समय उपलब्ध नहीं है। 'तुमानरामी' की रचना ९वीं शताब्दी में लिखे गये एक ग्रंथ के आधार पर की गई थी परन्तु इस मौलिक ग्रंथ का भी अभी कुछ पता नहीं लग सका है। जैनाचार्य मेगुन के 'प्रवर्ण्यचितामणि' नामक ग्रंथ में राजा भोज के चाचा भुज के बड़े हुए दोहरे मण्डित हैं। ये दोहरे प्राचीन हिन्दी के बहुत ही पुराने नमूने हैं। इससे स्पष्ट है कि महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी की बढाईयों से बहुत पहले हिन्दी में वह काव्य-शैली प्रचलित थी जिसे वीरगाथा काल में इतना प्राधान्य प्राप्त हुआ। भुज ने तैलंग देश पर आक्रमण किया तो वहाँ राजा तैलव ने उसे बन्दी बना लिया और रस्मियों में बाँध कर अपने यहाँ ले गया। वहाँ तैलव की बहन मृणालवती ने उसका प्रेम हो गया। लगभग इसी प्रकार के वर्णन हमें हिन्दी वीर-गाथाओं में मिलते हैं। वीर रम में शृंगार का पुट भी बैसा ही मिलता है।

### चारणों का राजपूत वीरकाव्य

मुसलमानों के आक्रमणों पर चारणों को वीररचनाएँ करने का प्रवृत्ति अथर्वश प्राप्त हुआ। इस समय देश की परिस्थिति बिगड़ी हुई थी। राजस्थान में राजनैतिक अज्ञान और विप्लव मचा था। राष्ट्र की एकता नष्ट हो चुकी थी और देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। आदि युग में राज्य धरनी सपुना में भी अहंकार से अभिभूत थे, पाहे गुरु-मुखा ने इन्हें भीतर में रोषता कर रहा था। मुसलमान आक्रमण की स्वतन्त्रता छीनने पश्चिम-द्वार पर गढ़े थे और वे क्षेपण आग में यूँ छेड़ रहे थे।

राजनैतिक अज्ञान का प्रभाव मार्तण्डिक विचार-धारा पर पड़ना अनिवार्य था। जो अनुभव में आ रहा था वही वाणी हाथ ध्वनित किया जा रहा था। इस

काल में युद्ध, विप्लव, मारकाट और वीरता का विशेष वर्णन मिलना स्वाभाविक ही है। हर एक राजदरबार में चारण अथवा भाट होते थे। अपने आश्रयदाताओं का योगदान करना और उन्हें काल्पनिक महत्ता के स्वप्न दिलाना इन चारणों का मुख्य कर्तव्य था। यही इनका पेशा था। हिन्दी साहित्य के आदि काल में इन्हीं चारणों की रचनाएँ अधिक और महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं के कारण इस काल को चारण काल कहते हैं। इन्होंने वीरों की गाथाएँ सुना-सुना कर और अपने राजाओं को वीरता का वर्णन कर-करके उन्हें प्रोत्साहित किया। इस कारण से इस युग का नाम वीरगाथा-काल भी है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से 'वीरगाथा-काल' नाम बड़ा उपयुक्त है।

'चारण-काल' अथवा 'वीरगाथा-काल' सन् ११०० से १४०० तक माना जाता है यद्यपि इससे पहिले और इसके बाद भी इस शैली की रचनाएँ होती रही हैं। अधिकतर इनमें प्रबन्ध-काव्य ही है, परन्तु स्वर्गीय राय बहादुर दयामसुन्दरदाम जी का अनुमान है कि वीर गीतों की उस समय प्रतिनिधि रचनाएँ दयामसुन्दरदाम जी का अनुमान है कि वीर गीतों की उस समय अधिकतर इनमें प्रबन्ध-काव्य ही है, परन्तु स्वर्गीय राय बहादुर लम्बे चरित-नाय्यों का लिखा जाना न तो सम्भव ही था और न

स्वाभाविक ही। वीरों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने में तथा समय-प्रसंग पर राजाओं के गुण-गान करने में फूटकर पद्यों की उपयोगिता अधिक होती है। राजा बिगी लड़ाई पर बसते तो चारण लोग वीर-रस-सिक्का एक छाप कहे देते, राजा दरबार सगा कर बैठने तो वे किमी विषय पर दोहे गढ़ कर सुनाने लगते, राजा बिगी मुन्दरी पर रीझने तो वे एक उक्ति सुना देते। 'ग्रान्ह' गीत इन्हीं प्रकार के हैं। श्रीधर के 'रणमल्ल छंद' का उल्लेख भी इन्हीं में किया जा सकता है। 'योगलदेव रासो' में भी गीत अधिक हैं।

रासो शब्द की तागी ने 'रात्रगुप्त' से और रामचन्द्र शुक्ल ने 'रमायण' में व्युत्पन्न माना है। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति 'राम' शब्द में हुई है। हिन्दी के उत्थान से पहले भी राम पद्यों का उल्लेख मिलता है।

प्रबन्ध-नाय्यों में हलपति विजय का 'सुमान रासो', नरपति नरह का 'वीराल-देव रासो', चन्द्रबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', भट्ट ब्रह्मदेव का 'जयचन्द्र प्रभास', मधुसूदन का 'जयमय जगचन्द्रिका', सारंगधर का 'हर्षोदय काव्य', और नर-सिंह का 'विजयमान रासो' उल्लेखनीय हैं। स्पष्ट है कि राजस्थान में प्राचीन गुप्तकों की पूर्ण-युक्त गोत्र नहीं की गई, बरना वीर-भक्ति के भिन्न-भिन्न प्रकारों की पर्याप्त सामग्री मिल जाने पर हम इस युग की सैनिकों का टीस-टीस विवरण दे सकते हैं। हमारे सामने जो वीर-साहित्य इस समय का है, उन्हीं के आधार पर वीर विरोधनामों का विवरण दिया जा रहेगा।

वीर-काव्य के उक्त ग्रंथ हैं तो बड़े-बड़े, परन्तु महाकाव्य होने का अधिकार सभी को प्राप्त नहीं हो सता। महाकाव्य में एक ही युद्ध का वर्णन होना चाहिये और घटनाओं में एकरूपता रहनी चाहिए। परन्तु, 'पृथ्वीराज काव्यशैली' रामो' ग्रंथवा विभी ग्रन्थ रचना में न तो एक प्रधान युद्ध है और न ही वर्णित युद्धों का परिणाम व्यापक है। घटनाएँ एक दूसरी के समन्वित हैं, कथानक निश्चित है और प्रायः इनका कोई आदर्श नहीं। महाकाव्य में जातीय चित्तवृत्तियों का चित्रण व्यापक रूप में मिलता है, पर इन वीर-काव्यों में न तो वह व्यापकता है न गम्भीरता। ग्रंथों में सनवारों की झनझनाहट तो है, पर राष्ट्रीय भावना नहीं। इनमें सामाजिक 'मित्र' का अभाव है। अधिकांश कवियों को यह चिन्ता नहीं थी कि विदेशी आक्रमणों से समाज की रक्षा कैसे हो अथवा देश-प्रेम की भावना जनता में कैसे जागृत की जाय। उनका उद्देश्य था आश्रयदाताओं की प्रशंसा-द्वारा स्वार्थसाधन। यही कारण है कि जयचन्द जैसे राजाओं की भी बाल्पनिक धीरगाथाएँ गढ़ने वाले कारण तो उठे पर मन्चे धीरों की पवित्र जीवनीयों सुनाने वाले कवि नहीं जन्मे। 'इन रचनाओं को वीराभास-काव्य कहना ही उचित है'—विमूढ़ वीरकाव्य नहीं।

हमें तो इन रचनाओं के कवित्व पर भी सन्देह होना है। जो कवि अपने अधिकांशों को रित्ताने ही के लिए कविता करते थे, उनके हृदय में मन्चे भावों का उद्गम नहीं हो सकता था। अनुभूति और मज्जा के बिना उच्च कोटि के कवित्व का स्फुरण हो भी कैसे सकता था? जब केवल प्रशंसा करना ही उद्देश्य था तो इसमें अनुभूति अथवा प्रतिभा का क्या स्थान होता? माहिम्निर 'सुन्दर' बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है।

कथाओं में वर्णनात्मकता ही अधिक है—वस्तुओं की लम्बी चौड़ी सूची तथा नेता का वर्णन आश्चर्यचकित से अधिक होता है। कवि का एक मात्र उद्देश्य अपने नायक की शक्ति और वीरता का अनिमित्तपूर्ण परिचय देना है। उगी के ऐश्वर्य और युद्धसैना का वर्णन करना, उगी की श्रेष्ठता और विजय की हीनता मिट्ट बनाना कवि का मुख्य धर्म रहा है और कही-नही तो वर्णन भी नीरस हो गया है।

'गल्प' भी कही-नही दुर्द्वारे पर ही मिलता है। प्रायः वीरगाथाओं में ऐतिहासिकता का अभाव गटबता है। अधिकांश आचार्य अनुसंधान हैं। बहुत सी घटनाएँ इतिहास से प्रभावित नहीं होती। उदाहरणार्थ, जहाँ युद्ध के कारण केवल रात्रिभंग होते थे, उनका उल्लेख न करके कोई कथा को स्वी ही बाल्पनिक बना कर ली जाती थी।

इन त्रुटियों अथवा दोषों के होते हुए भी, हमें यह न भूलना चाहिये

कि कुछ एक रचनाओं में ऐसे गुण भी हैं जिनके कारण हिन्दी साहित्य में इन कृतियों को अधिष्ठित स्थान मिला हुआ है। इस काल के कवियों का युद्ध-वर्णन अत्यन्त मार्मिक तथा सजीव है और वीर रम का सफल परिपाक था है। वीर भावों से भरी हिन्दी के आदि युग की यह कविता सारे हिन्दी साहित्य में समता नहीं रखती। दोनों घोर की सेनाओं के जम जाने पर युद्ध के सामान तथा मात्र-मण की रीतियों का जैसा विषाद वर्णन इस युग के कवियों ने किया है, वैसा पीछे के कवियों में नहीं मिलता। इन चारणों की बचनावली में शस्त्रों की झन्कार स्पष्ट सुनाई पड़ती है और इनके युद्ध-वर्णन के सजीव चित्र अब भी पाठकों के हृदय में उत्ताम पैदा करते हैं।

उदाहरण—

गही तेग चहुवान हिदयान राने,  
गजं जूय परिकोप केहरि समाने।  
करे दण्ड मुण्डे करी कुम्भ फारे,  
बरं सूर सामन्त हुकि गजं भारे।  
करी चौह चिक्कार करि कलप भगो,  
मदं तगिजय साज ऊमंग मगो।  
हीरे गजं ग्रन्थ चहुमान केरो,  
करीय गिरहं चिहो चक्क केरो।  
गिरहं उड़ी भान ग्रन्धार रने,  
गई गुणि मुजो नही मगि नने।  
गिरि नाय कम्मान पुरिरान राजे,  
परिरे साहि गिनि कुलिग वाजे।  
से चलो तितायी करी फारि कौजे,  
परे भीर से पञ्च तहें खेत चौजे।  
रजपुत वस्त्राम जुगते घमोरं,  
बजे जीत के नद नीसान घोरं॥

(चन्द्रपरदाई)

सत्य जीवन की व्यापक अभिव्यक्त्या सत्वानीय कविता में नहीं पाई जाती, नपाणि वीरों के चरित्र-चित्रण घटवा घटना के बनावट वर्णन में अनेक रमणीय गूँथनवाँ घटना उद्भावनाएँ जो इस काल की कविता में मिलती हैं वे किन्हीं अन्य मार्मिक में दुर्लभ हैं। बात यह है कि ये कवि समय पड़ने पर स्वयं भी हाथ में मनवार लेकर रणभोज में बूढ़ पड़ने थे। ये स्वयं योद्धा थे। इन योद्धा-कवियों की रचनाओं में जहाँ-जहाँ अच्छे राष्ट्रीय भाव भी दिखाई

पटने है। जिन देशानुराग में प्रेरित होकर वे चाननायियों का मामना करने थे, उन्ही देशानुराग को वे अपनी कृतियों में भी प्रसट करने रहे, परन्तु इसमें मन्देह नहीं कि उनकी यह राष्ट्रीयता मकीर्ण एवं साम्प्रदायिकता-मूलक ही बनी रही।

चारणों को कविता का एक और गुण है इसकी अनेकरचना। वीररत्न का प्राधान्य हीन हुए भी 'पृथ्वीराज रागो', 'बीमनदेव रामो', आदि वीर काव्यों में जगह-जगह शृंगार-रस मिलता है। कई बार ऐसा आभास होने लगता है कि ये प्रय शृंगार-प्रधान ही हैं। वास्तव में प्रेम-गाथाओं का मिश्रण वीरों की वीरता के प्रदर्शन का साधनमात्र है। शृंगार कभी तो वीररस का उत्पादक और कभी-कभी उसका महकारो बन कर आया है परन्तु रहा है मदा गीण रूप में ही। प्रायः, राज-कुमारियों के स्वयंवरो का वर्णन करने हुए ही कवि शृंगार का अवनम निकालने रहे हैं। इन स्वयंवरो को युद्ध का कारण बना कर वीरता का प्रदर्शन करना ही काव्य का उद्देश्य रहा है। वीरों के हृदय में उत्साह तो मदा रहता ही है, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि वे युद्ध ही करने रहते हों। युद्ध में विरत होकर वे आनन्द-प्रमोद के समय शृंगारी कविता में अपना मनोरजन व्यक्त करने होंगे।

इस काव्य के कवि शृंगार-रस में ऐसे ही सफल रहे जैसे वीररस में, किन्तु उनका काव्य वीररस-प्रधान ही है। 'बीमनदेव रामो' में 'पृथ्वीराज रागो' की प्रेरणा शृंगार की व्यञ्जना अधिक गरम तथा मधुर है। 'आत्महन्त्र' में भी प्रेम-गाथा वीर वृत्तों के साथ-साथ चलती है 'आत्महन्त्र' में महोषा के वीर आत्माओं की गगनग बाधन लड़ाइयों और अनेक विवाहों का वर्णन है। उन्होंने जहाँ युद्धों में गफलता प्राप्त की वहाँ राजन्याओं का अपहरण भी किया। ऐसी घटनाओं का वर्णन करने में कवि ने शृंगाररस का अच्छा अवसर पाया है।

वीरगाथाओं में अन्य रस भी बराबर मिलते हैं। विरह-वर्णन में तथा दानुओं की मृत्यु पर दानुनायियों के विनाश में कण-रस व्याप्त रहा है। युद्धवर्णन में हम रोद और बीभत्स रस भी पाते हैं। हास्य और दान रस प्रायः नहीं मिलता। हा, पन्द ने अपनी कृति में स्तुतिवा कही है जिन में दान रस है। अन्य चारण कवियों ने प्राग्मिक मंगलाचरण के अनतिरिक्त इस प्रकार की स्तुतिवा नहीं ली।

युद्ध और विवाह के अनतिरिक्त मृगया, मवागी, राज्याभिषेक, नगसाग आदि विषयों के विवरण भी बहुत मनोहर और मजबूत हैं। प्रकृति पर भी बड़े उत्कृष्ट और गरम कथन मिलते हैं—बन, उावन, पत्नी, पगल, नरद, पशु, आदि का वर्णन पद्यी रीति से किया गया है।



काव्य में ऐतिहासिकता की खोज करना हमारे विचार में ठीक नहीं है। चारणों की कविता में वाच्योपयुक्त वत्पना का आधिक्य है और कही वत्पना-प्रसूत वृत्तान्त बड़े रंगीने और मनोरञ्जक भी है।

बीर गाथाओं की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा न थी। साहित्यिक औरव के लिए कवियण प्राचीन भाषा का प्रयोग करना अच्छा समझते थे। इसी काल में खुसरो ने अपनी कृतियों में बोलचाल की भाषा के पश्चिमी प्रक्रिया रूप और विद्यापति ने पूर्वी रूप का प्रयोग किया, परन्तु चारणों ने हिन्दी के प्राचीन रूप ही को उपयुक्त समझा। बीरोल्लासमयी कविता और भोजपूर्ण भावों के लिए जिस प्रकार के कर्कश और मानुप्राप्त शब्दों की आवश्यकता थी ऐसे शब्दों की प्राचीन भाषा में प्रचुरता थी।

इस प्रारम्भिक हिन्दी को, जिस में बीररसात्मक काव्य-रचना के उपयुक्त परपता विशेष रूप में थी और व्याकरण तथा छन्द शास्त्र के अनुशासन का अभाव था, 'डिगल' कहते हैं। डिगल का अर्थ है लम्बी-चींटी बात (डिम-गल), प्रधवा ऊँचे स्वर में पढ़ने योग्य भाषा। शक्तिशाली शब्दों के कारण यह नाम उपयुक्त ही है। इसके उल्टी 'पिंगल' साहित्यिक भाषा थी। 'पिंगला' का अर्थ लुत्ती लगी हुई योनी हो सक्ता है—इसलिए कि यह मन्द स्वर में बोली जाने वाली थी। वज्र-भाषा है भी बोमल और सरस। इसमें आधुनिक एवं प्रसाद अधिक है। 'पिंगल' का सार्केतिक अर्थ छन्द शास्त्र भी है। तत्कालीन वज्रभाषा में छन्द और व्याकरण का अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण था। हाँ सक्ता है कि 'पिंगल' के साथ जोड़ मिलाने के लिए उपहास में हेतु राजस्थान की अनिमित्त तथा कर्कश भाषा को 'डिगल' कहा गया हो। कुछ लोगों का मत है कि ऊबड़ खाबड़ और अगस्त्य तथा मानु-प्राप्त पदावली के कारण डमरू (डिम-डिम) की ध्वनि से उग भाषा की समझा ही 'डिगल' नामकरण का कारण है। कोई विद्वान 'डीग' शब्द से 'डिगल' का सम्बन्ध बनाने है। इसमें डीगो की अच्छी अभिव्यक्ति हो सकती थी। ये सब निर्वचन ठीक ही जान पड़ते हैं। डिगल बर्कश, अव्यवस्थित, मानुप्राप्त और डीग-भरी भाषा है।

यदि तब अशुद्ध भाषाओं का जिनका साहित्य उपलब्ध हुआ है उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि डिगल और अशुद्ध में अन्तर कम और एकरूपता बहुत अधिक है और कुछ उदाहरण तो ऐसे हैं कि जिन्हें अशुद्ध भी कहते हैं और डिगल भी। डिगल में अनुप्रासों की अगमार है—दंढ, निरंढ, गुरेग, नरेग, गुगार, मार, आदि शब्द 'पृथ्वीगज रंगो' में बहुत ही अधिक हैं। मंस्कृत के लगभग छन्द पाए जाते हैं पर अर्द्धमग और तद्भव शब्दों का फिर भी आधिक्य ही है। जैसे-जैसे हिन्दी का विकास होता गया, वह अशुद्ध के बंधनों से मुक्त होती गई।

घोर संस्कृत के शब्दों को अपनाती गई। धार्मिक काल में भारर भाषा में यह परिवर्तन होने लगा और माय ही माहित्य में जनभाषारण की भाषा को स्थान मिलने लगा।

इस युग की भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के प्रतिरिक्ता भरवी, फारसी और राजस्थानी भाषाओं का विशेष प्रयोग हुआ है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी पाये जाते हैं। भरवी-फारसी के शब्द प्रायः विरुद्ध रूप में आते हैं, जैसे रामज, नेजा, पातिमाहि, पीरोज, नीमान, साहाय इत्यादि।

धारण काव्य में अलंकारों का प्रदर्शन कम देखा जाता है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि का सम्यक् यथास्थान अच्छी प्रकार किया गया है। सब से अधिक प्रयोग शब्दानुश्रवण का हुआ है जिसे वयणमगार्ई कहा गया है। इस तरह भाषा को सजाने तथा आनन्दकारिक उक्तियों द्वारा भावों को चमत्कारपूर्ण बनाने का प्रयत्न 'पृथ्वीराज रामो' में, जितना दोरा पड़ता है, अन्य ग्रंथों में उतना नहीं।

वीर-काव्य विविध छंदों में लिखे गये हैं। दोहा (दूहा), पायरी, कवित्त और छन्द्य का विशेष आदर मिलता है। इन छंदों में प्रवाह और भोज अधिक रहता है। कवित्त में वीर-रस की भावना को समुचित प्रथय मिलता है। दूहों का व्यवहार प्राचीन परंपरा से किया गया है। इनके प्रतिरिक्ता मन्दाग्रान्ता, भुजग-प्रयात, तामर आदि छंदों का प्रयोग भी हुआ है। पुटकल रचनाओं में 'गीत' छंद प्रयुक्त हुए हैं। 'रघुवर-जम-प्रवास' में ८५ प्रकार के गीतों का उल्लेख मिलता है, इन में संगीत, बीतिमो, माहणो, जागड़ी, मुपराहो, चौटीबच, पानवणी आदि गीत अधिक प्रचलित रहे हैं। इस प्रकार वीर कवियों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की पद्धतियों का चलाये रखा है। गाथा कहने से ही प्राकृत-काव्य का बोध होता है और दूहा अपभ्रंश काव्य का विशेष गुण है। इन दोनों रीतियों के सम्मिश्रण से तथा वीररसोच्चिन्तन नवीन पद्धतियों के प्रयोग से वीर-गाथा-माहित्य का निर्माण हुआ है।

इस बात के प्रायः सभी ग्रंथों में अभिप्राय भंग बहुत है जिन्होंने 'पृथ्वीराज रामो' और 'मानन्दहर्षद' का कनेवर तो इतना बढ़ गया है कि धनैक विद्वानों ने इन्हे किसी एक कवि की कृति मानने से इन्कार कर दिया है। यह कनेवर तो साष्ट है कि वर्तमान 'पृथ्वीराज रामो' और 'मानन्दहर्षद' में पद और जगनिक की रचना नाम-मान की भी नहीं रह गई है। गीत और अनुश्रवण के इनके परिलोभित और प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। विद्वानों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है।

‘पृथ्वीराज रामो’ २१ई हजार पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें ६६ समय हैं। प्रत्येक ‘समय’ किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। प्रत्येक घटना का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। पुराणों की जैनी पर कवि ने अपनी स्त्री गौरी को मारी कथा सुनाई है। छंदों का कोई विशेष प्रेम नहीं है। दोहे, कवित्त, छप्पय, तोमर, गाथा, तोटक तथा अन्य छंद किसी निश्चित रूप से नहीं आते, न ही उनकी अपनी-अपनी मर्यादा नियत है। कुल १ लाख के लगभग छंद हैं। ‘आल्हा-खंड’ कोई १००० पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें २६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में किसी लड़ाई, विवाह अथवा अन्य घटना का वर्णन है। अध्याय के आरम्भ में, गणेश, नारायण, राम, हनुमान, भवानी, जगदम्बा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि देवी-देवताओं की उदना करके कथा सुनाई गई है। प्रायः दोहा अथवा मय्या से अध्याय का आरम्भ करके आल्हा-छंदों में मारी कथा कहो गई है।

‘बीमलदेव रामो’ में चार खंड हैं। इनमें जगद बीमलदेव के विवाह, उड़ीसा के प्रस्थान, राजमति के वियोग और बीमलदेव तथा राजमती के पुन-मिलन का वर्णन है। कथा एक ही छंद में लिखी गई है। मार्ग काव्य लगभग १६०० कवियों में समाप्त हुआ है। पृष्ठ संख्या १०० से कुछ ऊपर है।

वीरगाथावाल के अन्य ग्रंथों का कलेवर भी अपनी जैनी का आप ही उदाहरण है। बटव की दृष्टि से कोई एक रचना दूसरी से नहीं मिलती। इस प्रकार बाहे वस्तु-वर्णन में अथवा काव्य-शैली में बहुत अंतर नहीं है परन्तु इन वीर-काव्यों की बाह्य रूपरेखा एक दूसरे से भिन्न अवश्य है।

वीर-जानीन कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

( १ )

गाड़ अजमेरो उत्तिम ठाई । राज करई बीसल-दे राई ॥  
 अउरास्या जे कई अति घणां । राजकुंवर आया सय कोई ॥  
 भीतर के राजा तणों । मान अधिक दीयो सय कोई ॥  
 बीसल बीसल-दे-परधान । राय-कुंवर आयो बहुमान ॥  
 राजकुंवर तेड़ावियो । पाट-पटोला कुसह बचाई ॥  
 दीयो सोनो सोनहो । चोत्रकोट दीयो तिण ठाई ॥  
 राय कुंवर ययो सिर मोड़ । बारा गड़ सुतुरण चित्तीड़ ॥  
 राइ भलीयो पापीयो । गड़ अजमेरो उत्तिम टीय ॥  
 जर जोड़े ‘नरपति’ कहई । राज करइ तिहां बीसल-राय ॥  
 (बीसलदेव रातो)

साहित्यिक दृष्टि से जगजिन नरह के ‘बीमलदेव रामो’ का मुख्य बहुत अधिक

नहीं है। कविता के किसी गुण की उपलब्धि इसमें कम ही होगी है। छंद शिथिल, वर्णनसौजी दूषित और रसाभिव्यक्ति निर्बल और असम्यक् ही है। विचारों की कोई शृंखला नहीं, वर्ण्य विषय में किसी प्रकार की रोचकता नहीं। हा, भाव भवश्य कोमल है। अन्य डिग्न काव्यों की कर्कशता इसमें नहीं है। कवि ने युद्ध-वर्णन नहीं किया, केवल बीसमदेव और राजमनी के विवाह, और पुनर्मिलन की कथा बही है। अलसतः भाषा-विक्रम की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े महत्त्व का है। पुरानी हिन्दी की बनावट का अध्ययन करने वालों के लिए इसमें बहुत सामग्री है।

( २ )

गुस्ता होइ के पुष्पीराज तय । तुरतं हुकुम दियो करवाय ॥  
 पत्नी दे देउ सब तोपन में । इन पाजिन को देउ उड़ाय ॥  
 झुके सलासी सब तोपन पर । तुरतं धरती दई लगाय ॥  
 दगी सलासी दोनों दल में । रण में होत साग घमसान ॥  
 भररर भररर गोला छट्ट । कह कह कर भगिनियां धान ॥  
 रिमरिम रिमरिम गोली बरस । सनसन परी तीर की माध ॥  
 तड़तड़ तड़तड़ तामे घात्रे । जंगी दोल रहे सहनाय ॥  
 दाहू तीरही श्री रणसिंहा । जहं जहं दमन बेनि घहराय ॥  
 तीर कमनियां सो गुनतानी । कारी गायिन सो सप्राय ॥  
 जैसे साँप बाँध में जाव । त्यां ज्वापन के तीर समाय ॥  
 दोनों फौजन के संगम में । अघाघुंघ तोप की माध ॥  
 साग गोला ज्यहि हाथी के । दल में डौकि डौकि रहि जाय ॥  
 गोला साग जोन अँट के । दल में गिरे धरता लाय ॥  
 साग गोला जिन घोड़न के । धारी सुम्भ गर होई जाय ॥  
 गोला साग जिन क्षत्रिन के । तिन की मुचा सरग भंडराय ॥

(भातहण्ड)

जगतिव-वृत्त 'भातहण्ड' का महत्त्व भाषान्तर्गता की दृष्टि से इतना अधिक नहीं जितना इसके वीर-रस-मिश्र वर्णनों के कारण है। मौखिक ग्राह्य की भाषा सुरक्षित नहीं रह सकती। 'भातहण्ड' की भाषा अथ बारहवीं शताब्दी की न होकर प्रायुक्तिक कालीन से अधिक मिलती जुलती है। वीर-काव्यों में ये 'भातहण्ड' की भाषा में सबसे अधिक पण्डित हुए हैं—यह भी इसकी मोह प्रिया का प्रमाण है। ऐसा जान होता है कि कथानकों में भी उलट-फेर होने रहे हैं। अनेक वर्णन प्रशस्त, अमल और उगडे-मुगडे से हैं।

( ३ )

मविष भल घावट रीठ । भर हरि देनं सुम्भर पीठ ॥

हृकं सूर अमार सार । घर घर परं तुष्टिय धार ॥  
 परि तर परं उद्धं एक । तम्मी उकसि सारं नेक ॥  
 घट्ट घट्टी भावध सार । बाहं वीर बारं बार ॥  
 अन्यो अन्य सद्धे काम । भावध ग्रहं अप्पन ताम ॥  
 हं हं करे इष्ट संसारि । उद्धं विरद धारी सारि ॥  
 भदेभुत भोर मंगान । मच्चिय कंक विषम कृपान ॥  
 मर मर मरय हंस रंभान । उद्धिय नेह गेहेति जानि ॥  
 तुष्टिय सेन पत्त तिष तीर । इन परि जुद्ध जुष्टिय वीर ॥  
 तरे साईं उप्पर भत्य । सेवक उद्ध साईं वित्त ॥  
 चोसठि वंम लोचि पधार । मर परि घरह सुम्भिय हार ॥  
 उप्पर भिरं साधत सूर । मत्ती जुद्ध वून कहर ॥  
 ठेले एक एकं वीर । गरजं दोन जंपं मीर ॥

(पुष्पराज रासी)

चंद बरदाई ने प्रतिपाद्योक्ति से अवश्य काम लिया है अनेक घटनाएँ अप्रमाणित और कल्पित हैं । फिर भी भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से 'पुष्पराज रासी' की जोड़ का अर्थ डिगल-माहित्य में और कोई नहीं है । यह धीरगाथा-काल की सब से बड़ी और उत्कृष्ट रचना है । इसमें वीर रस का परिपाक अत्यंत सफल हुआ है । शृंगार रस का परिपाक भी बहुत अच्छा हुआ है । स्थान-स्थान पर आने वाले पौराणिक वर्णन बड़े मनोरंजक हैं और सूक्तियों ने तो इस ग्रंथ की रचिना को डिगुणित ही कर दिया है । भाषा का चौष्टव और छंदों की विविधता भी अनुपम है ।

### हिन्दू वीरकाव्य

जब भारतीय स्वतंत्रता का सूर्य अस्त हो गया और हिन्दू नृपतियों का वैभव नष्ट हो चला तो अब हिन्दी कवि विम की बीरता का गुण गाते करते ?

उन्ने नीतिक वैभव ने निरास होकर अलौकिक ऐश्वर्य का चिन्तन वीर-काव्य का आरम्भ किया । उनको अब समुदाय राम और कृष्ण का आश्रय दूसरा युग दुखना पड़ा । इसका यह अर्थ नहीं कि वीर-काव्य की रचना ही

बन्द हो गई—कृष्ण कवि अपने लौकिक आश्रयदाताओं की स्तुति में, उनके जीवन तथा प्रणय आदि के प्रसङ्ग में नैतिकात्मनार्थ रचना करते रहे । इस प्रकार के कई काव्य-ग्रंथ प्रस्तुत किए गए पर वे सब प्रयापानार्थ होने के कारण ध्यात देने योग्य नहीं बन पड़े ।

महा-काव्य में आत्मरस की प्रपातता रहने हुए भी, वीररसपूर्ण वर्णन कई

स्यो पर बिम्बरे पाये जाने हैं । 'गमचरितमानस' में गम-गवण-युद्ध में गम के रोप का वर्णन देमिए—

भये कुट्ट जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कममसे ।  
 शोवंडधुनि अति घंट मृनि मनुजाद सब भारत प्रसे ।  
 पन्दोदरी उर कंष कंपति कमठ भू भूधर प्रसे ।  
 बिबरहि दिगत्र दत्तन नहि महि देपि कौतुक मुर हंसे ।

गम घोर मरूपण के युद्ध का वर्णन भी वीर रस पूर्ण है ।

अबसर, जहोगोर घोर जाहजहाँ के समय में देश में सर्वथा शांति नहीं । उस समय हिन्दू घोर विरोधतया राजपूत पननांन्मुख थे । गोस्वामी नृपमीशम ने माधवा के मुँह से 'कोउ नृप होय हमें का हानी' ब्रजवाकर उस समय की जनता के विचारों की मन्ची अभिव्यक्ति की है । भारतीय जनता मुगलों की कृत्नीति में परम कर घपने आपकी भूमती जा रही थी । उसे घपनी स्थिति पर सतोष था । यही कारण है कि महाराणा प्रताप जैसे मज्जे वीर का स्मान्क पक्ष भी कोई न प्रस्तुत कर सका । उनकी एक भी उत्प्रेतनीय गाथा नहीं मिली गई ।

घोरंगजेव के राज्यकाल में मुगल-माघान्य दान-दान आभाहीन हो रहा था । उनके बटोर तथा नृगम नामन में हिन्दू जानि चौक उठी थी । वह अधिक समय तक सोनी न रह सकी । वह सब कुछ सह सकती थी पर धर्म पर होने वाले आत्माचारों को सह लेना उसकी शक्ति से बाहर था । इसी काल में वीर-वदियों का दूसरी बार प्रादुर्भाव हुआ । महान् देश की आत्मा क्षुब्ध हो उठी । सिवाजी तथा छत्रमाल बुदेना भाग्न की पीड़ित आत्मा के विद्रोह का प्रतीक बन कर आ गये हुए घोर इसी विद्रोह की प्रतिध्वनि को भूषण ने अपनी यागी में चिन्तन रूप प्रदान किया । भूषण इस काल के प्रतिनिधि बीरवर्षि हैं । यह भाग मुक्त तो उगने पहले भी रही थी, पर उन्होंने इस में आग्राहति देकर घोर भी भरवा दिया । परन्तु यह भाग कुछ समय तक प्रबल रह कर धीरे धीरे मद पटती गई ।

इस काल की मुख्य रचनाएँ ये हैं—

बैजयदास (सं० १६६७) के 'रत्न बावनी' घोर 'वीरगहदेव चरित्र'; महाकाव्य जगन्नाथि के बड़े भाई चमरगह की वीरगा की प्रशंसा में बनवारी (संवत् १६६०) का काव्य; महोबा राजा उदयगिह के पदवीने मुख रचनाएँ गवरत्न (संवत् १७१०) की नृनि में तिनो प्रस्तान बरि का 'रावगन राधना'; मेवाड के राजा राजगिह पर त्रिणी धारण बरि का 'राजप्रकाश'; घोर उनके राजवर्षि मान (संवत् १७२०) का 'राजदेव विलास'; तथा मराठिव (संवत् १७२५) का 'राजगनावर'; राजा राजगिह के उत्तराधिकारी राजा प्रयन्ति के आश्रित बरिदों का किया हुआ 'रजदेव विलास' ।

(संवत् १७५०); प्रसिद्ध कवि भूपण त्रिपाठी (१७५०-६०) के रचे हुए 'शिव-राज भूपण' तथा 'शिवा बावली', सिक्खों के अंतिम गुरु गोविन्दसिंह (संवत् १७६०) का 'चण्डी चरित्र'; बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल के समकालीन लाल-कवि (संवत् १७६४) का प्रसिद्ध ग्रंथ 'छत्रप्रकाश'; भरतपुर के महाराज मुजान-सिंह पर भूदन (संवत् १८१०) का 'मुजान चरित'; जोधपुर के महाराजा विजयसिंह की वीरता पर 'विजय-विनाम' (संवत् १८३०), दरभंगा के महाराजा नरेन्द्र सिंह की विजय के उपलक्ष में लालसा (संवत् १८४०) का 'कनर-दीपाट सजाई'; पछावर (संवत् १८५०) की कृति 'हिम्मतवहादुरबिहवावली' जिस में अक्षय सेना के अध्यक्ष गोमाई अनुपगिरि उपनाम हिम्मतवहादुर की विजयों का वर्णन है; जोधराज (संवत् १८७५) का 'हम्मीर रासो' जिसमें रणाय-भोर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीरदेव का चरित्र है, और चन्द्रसोहर बाजपेयी (संवत् १९०२) का 'हम्मीर हठ'।

इनमें केदार, मान, भूपण, लाल कवि, भूदन, पछावर, जोधराज और चन्द्र-सोहर की कृतियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के आधार पर इस काल की विशेष-ताओं का निरूपण किया जा रहा है। इस काल की कविताओं का काव्यशैली विशेष गुण है ऐतिहासिकता अथवा गरवप्रियता। काल्पनिक घटनाओं का वर्णन मिलता अक्षय है, परन्तु भूपण, लाल और भूदन की लक्ष्यप्रियता विशेषतः प्रशंसनीय है। शिवाजी, छत्रमाल, कुमाई नरेश, मुजानसिंह एवं अन्य वीर नायकों से इन्होंने स्वतंत्रता का व्यवहार किया और उनकी कृतियों तक को प्रकट कर दिया। इनकी वर्णित की गई सब घटनाएँ सच्ची और व्योरे ठीक हैं। स्थानी और भद्रकीले वर्णन इन्होंने बहुत कम प्रस्तुत किये हैं। अन्य कवियों ने कवित्व नाने के लिए अथवा प्राचीन परंपरा के अनुसार वीर-रंग में शृंगार का घुट देने के लिए कुछ घटनाओं की कल्पना अवश्य की है। गदासिंह, जोधराज और चन्द्रसोहर ने प्रेम-प्रसंग को मुझ का कारण बनाकर पुगनी प्रथा का ही अनुकरण किया है।

भूदन और लाल-साध और कवि के अतिरिक्त कृतियों ने भी वस्तुओं की लक्ष्यी कीड़ी सूचियाँ देने की प्रणाली का अवलम्बन नहीं किया। भूदन के वस्तु-परिगणन के कारण भी प्रसंग के कथा-प्रवाह में बहुत ही बाधा पड़ती है। घोटों की जातियों के नाम, अस्त्रों-शस्त्रों के बड़े-बड़े व्योरे, भिन्न-भिन्न जातियों की सूचियाँ, दर्शनियों के नाम अथवा इन प्रकार के दूसरे विवरण बहुत ही अगचिपर हो गये हैं।

हिन्दी के इतिहासकारों में एक वर्ग ऐसा भी है जो कहता है कि इस काल में भी वही सर्वान्वे जातीयता के भाव पाये जाते हैं जो रामायण में थे। वेग ही

छोटे-छोटे राजाओं को युद्ध करने का प्रोत्साहन देने, विपक्षी (हिन्दू अथवा मुसलमान) से अपने चरित्र-नायक की श्रेष्ठता दिखाने, उनकी वीरता के प्रत्युक्ति-पूर्ण गान गाने और उग्र उत्साह-व्यजक उक्तियों के द्वारा वीरता के नारे लगाने की रीतियों इन काव्य-ग्रन्थों में भी उपलब्ध होती हैं। शिवाजी और छत्रमान के चरित्रों में हिन्दुत्व की भावना अधिक चमक उठी है। भूपण और लाल ने इस भावना की अभिव्यक्ति विशद रूप में की है। इनकी कविता के नायक न तो शिवाजी ही हैं न छत्रमान, न जयसिंह हैं न अक्बरीतमिह और न मुजानसिंह हैं न शम्भाजी ही। इनके मन्त्रे नायक हैं राष्ट्रधर्मी हिन्दू। पर ध्यान रहे उस समय की राष्ट्रीयता जातीयता का ही दूसरा नाम था।

इस युग की प्रायः रचनाओं में तुर्कों के युद्धों का वर्णन है। याद रहे कि तुर्कों का धर्म विदेशी मुसलमान रहा है जो भारतीय मस्तिष्क, वेश-भूषा और देश का शत्रु रहा। भारत में रह कर भी तुर्कों अपने को भारतीयता में पृथक् मानता रहा। ऐसी ही अन्धभारतीय मुसलमान के विरुद्ध इस काल के कवियों की लेखनी तन्पर रही। अतः इन कवियों की राष्ट्रीयता का संकुचित बहना ठीक न होगा।

प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य इस युग में उत्पन्न होते हैं। प्रबन्धों में युद्धों अथवा प्रेम-गाथाओं का विवरण मिलता है और मुक्तक कविताओं में नायक की विजयों, शक्तियों और गुणावलिओं की स्तुति तथा शत्रु की भीड़ना, पराजय और हीनता का वर्णन होता है।

ये सब प्रथम गीतिज्ञान में मिले गये थे। समय की छाप इन पर स्पष्ट होकर पड़ती है। अधिष्ठान रचनाएं रीति बड़ हैं।

'द्विगल' अथवा राजस्थानी भाषा का व्यवहार हिन्दी साहित्य के प्रादि युग के साथ ही समाप्त हो गया। वैष्णव कवियों ने वज्रभाषा का परिमार्जन और गम्भीर कर के उगे बहुत ऊँचा उठा दिया। उन्होंने इसके शब्दकोश प्रशिया को इतना समृद्ध बना दिया कि इसमें सब रंगों की कविता की जाने लगी। इसमें धान और शृंगार रस में तो कविता होती ही रहती थी, वीर-रस की अभिव्यक्ति के लिए भी अब इसमें पर्याप्त शक्ति पा गई थी। इस काल की प्रायः सब वीर-कविता वज्रभाषा में हुई है। भाषा उच्च कंठ के और भाषा घांजरूरी रहती है। जोधराज ने चंद प्रादि प्राचीन कवियों की वरंग भाषा का भी यत्न-यत्न अनुकरण किया है। भूपण ने भी बहो-बहो प्राकृत-अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया है। बुद्धिगंभीर, गड़ी बोली, पत्राबो, पूर्वी हिन्दी, पारसी, अरबी प्रादि भाषाओं के शब्द भी बगल-जगल मिलते हैं। इस काल के कवियों ने शब्दों की तोड़-भरोह मन चाहे की है। और भूपण ने तो एक-एक शब्द को बर्त-बर्त बिहिन शब्दों में प्रयोग किया है।



व्रजभाषा का प्राधिपत्य होने के कारण भाव-व्यंजना अत्यंत विस्तृत हुई है। जिम रस का वर्णन है ठीक उसी के अनुकूल पदविन्यास रखा गया है। शृंगार रस में कोमलकातपदावली और वीर रस में भोजस्विनी भाषा का बहुत सुन्दर सामञ्जस्य बना रहा है। यह बात चारण काल की कृतियों में नहीं थी।

अधिकतर वर्णन रीति-मदति के अनुसार होने पर भी कुछ एक कवियों ने दार्ढ्यविश्व और चमत्कार की परवाह न करके स्वाभाविक रीति में रचना की। नाम कवि और चन्द्रशेखर ने अपनी रचनाओं में कहीं कृत्रिमता नहीं माने दी।

छंदों में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ। कवित्त और छप्पय को प्रया को दश काव्य के कवियों ने सफलतापूर्वक चलाये रखा।

प्रयोगों का अधिकार कनेवर बैसा ही बना रहा है जैसा वीर-भाषा काल में था। अतः इमको सजाने के लिए नये नये आभरणों का प्रयोग किया जाने

लगा। केशव ने मवाद-सौली द्वारा, और विषयो के उपसीपक देकर

कनेवर बाह्य सौंदर्य को बढ़ाने की चेष्टा की है। मान ने 'राजविलास'

प्रयोग को 'विनायो' में विभक्त किया है, उपसीपक नहीं दिये।

जोषराज ने बहुत से प्रयोगों के नीचे मिश्र-मिश्र घटनाओं अथवा वर्णनों के शीर्षक दिये हैं, परन्तु कई स्थान पुरानी शैली के अनुसार ऐसे ही चले गये हैं। मान ने

भी माना 'अथप्रकाश' केवल अर्थों में बाटा है। मूषण की शैली में अपनी ही

व्यक्तिगत विशेषता है। यह सादर रहे कि 'सिवा बावनी' जिम में ५२ छंद हैं

और 'छात्रमाला' जो १० स्फुट छंदों का संग्रह है कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। मूदन

के 'गुजान चरित' में गुजानमिह की मान मुख्य लड़ाईयों का वर्णन है। अर्थों

के नाम ही उन्होंने 'पहला जग', 'द्वितीय जग', 'तृतीय जग' इत्यादि रखे हैं,

किन्तु अर्थों को 'अर्थों' में विभक्त किया है। भीषर और चन्द्रशेखर की रचनाएँ

छोटी हैं। प्रायः सभी कवियों ने प्रयोगों के आरम्भ में देव-स्तुति के छंद लिखे हैं।

छंदों का प्रयोग वीर ग्रन्थ का मिश्र-मिश्र है।

रीतिरागीन हिन्दू-मानना-ग्रन्थान वीर कविता के नमूने नीचे दिये जाते हैं—

(१)

सुमार उवाच—

रतनतेन बहू बाण भूर सामंत मुनिजिह्व ॥

करह पैत्र पनधारि मारि सामंतन लिजिह्व ॥

अरिप स्वर्ग अक्षरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अथ ॥

अरि अरि संगर आत्र मूर्खमंडल भेदहु सब ॥

अपुगाह नंड इमि उक्थारइ नंड नंड पिहहि करहु ॥

बहुतुं गुरंत हविषान के भरेहु दस यह प्रन धरहु ॥



प्रवधत प्रजेज तरंग उतंगह रगहि जे रिपु कटि रहे ॥  
 प्रवगाढ़ सु आयुध जजीत सुपायक सत्य तिए प्रचुरं ।  
 चित्रकोटधनी सजि राजसी राणमु भारि उजाग्य मातपुरं ॥  
 प्रति बटि अवाज भगी दिसि उत्तर पंच पुरंपुर रौरि परी ।  
 ग्रह कत सु ग्रंथक मूर ग्रह ग्रह पंच महा पिति सज्जि घरी ॥  
 उडि अम्बर रेनु ग्रहदल उम्मडि सोधि नदी दह मणसरं ।  
 चित्रकोट धनी चडि राजसी राण सु भारि उजाग्य मातपुरं ॥

(मान—राजविलास)

इसमें सदेह नहीं कि मान कवि को मान्ति या शृंगार रस में वीररस की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है । मुख्य रूप से घोर-ज्ज्वल और उदयपुर के महाराणा राजसिंह के युद्धों का वर्णन करना ही कवि का प्रयोजन जान पड़ता है । माधुर्य गुण की रक्षा करते हुए इन्होंने वीररस का अच्छा वर्णन किया है । 'राजविलास' में प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर रूप से किया गया है । अनेक वर्णन अनिशयोक्तिपूर्ण और अस्वाभाविक हैं । घोंड़ों की जानियों और लूटी हुई साम-ग्रियों की सूचियाँ प्रधानगार गिनाई गई हैं । इस ग्रंथ की भाषा राजस्थानी-मिश्रित व्रजभाषा है, परन्तु इसमें 'डगल' भाषा की संकलना नहीं हैं । कवि ने द्रव्य और मयुक्ताधारों को यथानुक्ति नहीं ध्यान दिया है । इनके पदविन्यास में कौमलता और अनुप्रासों में स्वाभाविकता आ गई है । यत्र-तत्र तुकभग और छंदोभग दोष अवश्य मिलते हैं ।

( ४ )

भारि करि पातसाही साकसाही कीन्हों जिन ।  
 जेर कीन्हों जोर सों ले हूँ सब भारे की ॥  
 चिसि गई संखी फिसि गई सूरताई सब ।  
 हिमि गई हिम्मत हजारो लोग सारे की ॥  
 बाजत दगामे सारों धौमा धागे घहरात ।  
 गरजत मेघ ज्यों बरषत चढ़े भारे करे ॥  
 झूठो निवाजी भयो बलिहारी दगामे धारे ।  
 दिल्ली दुसहिन गई सहर सितारे की ॥

(भूषण—शिवादायनी)

( ५ )

राजत अर्धं तेज धाजत शुभत बड़ो ।  
 गाजन गण्ड दिग्गजन हिय सात को ॥

जाहि के प्रताप सो मलीन आफताब होत ।  
ताप तजि दुग्जन करत बहु त्याग को ।  
साज सजि गज तुरी पंदर बतार कीन्हें ।  
भूषण भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ॥  
और राव राजा एक मन में न ल्याऊ ग्रव ।  
साह को सराहों के सराहों छत्रसाल को ॥

(भूषण—छत्रसालदशक)

भूषण बड़े प्रतिभाशाली और वीर कवि थे । उनकी कविता का उद्देश्य या हितुओं को जानीपना का पाठ पढ़ाना । हिन्दू जाति में जीवन और जागति पूर्वकने के लिए ही उन्होंने कविता लिखे थे । उनकी वाणी में सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र का स्वर है । इस विषय में वे हिन्दी के सर्वोत्तम कवि माने जा सकते हैं । यों तो इनकी सभी रचनाओं में वीररस का उद्भेक है, वैसे कविता की दृष्टि में 'गिवा-भायनी' सर्वोत्तम रचना है । भूषण में निरवृत्तता और उद्दण्डता प्रचल्य है और इनके प्रयोग में मुसलमानों के विरुद्ध ऐसे उद्गार भिमत हैं जो औचित्य का मीमासाय गये हैं, परन्तु उस समय के इतिहास का समझने वाले उन्हें इस विषय में दोषी नहीं कह सकते । भूषण के काव्य की विशेषता है वीरता का धानक-चित्रण । उनके युद्ध-वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य प्रमाणित होने हैं । उन्होंने अपने वीरों का वीरिगात अतिरजित रंग में किया है, पर उसमें भोज मग्नूर है ।

भूषण की भाषा विशेषतया ब्रजभाषा है जिसमें अपभ्रंस, बुद्धेलगण्ठी और गद्दी बोली के अतिरिक्त सरसी-फागमी के कितने शब्द भी आते हैं ।

( ६ )

बोहा

हैं हरात हाड़ा चल्पी, पंरनि साहसमूड ।  
बारा घरधोरग महे, मनो त्रिपुर घरधइ ॥

छन्द

बारा घर धीरंग उमड़े । मनो प्रलं धोर घमड़े ॥  
बजं मुद में निबिड़ नगारे । बुह दिगि बजं घरावे भारे ॥  
गुर तंभीर घोर धुनि छाई । फटि ब्रह्मांड परं जनि भाई ॥  
त्यो बोले उमराउनि हत्ता । जम के भये बटोले बत्ता ॥  
हय गय रय पंदस रन जूटे । छाइन सहित बचव घरपूटे ॥  
धंपति की अब बज्री बडूसं । मसहारिन की मेटी भूसं ॥  
बारागाह बजत रन छाग्यो । जबत पादसाही की भाग्यो ॥

हाड़ा सारा थार में बैठयो । सूरज भेद बिमाननि भँठयो ॥

(साल—छत्र-प्रकाश)

‘छत्र-प्रकाश’ में दोहा-चौपाई का ही प्रयोग हुआ है । साल ने छत्रमाल का चरित्र बड़े भावपूर्ण, मरुत और स्वाभाविक ढंग से किया है । बहुत भी घटनाएँ इनकी आयो देखी थीं इसीलिए इनके वर्णन विशद और स्वाभाविक बन पड़े हैं । मूर्चा-परिगणन और वर्णन-विस्तार के भार से कविता कही-कही सिधिल हो गई है । युद्ध के वर्णन इनके बड़े ही सर्वांग और सौंजपूर्ण हैं । चौपाइयों की अपेक्षा दोहे अधिक भावपूर्ण और प्रौढ़ हैं । प्रायः इनकी कविता ब्राह्मणध्वर और कृत्रिमता से रहित हैं ।

इनकी शैली के दो गुण विशेष हैं—एक तो स्तुति करते-करते वश का परिचय भी देते जाते हैं और दूसरे अपने नाम का वर्णन सर्वमान्य गुणों के दृष्टान्त में करते हैं ।

इनकी भाषा में राजभाषा, बुन्देलखण्डी, अवधी तीनों का समिश्रण है । ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि से ‘छत्रप्रकाश’ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है ।

( ७ )

बोहरा छन्द

भापसु पाय मु साह की । बड़े सकल सजि सैन ॥  
महरम खाँ उज्जरी सब । आये दिल्ली सु ऐन ॥  
इसो राज सिर छत्र धरि । अलावूर तिहि कात ॥  
घर घर भति आनन्द भुत । यह बिधि प्रजा गुपाल ॥  
रणत भँवर के सेत की । कीनो सकल प्रमान ॥  
प्रथम हने रराधीर ने । बहुरि सेन परिवान ॥  
सोय सख्य हमी परे । दोऊ जुंवर उदार ॥  
सेन चारवी की जितो । हनी जु असी हजार ॥  
हने भीर ई सन सतरि । और सिखन्दर साह ॥  
अट्ट सख्य घघार के । हने भीर निम आह ॥  
सया सहस गजराज परि । दो सय बाजि प्रतिह ॥  
द्वारस सय सेना प्रबल । हनी हमोर मुतिह ॥  
मस्तक राव हमोर को बिच मुमेर हर भाप ॥  
भुजित द्वार सबई धुसे बिद्या खय मुयाप ॥

(जीधराज—हम्मीर रातो)

‘हम्मीर रातो’ का ऐतिहासिक मूल्य मने ही कुछ न हो, परन्तु इसकी

कविता उच्च कोटि की है। इसकी कल्पना, मर्मता, रोचकता और भावात्मकता निर्विवाद सिद्ध है। कविता में पूर्ण भोज है। कवि को वीर और शृंगार दोनों रसों के उद्रेक में सफलता प्राप्त हुई है। प्रकृति वर्णन भी अच्छा हुआ है। कई घटनाओं के वर्णन काल्पनिक और अस्वाभाविक हैं। अर्नबागे का व्यवहार भी अप्रियकरपूर्ण किया गया है।

इनकी भाषा राजभाषा है, परन्तु इसमें कहीं-कहीं पुरानी भाषा का पुट भी मिलता है। छंदों में दोहा, चौपाई, छण्ड के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से छंदों का प्रयोग किया गया है।

सूदन और मान की माति इन्होंने नाम-मूचियाँ गिनाने प्रयत्न वर्णनों में तडा-तड-भडाभड लाने की चेष्टा नहीं की।

( ८ )

अंगद सो झड़ी पातशाहति पलटि डारयो ।

एषी एतो आजम लीं सबल बनेत मैं ॥

महा हूष भारत की जमनेती पारय की ।

जंसो भीम भुज बल भारयो कुरखेत मैं ॥

धीपर वृषान गहि भुसलेंह खान रन ।

कोनै घमासान यों मसान हहरात हं ॥

संडनि झेंडूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे ।

लानी लरं धीरं वेति पियत अहूत हं ॥

लोपरा लों लोपरनि कोरं गलकत गड्ड ।

पोरीलों पलासी लाल खेचि खेचि खात हं ॥

पासर से लापरनि अट्टबा चुरंतिन के ।

चाइ भरे खर खर चपरि खवात हं ॥

(धीपर—जंगनामा)

धीपर की कविता का विशेष गुण है प्रबल और सजीव वर्णन-बौलस। 'जंगनामा' परमगोपीय की प्रगन्न करने के लिए लिखा गया था जिसने जान पड़ता है कि मुगल साम्राज्य-बान के इन पिछले दिनों में भी हिन्दी कविता को प्रोत्साहन मिलता रहा। 'जंगनामा' की राजभाषा मनोहर और कहीं-कहीं प्रौढतिभी भी है। अतः जगह-जगह प्रवाद गुण का अभाव गटवना है। इसका कारण यह है कि इन्होंने प्राचीन और विदेशी शब्दों की तथा यन्त्रुषों की मूचियों की भरमार बगैरे वर्णन को अरविबर बना दिया है। ६६ पृष्ठों के ग्रंथ में १६ पृष्ठों में केवल नाम मूचियाँ हैं। यद्यपि अस्मिन्पूर्ण वर्णन मिल जाते हैं।

गहि गहि हय भटके दिशि दिशि पटकं भू पर पटकं नहि लटकं ।  
पाइन सो पोसे भरिगन मोसे जब से दोसे नहि भटकं ॥  
प्रति गजनि उठेलें दंतन ठेलें ह्वं भट भेसे जोर करं ।  
जुधयन सो जूटं नेकु न हटे फिर फिर छूटं फेर तरं ॥

× × × ×

करि करि इन टवरर हटत न थक्कर तन ताकि तयकर तोरत है ।  
मारे रन मुंडन भाले झुंडन तरु न मुंडन मोरत है ॥  
इमि कुजर लपटें डूह दल लपटें झुकि झुकि झपटें झूमत है ।  
भरि पटल गटा में फारस लामे सुघन घटा में धूमत है ॥

(पद्याकर—हिम्मतबहादुर-बिस्वावली)

पद्याकर की विशेषता है उनका अनुप्रास-प्रेम । शब्दों को विभक्त करने और प्रामोण बना डालने में उन्होंने वही सबाच नहीं किया । वे शब्दों के गिनवाट में प्रोज़ ताना चाहते थे, परन्तु मफल न हुए । वे शृंगार रस के कवि थे—वीर-रस के निरूपण में न तो उनकी भी प्रतिभा दिखाई देती है और न ही भाव-गम्भीरता । वर्णन अधिक है भावों का संगठन नहीं हो पाया ।

‘हिम्मतबहादुर बिस्वावली’ उनकी मध्व कृतियों में निरूपित है । इस ग्रंथ की भाषा में भी वज्रभाषा के साथ पुरानी हिंदी का सम्मिश्रण है । वही-वही अप्रचलित शब्द और मुहावरे बहुत मिलते हैं ।

पद्याकर की इस श्रमफलता का एक कारण यह भी है कि उन्होंने एक पापु-न्य और श्रवण्य व्यक्ति को अपना नायक बना ।

( १० )

बसतूरी बेसर बसमीरी । हे बपूर बचरी मुखरीरी ॥  
कुटकी बिटी बपूर बताये । कूड़कूठ कागिनी बचाये ॥  
कंदक चूर बटोर बरजा । बिममिस बंध बुन्निजन कंजा ॥  
बाय बरीजी बारी जीरी । बाइफरो कुचिसा कनकीरी ॥  
बुकरोपा बरहरी बतीरा । बनक बटाई बारी जीरा ॥  
बुनभी बसतगटा मुखबेसा । ककरासिगी कण्ड मुखेसा ॥  
बमममूम बिरवार बमेह । बावनून कर मूल बनेह ॥  
गिरनी बीजगरी गमजूरा । गार सोपरा बीम मुखीरा ॥  
मूजानी लम लम के दान । गडलार लूभी लम जानें ॥  
गेरोबन गेह गोमोमी । गोद गिलोह गोतल छोली ॥

(सूदन—मुजान बरिप्र)

‘मुजान बरिप्र’ में बरतपुर-जगेश मुजबमन जाट के ७ पद्यों का विम्वृत





लगी। लोग अपने पूर्वजों को मृत और जन्मी ममज्ञाने लगे। वीर-काव्य का धार्य ग्रन्थों को बकवास, देवी-देवताओं को भ्रम, वीरपूजा को तोमरा युग अन्धविश्वास और हिन्दुत्व को गभीरगुह्यता का नाम दिया जाने लगा। इधर पाश्चात्य सभ्यता के गुतामो के ऐसे विचार थे, उपर समाज में रुढ़िग्रिय लोगों, देश के स्वार्थी अमीरों, धार्मिक मिथ्याचार के शिकारियों के कारण भारत की दशा और भी बिगड़ती जा रही थी। देश की निर्यन्ता की वजह से सामूहिक भगाई की कोई आशा नहीं थी। इस समय कुछ ऐसे लोगों का ध्यान इन घुराइयों की ओर गया जिन्होंने घंगरेजी मिथा तां पाई थी, परन्तु जो भारत की दुरवस्था से दुःखी हुए। उन्होंने एक नया आन्दोलन गड़ा किया। चारों ओर से सुधार और प्रगति की आवाज भुनाई देने लगी। इसी उन्नति की भावना के साथ-साथ दूसरे ममज्ञाने भी मानने आने लगे। अब तां यह है गौन्ठितिक और आर्थिक प्रश्ना का राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

आगे चलकर राजनैतिक आन्दोलन बढ़ता गया। देश की स्वतन्त्रता का सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का एक ही माना गया। कांग्रेस की स्थापना के बाद राजनीति का पक्ष प्रमुख हो चला। राजनैतिक अमन्तोष बढ़ जाता। और साथ ही साथ सरकार के निन्द्यतापूर्ण दमन का वेग भी बढ़ा। राष्ट्रीय धीरो की परीक्षा का समय आया। उन और गन्धर्वजिओं की सहनशीलता ने धीरता की नई परिभाषा गड़ी कर दी। गौंधीवादिशों की यह अहिंसात्मक धीरता चिरस्थान तक जागृत रही। एक युद्ध में नेताजी सुभाष बाग ने स्वतन्त्रता के लिए हिंसावाद का प्रयोग किया और यद्यपि यह प्रयोग सफल न हुआ, तो भी 'आजाद हिन्द फौज' ने गणेश्वर में धीरता के ये हागनाये दिसाये कि भारत में एक नया उरठाट, नया धीरव और नई चेतना तथा आशा का प्रादुर्भाव हुआ।

समाज और देश में जो परिवर्तन होने रहे उनगे हिन्दी साहित्य अलग न रह गया। नर आन्दोलनों की प्रतिध्वनि बहिन में मिलती है।

राष्ट्रीयता के इस युग की मुख्य-मुख्य रचनाएँ ये हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—“भारतगिशा”, “जातीय-गगी”, “विजयिनी विजय-नंजयनी”, तथा “भारत-जननी”, “भारत दुर्ग”, “नीरदेवी” आदि नाटकों में फुटकर प्रमुख रचनाएँ गय।

बदरीनागणन चौधरी—“भारत गीभाय नाट”, “हादिव हादिव”, “भारत बगाई”, “मगनाया या हादिव घन्नाद”, “घापीभिनगर”, “प्रशान्तिनायक” आदि।

प्राज्ञानागणन मिश्र—“वति-प्रभा नाट”, “मन की महर”, “तोकोति

शतक", "ब्रह्मसा-स्वागत", "भारत दुर्दशा", "क्रंदन", इत्यादि ।

धीवर पाठन—“भारतगीत”, “भारत-गुन”, “भारतस्तव”, “हिन्द दन्दता” इत्यादि ।

वालमुकुन्द गुप्त—“स्फुट कविता” ।

राय देवी प्रनाद पूर्ण—“भरत वाक्य” ।

आयोप्यामिह उपाध्याय—“कर्मवीर”, “काव्योत्पन” इत्यादि ।

गयाप्रसाद शुक्ल “त्रिभूत”—“वृषक वन्दन”, “मानस तरंग”, “करम भागी” इत्यादि ।

मैथिलीराज्य गुप्त—“भारत भारती”, “स्वदेश गंगीन”, “मातृभूमि”, “मेरा देश” “उरा”, “भारत का झंडा”, “भारत की जय”, “हिन्दू”, “मुक्त”, “धनप” इत्यादि ।

माणनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा)—“पुष्प की अभिलाषा”, “जीवन-फल”, “बलिदान का मूल्य”, “कैदी और चोक्किल” इत्यादि ।

गियारामशरण गुप्त—“मौल्य विजेय”, “एक फूल की चाह”, “रुन”, “वर्ण”, “गौरव गाथा”, “उल्लाहना”, “जागरण”, “बापू”, “आत्मोन्नति” इत्यादि ।

विद्योती हरि—“बख्ते की भुंज”, “अगह्योपयोग बीणा”, “वीर वाणी”, “वीर सत्ताई” इत्यादि ।

गमनरेत त्रिपाठी—“जन्मभूमि भारत”, “आज्ञान” ।

बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’—“विजय गान”, “वराजय गीत”, “वस्तु की श्रम”, “कुतुहल”, “कैदी का स्वागत”, “वसति” ।

दिनकर—“हृत्कार”, “दिल्ली”, “वस्तुदेवाय”, “वृद्धाश्रम”, “रामन्ती” इत्यादि ।

नरेन्द्र—“वसति”, “भाषी गंगति” ।

इनके अनिर्विवाच्य अम्बिकादत्त व्यास, नाथूरामशरण शर्मा, राधाकृष्णदास, रामचरित उपाध्याय, गणनागचण्ड कविरत्न, विद्वन्नाथ मिह विद्याधी, रामानन्दा माधव, निरवन्तरनाथ, ‘नैपानी’, ‘दत्तारायण पाण्डेय, अनुप शर्मा, माधव शुक्ल, गुप्तबाबुशरी मोहन, शिवमंगलमिह गुप्त, धवन, आदि ने भी राष्ट्रीय कविताएँ लिखी हैं ।

नये शोध के द्वारा कवियों ने ‘आजाद हिन्द फौज’ और ‘भारत की स्वातंत्रता’ पर बहुत मोलतूर कविताएँ लिखी हैं । “बच मिली भाँग कर आजादी”, “बचो दिल्ली”, “आजादी के हम दीवाने”, “बलि”, “जय हिन्द”, “जय मुन्ना”, “बलिदान”, “रुग्णभेरी”, आदि शीर्षक पर-अभिधाओं में प्रायः गेयकर्मों देने की प्रवृत्ति रही है । देवराज शिन्हा, मोहनलाल गुप्त, प्रकाश-चन्द्र, नरेश, शिन्हा शर्मा, ‘मधु’, प्रमोद अनेक युवकों की कृतियों में इसी प्रकार की उद्भासना सह-

पनी है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद संपर्क की स्थिति समाप्त हो जाने के कारण यह धारा भी अब आगे नहीं बढ़ रही।

चंद्रशेखर वाजपेयी प्रबन्ध-पद्धति के अन्तिम कवि थे। उस समय तक जितनी रचनाएँ प्राप्त हैं उनमें भारतीयता अथवा राष्ट्रीयता का नितान्त अभाव है। हिन्दी में राष्ट्रीय कविता के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। उन्हीं ने काव्यशैली उस धारा के प्रवाह का श्रीगणेश किया जो आज इतने जोरो में बहती चली जा रही है। इस धारा की चार शाखाएँ हमारे साहित्य में मिलती हैं।—

१—हिन्दुत्व तथा हिन्दू समाज में सुधार,

२—भारत का उज्ज्वल अतीत और दीन-हीन वर्तमान,

३—गांधी जी का अहिंसावाद, और

४—मातृभूमि के लिए प्रेम तथा उसकी स्वतंत्रता के लिए उग्र भावना।

X                      X                      X                      X

(१) मुगलमानी काल में जो आंदोलन हिन्दू-मस्जिदों की रक्षा के लिए भूषण, लाल और अन्य वीर कवियों ने उठाया था, उसकी गूज अब तक बनी रही। धार्मिक-समाज, ब्रह्मसमाज तथा अन्य सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से वही भावना थोड़े भेद के साथ फिर जागृत हो उठी। हिन्दी साहित्य में सतीत्व-रक्षा, गो-रक्षा, मूर्ति-रक्षा आदि की पुनरा मुगलमानी सामन-जाल से बचने आ रहे रूप में मिलती हैं। अधिकतर कवि हिन्दू समाज में धार्मिक और सामाजिक सुधारों के पक्षपाती थे। वे अविद्या, जूझा, नस्तेबाजी, स्त्रियों की अज्ञानता, विवाह के अवसरों पर अप-व्यय, वर्णभेद, बटु-विवाह, बाल-विवाह, बूढ़-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध, बाल-हत्या आदि बुराइयों का शूलोच्छेदन कर देना चाहते थे।

सुधारवादमयी कविताएँ बहुत कम मिलती हैं। ऐसी कविताएँ लोक-प्रिय नहीं हुमा करती। इनमें कवित्व अथवा कला का अभाव बहुत गटबता है। प्रचार-साधक साहित्य के लिए मध्य ही उपयुक्त होता है। उनमें हृदय की बात न रह कर अधिकांश भक्ति की शोषण रहती है। भारतेन्दु की “जनकृतृता”, बाबर-प्रसाद दीक्षित की “विज्ञानबोध”, छात्राराम तन्पाणी की “गो उपमा प्रस्तावक मञ्जरी” और “गोरक्षा उपदेश मञ्जरी”, वासी के माधव कवि की “कलमुग गर्वांगी” जैसी रचनाएँ बहुत साधारण भी हैं। राष्ट्राणन्ददास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, महेशप्रताप नारायण, आदि बड़े-बड़े कवियों की स्वतन्त्र रचनाओं में ही सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का उल्लेख हुआ है। उनकी कविताओं में जहाँ अन्य विषय हैं, वहाँ सुधारों के सम्बन्ध में भी कुछ कह दिया

है । हिन्दी काव्य में मुधारवाद की अभिव्यंजना गद्य में ही मफरना-पूर्वक हो गई है । काव्य में इसका स्थान हीन ही रहा है ।

नाचे हम मुधारक कवियों की रचनाओं में कुछ पद्य दे रहे हैं—

आवश्यक सामान-संग्रोधन करो न देर लगाओ,  
हृए नवीन सग्य धोरों से झपने को न हँसाओ ।  
सीमो नई पुरानी दोनों प्रकार की विद्याएँ,  
दोनों प्रकार के विज्ञान मित्राओ रच शासाएँ ।

(प्रेमघन—प्रानंद आशोदय)

बीन करे जो नहि बसकन मुनि बिपति बास विषयन की है,  
ताने बड़ि कं कन्दना कान्यदुख-कन्यन की है ।  
बँर परे पितु मानु बनाई युपनी धाल बूढ़न की है,  
पशु सम समझी जात नहि बनिना श्रुतिबंशन की है ॥

(प्रतापनारायण मिश्र—घन की सहर)

प्रार्थना धर ईश की सब करहु कर जुग जोर ।  
बीनदग्ध मुदृष्टि कीजं बालविषया धोर ॥

(श्रीधर पांडव—बालविषय)

बाम विवाह विज्ञान जाल रच पाप कमाया ।  
पह्लाचर्य-घन-बान युधा विपरीत गैबादा ॥  
धबला ने चुपचाप उठाय पद्माङ्गा मुग की ।  
बेटा जन कर बाप बनाय बिगाड़ा मुग की ॥

(नाथुरामशंकर शर्मा—सरस्वती, गन् १६१०)

भगवान हिन्दू जाति का उरवान लंगे हो बना ।  
नित यह कुरीति बोजेन वाली घोटनी उमका गना ॥  
मुकुमारियाँ ये भोगनी हैं घानना बिननी बड़ी ।  
जो पुनं धोवन बान में भी हैं बिना ध्याही पड़ी ॥

(गोपामाशरमिह—सरस्वती, गन् १६०७)

(२) हिन्दुत्व को उद्बुद्ध करने वाली कविताओं का एक धोर मन्त्रवर्ती मध्य है प्राचीन हिन्दू गौरव का संज्ञे । इन कवियों के बनिन ध्यक्ति प्राचीन हिन्दू भाग्य के रत्न धोर हिन्दू-मनृति के प्रतीक है, इनकी रचनाओं में धारे हुए भाव हिन्दुत्वमय हैं, इनकी रचनाओं में हिन्दू-जीवन धोर परंपरा के ही बिष उगमिष्टा बर्णी हैं । परन्तु ये बरि मन्त्रुन भाग्य की उग्रति के उग्रुत हैं । प्राचीन की नाद बगने के भागीयों की जानुत करना चाहते हैं । भाग्य का प्राचीन या ही हिन्दू मन्त्रा में पुनं । भाग्य के प्राचीन देगनका ये ही हिन्दू । प्राचीन

भारत के गुण-मान करने में इन कवियों ने सच्ची राष्ट्रीयता का परिचय दिया है। पृथ्वीराज, राणा प्रताप, भिवाजी आदि राष्ट्रीय वीरों और चित्तोड़, हल्दीघाटी और पानीपत की भीषण लड़ाइयों के ज्वलन्त उदाहरण देकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जगाने का ही यत्न किया है। वैदिक काल के ऐश्वर्य, गल्पप्रेम, स्वा-तन्त्र्य, और महत्त्व का उल्लेख करते उन्होंने अथ पतित भारत-वासियों को संजगृत करते उन्हें गजय करना चाहा है। बाल की गति से जो भावनाएँ और समस्याएँ विप्लव हो गई थीं उनका भारत और हिन्दुओं के माने पुनर्निर्माण करना ध्येय रहा है। वे देश की अनीत और वर्तमान अवस्था के वैषम्य पर अत्यन्त क्षोभ और व्यथित दिखाई देने हैं। प्राचीन संभ्रम के विनाश पर इन स्रज ने हार्दिक दुःख प्रकट किया है।

भारतेंद्र ने 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' नाटकों में अनेक पदों और गीतों में वर्तमान अवस्था का गाना रोया है और "आपहु, सब मिलि रोवहु भारत भारि" में सबको इस पल पर ओझू बहाने को बहकर संजगृत कर दिया है। कृष्ण, अर्जुन, राम और बुद्ध के देव में इतना अज्ञान, इतनी गिरावट। 'प्रेमधन' दूरी कारण दुःखी है। इनके विनाश भारत का यो ह्रास। परीक्षित, जनमेजय आदि के वर्तमान पदार्थों में उन पूर्वजों का कोई गुण शेष न देखकर राष्ट्रीय-ह्रास माना है। अविनाशन ध्यान भारत के प्राचीन रत्नों की याद कर आश्रय-प्राप्त हो रहे हैं। प्रतापनामधेय मिथ ने भारत के प्राचीन गौरव के ह्रास पर दुःख प्रकट करने हुए आश्रय को लक्ष्य और उनके भयावह परिणामों की ओर देखा था ध्यान दिनाया है। भारत की वर्तमान दुर्दशा गीतागोविन्द की दुःखी बन रही है। गीतम, कणाद की जगमग में इतना परिवर्तन। मियागमसारण गुण वर्तमान को तुलना करने दिनों से कर रहे हैं। मैथिलीनामधेय गुण भी गीतम द्वारा सम्मानित प्राचीन भारत का भ्रष्टा और प्रेम की दृष्टि से देखते हुए वर्तमान दुर्दशा की ओर गते कर रहे हैं। प्राचीन भारतस्रज की महत्ता और उसकी वर्तमान दुर्दशा में अतन्त अन्तर है। रामचरित उवाच्य, रामचरित विनाशी, 'विशाल' 'दिना' आदि अनेक कवियों ने भारत के अनीत गौरव का गाना गाया है।

इन कवियों की रचनाओं में अनेक गम्भीर और भावपूर्ण बातों के अति-विशालोद्वेग भी हैं। पुरातन में निम्न पाकर वे समाज के अनेक विनाश में विनाश मानते हैं। देश की सम्यक्-उन्नति उन्हें अत्यन्त प्रिय है। इस पल की कविताओं में एक और विशेषता भी है। इस प्रकार की गम्भीर रचनाओं में ईश-विश्व पर जोर दिया गया है। प्रायः सभी कवियों का ईश्वर-विश्राम है। वे ईश्वर से देश को उद्धार, आश्रयों को सम्पूर्ण प्रदान करने

को प्रायना करने हैं। इस प्रकार कविनामों में नावकुना और शोज के गाप-गाप बहुत सुन्दर ऋषि का दिग्दर्शन होता है।

ऐसी रचनाओं के उदाहरण —

हाथ पंचनद, हाथ पानीपत।

अजहूँ रहे तुम धरनि विराजन।

हाथ चिनोर निलज तू भारी।

अजहूँ सरो भारतहि सभारी।।

भारतेन्दु—'विजयिनी-विजय वंजयनी'

× × × ×

कहाँ परीक्षित कहें जनमेजय कहें विजय कहें भोज,

नंदवंश कहें चंद्रगुप्त कहें हाथ कहें वह शोज।

बान विवरा हो गए नृपति ये तो क्यों उनके शायक,

ए न उनके सम वाक्यो छाता अपने कुनप्रातक।

(राधाकृष्णदास—'विजयिनी विलाप')

× × × ×

कहाँ आज्ञा दशवतु वस्तुस्थल कहें भाग्यदाता।

कहाँ दिनीप रूप अजहूँ कहें दशरथ जगप्राता।

सुखीराज हमोर कहें विजय तब-नायक,

कहाँ आज्ञा रत्नतीन सिंह जग विजय-प्रकाशक।।

जाही दिन बुरदमा सब भारत पे छाई,

साहि दिन क्यों नहीं गयो पानात समई।।

(संविवाददास व्यास—'मन की उमंग')

× × × ×

हम दोन ये क्या हो गये हैं, जान लो इसका पात,

जो ये कभी गुर हैं न उनमें शिष्य की भी योग्यता

जो ये मनी ये अग्रगामी आज्ञा पाये भी नहीं,

है दोनो संगार में विपरीतता ऐसी नहीं ?

जिन पुरुषों के सङ्गुनों का सब जो रत्नो नहीं,

सह जानि जीविन ज्ञानियों में रह नहीं सकनी नहीं।

(मंथिनोदरदास गुप्त—'भारत भारती')

× × × ×

संगार मर में यह हारा देता ही निरमोर था।

सीढ़ीय मनुष्य ज्ञानि में ऐसा न कोई छोर था।

(विजयरागदास गुप्त—'हमारा हृदय')

(३) उन्नीसवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य मध्यवर्ग का साहित्य था। इसमें अंगरेजी शासन के प्रति संतोष और भक्ति के भाव अधिक मिलते हैं। और तो और १८५७ ई० की महत्त्वपूर्ण आति तक का उल्लेख नहीं मिलता। उन कवियों की राय में आति का होना देश के हित के लिए कोई अच्छी बात नहीं थी। अतीत बीरो की याद में गाने गाना तो ये अच्छा समझते थे, परन्तु उन बीरों और बीरा-गानाओं के विषय में जिन्होंने मरहटा युद्धों में अथवा सन् ५७ के स्वतंत्रता-संग्राम में अपने प्राण चित्तर्जित किये, एक शब्द भी नहीं लिखा गया। किसानों और निम्न वर्ग की और ज्यों-ज्यों हमारे साहित्यिकों का ध्यान बढ़ता गया, त्यो-त्यो अंगरेजी सरकार की शोषक नीति भयंकर रूप में सामने आने लगी। इस शासन के विरुद्ध गुणा, अविश्वास और पक्ष धरने लगे। स्वतंत्रता की मांग जोरों में उठने लगी। इसी समय देश को महात्मा गांधी के नेतृत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रेरणा से कई आन्दोलन उठाये गये—मत्याग्रह, अहिंसा, असहयोग, आत्म-वर्तिमान, आर्थिक सुधार, स्वदेशी आन्दोलन, विदेशी बहिष्कार इत्यादि। इन सब की प्रतिध्वनि हिन्दी साहित्य में मिलनी है।

भारत-मुक्त-मुक्त के कवियों ने गरीब किसानों और मजदूरों की निर्धनता का उल्लेख अवश्य किया, परन्तु उभ निर्धनता को दूर करने का उपाय उन्हें न मूल पड़ा। द्वितीय-युग में ये वर्ण विषय प्रधान बन गये। गयाप्रसाद शुक्ल 'रत्नेही' गांव वालों की दीनता और दुरवस्था से पूरी सहानुभूति रखते हैं। वे जमींदारों द्वारा भ्रष्ट छीन लिये जाने पर किसानों की मनोव्यथा का बड़ा मार्मिक चित्रण करते हैं ('देगिये 'दुनियाँ किसान')। सामंजस्य उपाध्याय भानु कृष्ण की दुर्गता से बहुत दुःखी हैं ('देगिये 'शून्य हृदय')। गुप्तों के प्रति सब से अधिक सहानुभूति, संवेदनशीलता गुप्त की कृतियों में है। उनकी 'कृष्ण-कथा', 'विमान', 'भारतीय कृषक' आदि कई रचनाएँ किसानों पर हैं। वे जनता से इन दीनों की दशा को गुप्तारने और देश को इस वृत्ति में उत्तम करने की अपील करते हैं। वे कवि धीन नहीं बने। कुछ कर गुजरने की प्रेरणा करते हैं। विद्यमानाधिकृत कृष्ण, मजदूरों और किसानों की जागृत और संगठित हो कर देश की उत्पत्ति करने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। थोपर पाठक, गोपामनगगावित, और अन्य अनेक कवि किसानों और मजदूरों को गन्नेवा का वन धारण करने को कहते हैं। उनका विश्वास है कि देश और जाति का दुःख यहाँ दूर कर सकते हैं।

इस समय का युग-जो प्रगतिवाद की सड़ के सम्बन्ध में लिया जायगा, वर्तमान कविता में धारा की शक्ति पायी जाती है। इसमें उगाह और विश्वास है।

जनता को जागृत करने और उन्नति के लिए

कवि साम्प्रदायिक सदिच्छा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और महयोग के लिए बहुत चिन्तित है। द्वेषपूर्ण साम्प्रदायिकता पर राय देवीप्रसाद और रामनरेश त्रिपाठी अत्यन्त दुःखी हैं। रूपनारायण पांडेय भी भ्रातृत्व का उपदेश देने हैं, क्योंकि भ्रातृत्व और महयोग से ही लोगों में शक्ति का संचार होगा और देश स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो सकेगा। इन कवियों को विश्वास रहा है कि अधिकारों की भीषण नहीं मिला करनी, अधिकारों की प्राप्ति मघटन की शक्ति में प्राप्त होनी है। और मघटन के रहने हैं। उनकी रक्षा की जा सकती है।

धार्मिक युग के आदि कवियों को दारकों में राखने का धार्मिक रुढ़ा के को आशा थी। परन्तु कालान्तर में यह आशा निरर्थक सिद्ध हुई। अमृतोष बढ़ने लगा। गार्गीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने, मविनय अवज्ञा आन्दोलन का भीमगोश किया। शासकों ने दमन की नीति का अवलम्बन किया। हजारों वीर और वीर-गनाएँ इस दमन का शिकार हुईं। भारत में बलिदानों का ताँता लगा, देश पर मिटने वाले युवकों ने अहिंसात्मक वीरता का नया पाठ पढ़ा। युगदेवता गांधी की आत्मा की उपासना में हिन्दी साहित्य में नई वीर कविताएँ रची गईं। इनमें बहुत से गीत सत्याग्रही वीरों के गाने के लिए लिखे गये हैं। बहुत से गाने इन्हें उत्साह और आशा का मदेश तथा त्याग और अहिंसा की शिक्षा देने हैं। अनेक कविनाएँ इन वीरों की सहनशीलता, दृढ़ता, धारम-बलिदान और साहस की प्रशंसा में लिखी गई हैं। वीरगूजा इनका प्रधान लक्षण है। महात्मा गांधी पर मियारामदास गुप्त, पन्त, और मोहनलाल द्विवेदी की लिखी हुई कविताएँ बड़ी ही मार्मिक और प्रोज-पूर्ण हैं। अन्य नेताओं के प्रति भी अत्यन्त यत्नायक उद्गार प्रगट किये गये हैं। मामाभ्य गैतिकों, यशियों, शहीदों और दोषानों की भी अभ्यर्थना की गई है। मुमशकुमारी चौहान, गुप्त, नवीन, मागलनाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा), नेमानी, और कई दूसरे कवियों ने इन वीरों को आदर्श में लिए लिया है। सत्याग्रहियों में मवद्ध स्थानों और घटनाओं (जैसे बान्टोनी और जालपोराया याग) का वर्णन भी सुन्दर रीति में किया गया है। कई कवि देश की उन्नति के लिए अपना बलिदान करने की तत्पर हैं।

इस प्रकार की कविताओं में कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

दौल कृपक जन औरहु दया-जोष बरगाहों;  
जिनके तन पर रश्मि-वस्त्र भगियन बहूँ नाहों।  
मिहनत करत अधिक पर धन्य बहुत कम पावन;  
मे निज भुजबल हल क्षपाय के जगल त्रिपात।  
निनहि मिलावहु कृपी कर्म जग होत विपादन,



करि सहायता और सुखी करि देह यथावत ।  
(प्रेमघन—'स्वागत')

यदि तुम होते दीन कृपक तो प्राँस तुम्हारी खुल जाती ।  
जेठ-घाम में अस्थि तुम्हारी तप्त स्वेद में घुल जाती ॥  
(रामचरित उपाध्याय—नूतन हृदय)

पाया हमने प्रभो दीन सा प्रात नहीं है ।  
बया प्रय भी परिपूर्ण हमारा ह्राम नहीं है ॥  
मिला हमें बया यही नरक का वात नहीं है ।  
विष खाने को हाथ टका भी पास नहीं है ॥  
(मंथिलीशरण गुप्त—कृपक-कथा)

विद्यार्थी मजदूर कृपक ही सच्चा राष्ट्र बनाते हैं ।  
उनके बिना राजा गण वहीं नहीं कुछ कर पाते हैं ॥  
हृत्क उठो, छात्रगण जागो, मजदूरों रोना छोड़ो ।  
सपना सच्चा रूप देख लो गली गली रोना छोड़ो ॥  
(विद्यजनाथसिंह विद्यार्थी—दाँटो के बाम)

जंत घौड़ पारसी घूँसी मुगलमान सिल ईसाई ।  
फोटि कंठ से मिलाकर बहु दो हम सब हैं भाई-भाई ॥  
पुण्यभूमि है, स्वर्गभूमि है, जन्मभूमि है देश यही ।  
इस में बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं ॥  
(छपनारायणपांडे—मानभूमि)

मानचित्र भारत का अखिल कृपकी की कृप काया में ।  
गय रह्य है दिवा हमारा इन निश की काया में ॥  
जावर दंगो पंगे बनता गूल प्रेम का विगत विगत ।  
पूने में यन्ददा जेरा में तरु रसातल की दाया में ॥

(निश—उमंग)

है धपुन यह युद्ध हमारा हिमा की न सदाई है ;  
गयी दागी की मोपों के ऊपर विरट सदाई है ।  
ततदागों की धार मोड़ने गर्दन छागे सदाई है ,  
गिर की मारों से डरों की होनी घटी सदाई है ।  
ऐसी ऐसी यह न सदाई सदागमर सरदानों का ;  
जिग में । —जिगमि का प्राणों के यन्त्रिदानों का ।

(नेरानी—उमंग)

तिसा रहे जगनीत में वह सत्पाग्रह का साका,  
 हाथों में हथियार न थे, हाँ, बस धी यही पतारा ।  
 रोध न सका इसे बढ़ने से लोहे का भी नाका,  
 धी से समकृत प्रतिन विद्व ने नया तर्क सा तारा ।  
 है बलिदान वहाँ तो जिससे हत्यारा भी हरे,  
 निज विजय-दनाका चहरे ॥

(भविष्यीकरण गुप्त ।)

छूटा बारागार छात्र में करणागार तुमने पाऊँ,  
 पंरों के हो नहीं शीत के द्वारा भी जाने पाऊँ ।  
 जिन में बड़ी धी उन में धा पड़े लिपटने के धपन,  
 जिन में पड़ी हयकटो उनमें पड़े सापनों के कंगन ।  
 तीर पड़ी धी पटो बंड भा के गुण का कम गान करे,  
 रबागन का बदला बदले में वह मुम को बलिदान करे ।

(भागनीय आत्मा)

रत्नों से बने जवान पाप प्रतीकार न जब कर पावे हैं,  
 बूढ़ों की सुटती साज देखकर काप-काप रह जावे हैं,  
 शत्रुओं के भय से जब निरस्त आग्र भी नहीं बटाने हैं,  
 धी अपमानों के गरस घूट शासित जब होठ चवाने हैं,  
 मिग दिन रह जाना बोध भीन, मेरा वह भाषन जन्म-सगन ।

ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ॥

मेरी पायल शनकार रहो तलवारों की शनकारों में,  
 धरनी आगमनी बजा रही में आप कुछ हुँकारों में,  
 में धरंकार-भी बड़ब टडा हुँगी दिष्टा की धारों में,  
 बन बाल-तृताज्ञ तेल रही पगलो में फूट पटाइों में,  
 घोंगड़ाई में भूवाल, तगि में सबा के उनचाग पधन ।

ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ॥

—(इनकर 'विषयगत')

गमपारीसित इनकर बिदा के गमनीय गीतारों में धपनों हैं । ज्यों  
 गान्ध की धारि मग्गि के धनेक गीत गिने हैं । नागर, वैशाखी, पाटनियुन,  
 गान्धाय, गाबी धारि रवानों की गोख-गाथाये ज्यों धने धनेक बाव्यों में  
 गान्ध हैं । दिष्टि गान्ध की धाना के धिन भी ज्यों धित गिने हैं । कर्तव्य  
 में गिनी गान्ध ज्यों बलिदान वही धान्यून धीर धृतिमान हैं ।

×

×

×

×

(४) भारतेन्दु-युग में ही भारत भूमि की प्रशंसा के गीत गाये गये थे । भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, 'प्रेमघन' आदि मय कवियों की रचनाओं में अपनी जन्मभूमि के नाम पर प्रशस्तिपाठ मिलते हैं । द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय और रामनरेश त्रिपाठी आदि ने मातृभूमि के मीदर्य पर बहुत कुछ लिखा है । मैथिलीशरण गुप्त के गीत बड़े व्यञ्जनात्मक और गजीब हैं । अपनी मातृभूमि की दामता में छुड़ाने के लिए ही वर्तमान कवियों ने प्राति का नाद उठाया । मसयाप्रङ्ग-आन्दोलन में बहुत से कवियों का विश्वास सिध्द होने लगा । सुभाषचन्द्र बोस आदि नेताओं ने उस नीति का अग्रजम्बन करने की प्रेरणा दी । बंगाल विच्छेद के दिनों में देश में आतङ्क-वादियों का कोई न कोई दण्ड इमी नीति पर काम करता आया था, परन्तु जनता का हममें विश्वास न था । इसी-लिए हिन्दी साहित्य में दगाही प्रतिध्वनि विशेष रूप से नहीं मिलती । गले विश्व-मुठ में सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में इमी नीति का सकल प्रयोग किया गया । आजाद हिन्द फौज के गैरिक स्वतन्त्रता देशी के मन्दिर पर पहुँच गये, पर उन्हें दर्शन न हो सके । सन् १९४५-४६ ती अधिवक्तर कविताओं में इन्ही नेताओं और गैनिरों की प्रशस्तियों और भारी रचनाएँ मिलती हैं । इनका उन्मैल्य हम पीछे कर चुके हैं ।

उदाहरण—

हमारे उत्तम भारत देग ।

जाके तीन ओर सागर है, उत हिमगिरि अति खेय ॥

श्रीगंगा यमुनादि नदी हैं विध्यादिक परिवेष्ट ।

राधाचरण निधप्रति बाड़ी जत्र लो रवि-राजेज ॥

(हरिद्वन्द्व-चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका)

अप्य भूमि भारत सज्ज रतननि की उपजायनि,

बीर विदुष विद्वान् जाति-नरवर प्रगटायनि ।

यदपि सर्व दुःख सों सब भोति भई है भारत,

तऊ अप्य अनेक मुनन अकहुं लो भारत ।

(प्रेमघन—नागरीनारद, सन् १८६०)

बंदहु मातृ भारत-धरनि ।

मेज हिमिगिरि मुख्य मुगगरि तेज तरौमय तरनि ।

गरित घन वृत्रि नरिन भुज्जमि मरण कवि-मनहरनि ॥

(श्रीधर पाठक—मनोत्रिनोद)

मुख-धाम अति अमिराम गुननिधि, नीमि नित प्रिय भारतम् ।

(श्रीधर पाठक—नीमि भारतम्)

जय-जय भारत पुष्पनिषान ।

इस त्रिभुवन में अन्य देस क्या है तेरे समान ।

दुर्गम दुर्ग बने हैं तेरे विन्ध्य हिमालय अचल धनी ।

अविजय लाई है बारिधि की तनिक न होना विजय कभी ॥

(रामचरित उपाध्याय—भक्त्यभारत)

बलि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिसमें भंग-भंग झूनाए ।

प्राणों के मार्ग पड़ जायें शक्ति-शक्ति रख नू में छाए ।

मातृ और सत्यानाशों का धुंकाधार जग में छा जाए ॥

नियम और उपनियमों के ये बंधन टूक-टूक हो जाएं ।

विश्वभर की धोषक चीन्हा के सब तार भूक हो जाएं ॥

(बालकृष्ण शर्मा नवीन—पुंजुम)

गोलियों जब दनदना कर बीधती उरजायेंगी,

मामने जब तोप गोले घाग के बरमायेंगी,

मोक में मंगीन की, लोने पिरोये जायेंगे,

राष्ट्र की बलिबेहिवा पर शोभा चढ़ने जायेंगे,

बहकने भंगार पर सब पग बढ़ाता झाड़ंगा ।

मौन तो भी मैं बनन, तेरे लिए भिड़ जाऊंगा ॥

(सोहनमाल—एक निश्चय)

इस सम्बन्ध में यह भूतिज कर देना आवश्यक है कि कुछ रचनाओं को छोड़ कर प्रायुक्तिक युग की रचनाओं में व्यापित्व-गुण नहीं है । इन में सामन्तिका और सामन्तिका अधिक है—कल्पना की उन्नत कम है । इनमें शक्ति और शक्ति तो है परन्तु शक्ति और शक्ति बहान कम है । इनमें शक्ति-कल्पना अल्प है पर भावना का अभाव है । अन्ततः इनका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है ।

प्रायुक्तिक काल में प्रख्यातक वीर-काव्य बौद्ध नहीं लिखा गया । इन रचनाओं की युद्ध के गीत कल्पना ठीक होगी । काव्य के रचनाओं में शक्ति-कल्पना का भाव प्रमुख है । श्रुती प्रवृत्ति, चारुमयी शक्ति-कल्पना और विद्वत्ता अथवा मोक्ष-पन इनमें नहीं है । इन रचनाओं के गीतों में प्रकाश, प्रभाव, गबाई और भावुरता है । इन्होंने काले रक्ति-कल्पना के लिए रचना नहीं की है । इनमें शक्ति अल्प है और शक्ति-कल्पना है । इन्होंने समय की परिस्थितियों के अनुकूल भाव-कल्पना की है । इनकी दृष्टि व्यापक और हृदय उन्नत है ।

इस युग की रचनाओं में शक्ति का भाव शक्ति का युद्ध नहीं, शक्ति

बाल्य और करणरम का गमज्जस्य रहता है। शृंगार वा तो नितान्त प्रभाव ही है। व्यंग्य के साथ वही-कही हास्य-रस अवश्य मिलता है।

प्रायुनिक काल के आरम्भ की रचनाओं पर रीतिकाल की प्रक्रिया और प्रणाली की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इस समय पद्य के क्षेत्र में वज्रभाषा का

प्रभाव ही आधिपत्य था। पर गद्य की भाषा अर्थात् खड़ी बोली का प्रभाव भी कविता पर पड़ने लगा। देश भक्ति की कविताओं में यह प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है। भारतेन्दु, श्रीधर

पाठक, प्रतापनारायण मिथ्य, 'प्रेमघन' आदि कवियों की भाषा खड़ी बोली के निवृत्त आती जा रही है। भारतेन्दु-युग में खड़ी बोली के काव्य प्रायः नहीं मिलते। इनमें वज्रभाषा, उर्दू, फार्सी, अंग्रेजी शब्द भी आते हैं। देशी मुहावरों और वहावों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

भारतेन्दु-काल के अन्तिम चरण में खड़ी बोली की एवमात्र काव्य-भाषा बनाने का आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन की सफलता द्विवेदी-युग में प्राप्त हुई। वज्रभाषा के लक्ष्य का निर्धारण किया जाने लगा। अप्रवर्तित, रुढ़ तथा प्रभावहीन शब्दों को चुन-चुन कर बाहर निवाला गया। देश-भक्ति की अधिनाश कविताएँ हज़रतगद्दी, मर्यादशी सीरो और मापारण जनता के गाने के लिए लिखी जाती थीं। इन्हें बोलचाल की भाषा का प्रयोग बढ़ाने लगा। नायगम शरर रामी, गमचरिल उपाध्याय, मैथिलीकरण गुप्त आदि ने सरल और मौन-प्रिय भाषा में रचना की। शुरू-शुरू में यह भाषा आहम्बर-पूर्ण, शिथिल और अव्यवस्थित थी। शब्दों की आगमा और उनकी जड़ों में वे कवि अपरिचित थे। ध्यान की अनुप्रास इनमें अनेक जगह मिलती हैं। किन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा अनाध्यागिह और गुप्त वन्युषों के प्रयत्नों में काव्य-भाषा शुद्ध और गार्ह-न्यिक आदर्श पर आती गई।

वर्तमान समय में भाषा के पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया है। तैरिन प्रायः हर एक कवि में बर्द तेरे विविध प्रयोग प्राप्त होते हैं जिसका अर्थ ये ही समझ सकते हैं। शब्द-बोझ का आदर्शिकरण भी नहीं हो पाया। किसी कवि में उर्दू की प्रचुरता है तो किसी में गद्य की। बर्द बनता है नये शब्दों को घटाना पड़ता है, तो बर्द नये शब्द स्वयं गड़ने का है। अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर निश्चित रूप से कवि गये हैं। यही कारण है कि बौगर्षी शताब्दी की रचनाओं में किसी एक भाषा की अनुसरण नहीं पाया जाता। दोनों में व्यतिरिक्त और घनेरगता का प्रसंग जितना वर्तमान समय में हुआ है इतना पढ़ने वाली नहीं हुआ था। मानना पड़ता है कि दोनों और शब्द-बोझ में बचपन और प्रभाव की घोर प्रति ध्यान है, भाषा की शुद्धता पर नहीं। गिद्यारामदास की

मैथिलीकरण गुप्त की भाषा में क्षुब्धता है। बालकृष्ण वर्मा 'नवीन' की संली ब्रीह है और अनेक स्थानों पर भाव स्पष्ट नहीं है। गया प्रगाढ़ सुवन और गोपाल-नरण गिह व्यावहारिक उर्दू शब्दों और मुहावरों का प्रयोग अधिक करते हैं। रामचरित उपाध्याय को गच्छाट शब्दों का मोह है। अनूप वर्मा की भाषा माहि-मिरा सड़ी चोरी है। इत्यादि, इत्यादि।

एक बात शक्य है—वर्तमान कवियों की भाषा में प्रगाढ़ शब्द और प्रभाव विद्यते कवियों से बहुत प्रबल है। भाव और भाषा का सामञ्जस्य उत्तम रीति में होता है।

छंदों के प्रयोग में भी विविधता और विभिन्नता देखने में आ रही है। भार-तेन्दु-मुग के कवियों में परंपरागत छंदों का ही व्यवहार किया है। वहीं गेला, छन्द, पवित्रा पादि प्रयुक्त होने हैं। हाँ, दोहा और चौगाई का ज्ञान प्रगट होता गया है। भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने ताबरी और खजली का समावेश भी इस समय किया। उर्दू के छंद कई कविताओं में गमाये गये। र्धाधर पाठक ने नये छंदों का निर्माण भी किया। बीसवीं शताब्दी में छंदों का कुत्तव में निर्मा प्रचार का प्रतिबन्धन रहा। राय देवीप्रसाद और कपोध्यागिह उपाध्याय ने संस्कृत वृत्तों का प्रयोग किया है, गयाप्रसाद सुवन, गियारामनरण और मैथिलीनरण गुप्त उर्दू और हिन्दी के छंदों का व्यवहार करते हैं। अनूप वर्मा रामचरित उपाध्याय और गोपालनरणगिह प्रायः हिन्दी के छंदों का ही अनु-गरण करते हैं। अभिनवर छोटे-छोटे छंद देखने में आते हैं। अनेक नये छंदों का निर्माण हुआ है। गीत और लय का विशेष ध्यान रखा जाता है और दूरा की पद्य का आधार मानकर निर्माण हो रहा है। छंदों की अनेकगुणा की वृद्धि के साथ-साथ कवित्व का विकास भी दिनों-दिन हो रहा है—भारतेन्दु-मुग की मीरगता की छोड़ कर हिन्दी-काव्य बना के घादों पर आ रहा है।

वर्तमान समय की एक और विशेषता है अन्वयारो, सिनेपार शब्दावधारो, की उन्नति। उमा और उन्नेषा के द्वारा भाषा का स्पष्टीकरण प्रबल किया जाता है, परन्तु अन्वयारो की भाषा की गवाय के लिए अन्वयार में नहीं लाया जाता।

## धार्मिक काव्य

भारतवर्ष के इतिहास में धार्मिकता का प्राधान्य कलाकृतियों में बना साया है। भारतीय जीवन में धार्मिक प्रवृत्ति युग-युगान्तर में चरनी रही है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण इत्यादि ग्रंथों का ऐतिहासिक, पारम्परिक साहित्यिक और धार्मिक महत्त्व इसी कारण से है। इनसे साधारण घर हम न केवल प्राचीन इतिहास का निर्माण करने में सफल हुए हैं, हम हिन्दू साहित्य में धार्मिकता के विभाग का भी सम्पन्न भनी मानि कर सकते हैं। बौद्ध और जैन मतों की प्रेरणा से गम्भीर वाणी, प्राकृत और अपभ्रंश में बड़ा उच्च साहित्य निगा गया है। धार्मिकता की अनेक लहरों का अनुसरण और निरीक्षण करने वालों के लिए भारतीय साहित्य एक अथाह सागर है। यहाँ अनेक मत-मतान्तर और सम्प्रदाय उठे और अपनी-अपनी छाप साहित्य पर छोड़ने लगे।

भारतीय जीवन में धर्म का स्थान सब से अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। हमारी राजनीति, शिक्षा, संस्कृति और हमारा सामाजिक और नैतिक मापदण्ड सब 'धर्म' से प्रेरित और समर्पित हैं। हमारी परंपरा में धर्म एक मापता है, इसी में मनुष्य के उत्तम गुणों का विकास होता है। और धर्म का मार्ग स्वल्प भक्ति में समाहित हो गया है। भक्ति का अधिकार ही उस का है जो धर्म का पूर्णतया पालन करता हो।

भक्ति के तीन भ्रंग हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपामना। स्तुति में भगवान् के गुणों का ज्ञान आवश्यक है जिस में उनके स्वर्ण्य को समझने में सहायता मिलनी है। प्रार्थना में पाप से मुक्ति और पुण्य की प्राप्ति की चाह रहनी है जिसमें मित्रि अनुकरण कर्म द्वारा होती है। ज्ञान और कर्म से उपामना (अद्धा) की उपलब्धि होती है। ऋग्वेद स्तुति-प्रधान है, इमानीए उसे ज्ञान वाण्ट का वेद कहा जाता है। यजुर्वेद कर्मवाण्ट का वेद है। इस के पहले ही मन्द में गुन कर्म करने का आदेश मिलता है। सामवेद उपामना वाण्ट का वेद है। वेदत्रयों के धागे (ज्ञान, कर्म और उपामना के बाद) अथर्ववेद में ब्रह्म की प्राप्ति सुगम बनाई गयी है। वही भक्ति के इन तीनों भ्रंगों का समन्वय होता है।

भारतीय भक्ति-साधना की अन्य विशेषताएँ हैं—

- (१) प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामञ्जस्य;
- (२) द्वैत में अद्वैत (आत्म-नान्व) का साक्षात्कार,
- (३) साधक की अवस्था के अनुसार साधना की व्यवस्था,
- (४) गुरु की महत्ता;
- (५) आनन्द की मित्रि।

विचारणा, परचासा, उद्बोधन, व्याकुलता, अभिवासा और वित्त भक्ति के गोपान हैं। साधक के लिए आचरण, आत्मगम्य, इन्द्रिय-निग्रह आदि के बड़े नियम विहित हैं।

वैदिक, मन्त्र, पानि, प्राकृत और अथर्वण साहित्य में ७०-७५ प्रतिशत अथ धार्मिक है और उनमें अधिष्ठान का विषय भक्ति अथवा भक्ति का कार्य उपर्युक्त अथ है।

पुराणकाल में भक्ति में निर्गुण और सगुण रूप की उपामना की जो दो धाराएँ प्रवाहित हुई हैं, उनका भक्ति-साहित्य में महत् प्रभाव रहा है। प्राकृत और अथर्वण तब आने-आने वाला धर्म और मन-मनान्तरे का समानेह हुआ है।

अथर्वण के उग रूप में जिस में प्राचीन हिन्दी का जन्म हुआ, ब्रह्मपानिओं और नायों का योग-काव्य तथा जैनियों का धार्मिक साहित्य मिलता है। इन्हीं की परम्परा को लेकर तथा वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में प्रेरणा पाकर हिन्दी में निर्गुणिया गानों की 'बानी', प्रेममार्गी मुक्तियों के आनन्दानों, रामकथा का वैष्णव भक्तिमार्ग के अनुयायियों की कविताओं तथा कृष्णकथा के पदों का प्राकृतिक हुआ। रामभक्ति और कृष्णभक्ति सम्बन्धी काव्य के ऐतिहासिक और साहित्यिक होने में दो विधियों की भी मदद गयी। कई ऐतिहासिक कारण हैं जो इन



साहित्य विशेष रूप से मुसलमानों के प्रभाव की प्रतिबिम्बिता है। किमी ने तो कबीर-दास आदि की वाणियों को 'मुसलमानी हथकण्डे' भी बताया है। परन्तु हमने प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि निर्गुणप्रतापवन्तों सत्ता के विचार, धर्म और उनकी विषय वस्तुसौली, भाषा सभी पुराने कवियों की देन है। इस पर मुसलमानी धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, यह प्रभाव 'प्रभाव' ही के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये, प्रतिबिम्बिता के रूप में नहीं। सूफी-कवियों का सूफी मत चाहे इस देश में नहीं उठा था, परन्तु सूफी-साहित्य की शैलियों में भावतीयता परम्परागत रीति ही लक्षित होती है। अथर्वश-साहित्य की मुख्य विचार-धाराओं और शैलियों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

सम्बन्ध ६६० में सरहपोद ने अपनी कृति में अन्तस्माधना पर जोर दिया है और पंडितों को घटबारा है। गोरगनाथ ने वेद-शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ कहा है, और तीर्थाटन आदि को निष्फल कहा है। नाथ-साहित्य अथर्वश में जाति-पाति का खंडन किया गया है। बख्शानियों और शैलियों योगियों में मद्गुरु का माहात्म्य माना गया है। सिद्धों और योगियों ने लोक-भाषा में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया है। दूसरी कृतियों में जगह-जगह रहस्यभाषा का प्रयोग हुआ है। इनकी बानी झटपटी और नीरस है। गोरगनाथ ने हिन्दू-मुसलमानों के द्वेषभाव को दूर करने का एक सामान्य मार्ग बूढ़ने की आवश्यकता अनुभव की थी। पहले प्रकरण में सिद्ध साहित्य की विविधताओं पर प्रकाश डाला गया है।

गन्त-साहित्य की विशेषताएँ बिलगुन यही हैं। इनके अतिरिक्त योग की अनेक बातों का प्रतिपादन निर्गुण-शास्त्र में हुआ है। कबीर की निर्गुण-शास्त्र शास्त्र में योग का ही परिवर्तित रूप है जो सूफी और वैष्णव सत्तों में प्रभावित है। गन्त-कवि भी योगियों की तरह शास्त्रज्ञ न थे, साधक थे। कबीर ने योग-मार्ग का समर्पण किया है और पृथ्वीनाथ आदि बाद के योगियों ने कबीर के उपदेशों पर चलने का आदेश दिया है।

बख्शानियों की योग-ज्ञान भाषनाओं में शिवों का योगियों के लिए आकर्षण ऐसा ही महत्त्व रक्ता है जैसा कृष्ण की ओर योगियों का आकर्षण। धर्म के नाम पर दुश्चारा और घटतीना का बख्शानियों में ऐसे ही विराग हुआ जैसे बाद में कृष्ण-कवियों में। गोरगनाथ ने इन दुश्चारा के विरुद्ध जो आवाज उठाई थी, उसी वृत्त भक्त-कवियों की रचनाओं में बनी गयी। योगियों की विचार-परम्परा के अनुसार भक्तों ने रत्नों की शोभा का साधन माना है, सिद्ध

का उत्साह नही। स्त्री के विषय में निन्दित्वक वचन जो भक्तों की वाणियों में मिलते हैं वे योगियों में ही मिले गये हैं।

जैन साहित्य की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—आत्मज्ञानो द्वांग धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार और दूसरे में ने दोहा और चौगई का विशेष उपयोग। यही सीधी सूक्तियों ने अपनाई। दोहा और चौगई अवधी साहित्य के पहले छंद बन गये।

मुसलमानों ने भागवत में अपनी मता की स्थापना कर सी और राजपूत आदमी बूढ़ के कारण क्षमपन्न रहे। मुसलमान आत्मक अपनी विनाशकारी नीति का अनुसरण करने हुए हिन्दू-मंडितों, हिन्दूजर्म और हिन्दू-मनाज धार्मिकता की को नष्ट करने लगे। स्त्री पुरुष, बालबुद्ध, देवालय-मुसलमान, गृहस्थ और भिक्षु की गथा के लिए दुःख में डूबे, पर अपने कारणों ने उन्हें पराजित होना पड़ा। मुसलमानों आत्मन स्थापित हो जाने पर भी हिन्दुओं पर बिदे गये अन्धकारों की सीमा नहीं थी। उन दंग का ज़मीन जीवन निर्वासन और निर्वासन की एक भारी गाय है। हिन्दू जाति में से जीवन शक्ति के सब मन्त्र मिट गये। निर्वासन की सीमा पर पहुँच कर वे पढ़ने को परमात्मा की ओर मुँह और कपटों में जान पाने की आशा करने रहे पर जब स्थिति में सुधार होने न देना तो परमात्मा की भी उम्मीद करने लगे। नास्तिकता बढने लगी। कबीर ने लोगों को भक्ति की ओर प्रवृत्त किया। भक्ति की आशा का धार्मिक गन्तव्य मनुष्यवाद में ही निभा, परन्तु कबीर ने तुलसी और मूर की मनुष्य भक्ति के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

हिन्दू-भक्ति की ओर समाज की गथा का भार उन्हें ही बँदे, उर्दू-पदों, वेदांग वधों और पुस्तकों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया जाने लगा। अब तब धार्मिक साहित्य सम्पूर्ण में ही था और आत्म-वर्धन पर ही ध्यान था, आत्मज्ञान लोगों में धार्मिक ज्ञान का अन्तर्भाव था। उपर मुसलमानों में भी आत्म-आत्मिक को महत्व दिया जाता था। उर्दू-धार्मिक विचार बढ गया था। गन्तव्य मनुष्य के तर्क को दम ममन को स्थिति अस्मत्त्व को। सभी एक ईश्वर के पुत्र हैं, फिर फिर दूसरे के दास क्यों? एक और शक्तियों में दम प्रसार के अन्त उठ रहे थे, दूसरी ओर बहुदल उन दुःखी थे। वे उस व्यापक प्रेम द्वारा जो पश्य प्रेम का मार्ग है समाज विभेदों को मिटाना चाहते थे। यही प्रेम धर्म बन कर मनुष्य भक्ति के रूप में परिणत हो गया। प्रेम के लिए आधार की ओर आसन्न-बना था वह अन्तर्भाव अन्तों ने पूरी कर दी।

हिन्दुओं पर हिन्दुओं के अन्तर्भाव की बन न थे। वे अन्तर्भाव ने समाज में वैयक्त और श्रुति का विचार किया। मुसलमानों के अन्तर्भाव में श्रुति की अन्तरी

स्थिति की दयनीयता गटकने लगी। इस्लाम में सब बराबर है, किन्तु हिन्दू धर्म में विभेद क्यों ? धूर्त हजारों लाखों की संख्या में इस्लाम की गोद में जाने लगे। एक घोर पददलित जातियों को उवाग्ने की और उन्हें समाज में समान स्थान दिलाने की चिन्ता होने लगी, तो दूसरी घोर इन जातियों ने भेद-भाव के विरुद्ध आन्दोलन उठाया। बहुत से भक्त और समाज-सुधारक इन्हीं जातियों में से पड़े हुए।

राजनैतिक स्थिति के कारण और मुसलमानों के धार्मिक विरोध से, उत्तर भारत में मूर्तिपूजा और पौराणिक विचारों का प्रचार सम्भव नहीं था। इसी लिए भक्ति-काल के आरम्भ में उत्तरी भारत में निर्गुणमार्गी सम्प्रदायों का उत्थान हुआ। बखीर, नानक, दादू, आदि सनों के प्रति मुसलमानों की भी श्रद्धा थी। सूफो मन्त तो थे ही मुसलमान प्रचारक। उनका ढंग ऐसा था कि उनके प्रति हिन्दुओं की गहरी श्रद्धा थी।

रागुणमार्गी सम्प्रदायों को दक्षिण में पनपने का अधिक अवसर मिला, क्योंकि दक्षिण राजनैतिक उत्पत्तों और सामाजिक प्रतिश्रियाओं से बचा था। दक्षिण में भागवत (पाचराज अथवा मातवत) धर्म गया तो उत्तर से ही, मेदिनि आल-वार सन्तों ने वैष्णव धर्म का दक्षिण में बहुत प्रचार किया। बाल राजाओं ने इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। नाथमुनि, और उनके पीछे यामुनाचार्य वैष्णव मत के प्रकाण्ड पण्डित और प्रचारक थे। इन दोनों ने विशिष्टाद्वैत की स्थापना की जिसे यामुनाचार्य के गिष्प रामानुज ने दृढ़ किया। उन्होने शंकर के कथ्य-मूल्ये अद्वैतवाद की जगह प्रेममूलक गरस भक्ति का प्रचार किया। बड़े-बड़े प्रति-वादिओं की शास्त्रार्थ से परास्त किया, बीगियों मन्दिर बनवाये और दीध्र ही उनका गिदालन जनता में प्रचलित हो गये। निम्बार्क, आनन्दनीय, मुकुन्दराज, मध्वाचार्य आदि ने दक्षिण में वैष्णव धर्म को पुष्ट किया। समय पाकर, मुसलमान शासकों में थोड़ी उदात्ता भा जाने पर, उत्तर भारत में भी वैष्णव भक्ति का प्रवाह हुआ। राघवानन्द, रामानन्द तथा वल्लभाचार्य के प्रयत्न से वैष्णव धर्म गारे भारत में लोकप्रिय हुआ। वास्तव में ये लोग भी दक्षिणालय थे जिन का जीवन धर्मप्रचाराय उत्तर भारत में बीता।

धार्मिक साहित्य का प्रधान विषय है ईश्वर। वह निर्गुण भी है और रागुण भी। दोगे विचार-भेद में हिन्दी साहित्य में दो धाराएँ चली। निर्गुण उपासना ने वेदान्त के ज्ञानवाद को और योगियों तथा नाथपंथी साधकों के निर्गुण वाक्य-विषय कथा को केन्द्र बनाया और रागुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को। एक ने अनुनय का गहरा निया और दूसरी ने साधन का। गाँवार या निरावार दोनों गड्डियों में दृष्ट देव बही है यद्यपि उनके नाम और

एक मिश्र-मिश्र प्रकार में समझे गये हैं। कबीर ने राम नाम की उपासना पर जोर दिया है जो तुलसी ने दामोदरि राम की। मूर के दृष्ट देव से राम-राम, मन्दान के गोपाल-कृष्ण। भीरा 'गिरधर-नागर' का जगता रत्न मानती थी, मूरदान के 'कान्दू' उनके मन्त्र से और तुलसी के राम उनमें से ही स्वामी थे। और भी कई भक्त कवि हुए जिन्होंने अपने दृष्ट को किसी अन्य देवी देवता के रूप में अपनी धृष्टार्थन प्रतिष्ठा की है, पर साहित्य के विचार में उनका ऐसा महत्त्व नहीं है कि उनकी धन्य गाथा मानी जाय।

निर्गुणवाद की ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखाओं में तथा मन्त्रवाद का राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति शाखाओं में उपासनाद्वय विभिन्न रूप हुए भी इनमें समानता पाई जाती है। एक और मतों में निर्गुणवाद के साथ साथ मन्त्रवाद भी गया है। दूसरी ओर तुलसी और कृष्ण एक कृष्ण कवियों ने निर्गुणवाद का निरूपण भी किया है। मीरा ने अपने विरह-विदग्ध उदात्त म ही दम-नम्र उग परम तत्व का निर्देश किया है जो मगुण में निर्गुण की धार धारणा का प्रेरित करता है। यदि कबीर और जायसी ने श्रद्धावाद है तो मूर और मीरा में भी अपनी-अपनी श्रद्धावाद है। कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम पुरुष के प्रति प्रवृत्ति का प्रेम समझा जाता है। अथवा जो कहें कि गोपियों हमारी नैतिक दुर्द्विती है जो धर्मोत्तर के दर्शन गोपक कृष्ण में करना चाहती है। शरीर द्वारा जिन प्रकार बेचना का अनुभव होता है, उन्ही प्रकार मगुण द्वारा ही गोपिया निगम शब्द का प्राप्त होता चाहती है। निर्गुणिया मतों और सूक्तियों ने धर्मार्थक श्रद्धावाद व प्रतिपादन दिया और मगुणमतावलम्बी भक्तों ने पार्थिव श्रद्धावाद का। इनका विप्लव विवरण आगे चलकर दिया जायगा।

दृष्टदेव का गुण-ज्ञान करने के प्रतिष्ठित इन कवियों ने धार्मार्थिक धन-भूति के साथ उपासकों अर्थात् गुरु, भक्ति, मापुणरति इत्यादि, और सामान्य धर्म—धामा, देवा, भक्ति, विद्या, शीव आदि की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है।

गीत रूप में रामायण के प्रश्नों की भी कई एक कवियों ने उठाया है। धर्म-धन धर्म की रक्षा, दुष्टाशुन की समझा तथा परदे की प्रथा, जाति-वर्ण, रीति-रिवाज इत्यादि धर्म के बातों का उन्नेय इनकी रचनाओं में मिलता है। मतों ने विमोचन का धर्म ध्यान दिया, और न केवल जिनके भी में वे बालाशम्बर को हटाने की चेष्टा की। अस्तु समझना की रीतियों का भी महत्त्व दिया।

यही ज्ञान निर्देश कर देना आवश्यक है कि निर्गुणिया कवियों का मन्त्र ज्ञानोद्घाटन के साथ-साथ सामाजिक सुधार तथा सामान्य धर्म का प्रचार भी था। इसी कारण से उनमें कवित्व की गरमता दर्शित नहीं की। दूसरी ओर

मनुष्योपासक कवियों में भावोद्भावना के कारण कवित्व की स्पष्टता है। मनुष्योपासना भावप्रधान है और कला के रूप रस के अधिक निकट है। हृदय के भावों की सुन्दर और स्पष्ट अभिव्यक्ति के अतिरिक्त मनुष्योपासक कवियों ने प्रकृति का वर्णन भी मार्मिक और स्वाभाविक रीति में किया है। इन्हीं कारणों से प्रेममार्गी काव्य में ज्ञानमार्गी काव्य से कुछ अधिक कवित्व है और मनुष्योपासक कवियों की रचनाओं में काव्य और कला सब से अधिक है।

धार्मिक कवियों का ध्येय था अपने भावों को व्यक्त कर देना। वे अपने विचार जन-भाषाएँ तक पहुँचा देना चाहते थे—उन्हीं के लिए वे लिखते थे।

जन-भाषाएँ की प्रचलित भाषा को अपनाते उनके लिए स्वाभाविक और अनिवार्य था। बचीर ने पश्चिमी भाग्य की धोत-धान की भाषा को माध्यम बनाया था। प्रेम-मार्गियों ने पूरबी भारत की अवधी को। रामकाव्य के लिए श्रीराम की ज्ञानभूमि की अवधी भाषा उपयुक्त समझी गई तो कृष्ण-काव्य के लिए उनकी नीलाभूमि ब्रज की भाषा ली गई। इस प्रकार भक्त-कवियों ने विषय के अनुसार सभी प्रचलित शैलियों का उपयोग किया। अगले पृष्ठों में धार्मिकता की विभिन्न धाराओं का विस्तृत विवरण दिया जायगा जिसमें उनकी अनन्य-अलस शैलियों का टीका-टीक परिचय मिल सके।

### सन्त काव्य

सन्त-परम्परा का आरम्भ पब होता है, यह कहना बहुत बठिन है। गिद्धों और नाथों की परम्परा के विभाग के रूप में भी इसे ग्रहण किया जाता है। हिन्दी में इस का आरम्भ जयदेव से माना जा सकता है। जयदेव (दो पद), मधना (एक पद), बेरों (तीन पद), त्रिनाचन (४ पद), नामदेव (६० से अधिक पद), रामानन्द (एक पद), मेना (एक पद), बचीर (संग्रह २२५ पद और ३५० गीतियाँ), पीताम्बी (एक पद), रैदास (४० पद), धन्ना (८ पद) की रचनाएँ मिकों के 'सादि ग्रन्थ' में मगूहीन हैं। इनके अनिश्चित बचीर माह्य की श्रुतियों के अनेक सप्रत हैं जिनमें बीरन, आनन्द गणमागर, मुगनिधान, दय्याकनी दय्यादि उल्लेखनीय हैं। 'पीताम्बी की बानी' मगूहीन तो है, पर अभी प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। रैदास जी के भी पदतरंग पद इधर-उधर बिगड़े मिल जाते हैं। गुरु नानक से पहले के उपर्युक्त सन्त सन्त-काव्य के प्रथम उत्थान के बहि हैं। इनके बादवर्तमान में कोई विशेष व्यवस्था दिखाई नहीं देती। उनमें किसी निश्चित सिद्धान्त का पालन नहीं है, किसी मत की स्थापना की प्रवृत्ति नहीं है। इन में कहीं-कहीं मनुष्योपासना का मोड़ भी मिल सकता है। बौद्ध और नाथ सम्प्रदायों की गाथनामों का प्रभाव भी

स्पष्ट है। स० १५५० तक समाप्त होने वाले इस काल के अन्त में हमें रामानन्द बखीर और रैदास में अपने मन के प्रचार की अभिनाया प्रतीत होने लगती है। प्रायः सन्त छनहोन निरुद्ध और उल्लासपूर्ण हैं। कुछ इतिहासकारों ने बखीर को गंगमन का प्रबलतम माना है। उन्होंने ही वेदान्त, महजयान, बखयान, शैवमन, नैत्रमन, हृदयोन आदि अनेक उपकरणों के सम्मिश्रण में नया नामदेव की परम्परा और अपने गुरु रामानन्द के अद्वैतवाद में निर्गुणधारा का उद्घाटन किया। बखीर और रैदास दो ही ऐसे कवि हैं जिनकी कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि में उच्च शक्ति की मानी जा सकती हैं। भाषा मध की अष्टपट्टी और सम्मिश्रित है। उनकी वाकियों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

गुरुमानस में संन्यास का दूसरा उद्घाटन धारंभ होता है और २५० वर्ष तक यह पाग बड़ी प्रत्यक्ष गति में बहती रही है। इस युग के कवियों की वाणी अधिक प्रामाणिक, विचारधारा अधिक स्पष्ट, मनमग्न की भावना अधिक तीव्र और भाषा अधिक प्रान्तीय होती गई है। इस युग के उत्तरार्ध में पद्यों का संगठन रटुंगा के साथ होने लगा। सब ने अपनी-अपनी नियमावली बनाई, पूजन-पाठन के नियम निश्चित किये और निष्क-परम्परा की स्थापना की। सब ने बाहरी मनो के साथ सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की ताकि अपने-अपने सम्प्रदाय को अधिक व्याप्त और उदार मिट्टि दिया जा सके। इस युग की सक्रियता का एक परिणाम यह हुआ कि साहित्य की बहुत बृद्धि हुई। साहित्यिकता की दृष्टि में भी इस युग का काव्य महत्त्वपूर्ण है। धनत्रयः अनुभूति की गहराई कम हो गई। बादान्तर में इस साम्प्रदायिकता का दुष्परिणाम भी निश्चय, मनमन अपने पूर्व रूप में पिनपित हो गया और प्रमत्तः वैष्णव धर्म के प्राबल्य के मानने अपने प्रभाव को चारम नहीं ग्य गया। इस युग की प्रतिनिधि रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

मानस—जुगुनी, पट्टी, धारनी, दक्षिणी सोहार, विद्वन् मंडली, आदि।

धर्मशाला—गुटकर पद।

गुरु धर्मशाला—आदि पद्य में गुरुहोत्र 'धर्मश' आदि रचनाएँ।

मिमांसी—गुरुपद।

दासदयाल—बाया वेत्ति, दोहरे, भाग्ये धीर पद।

गुरु धर्मशाला—आदि पद्य में गुरुहोत्र मंडली, पद, आदि।

बखाना—१६० पदों और अनेक भागियों का संग्रह—'बखाना जो की बाणी'।

गरीबदास (दासदयाल)—गरीबदास जो की बाणी—भागी, चौबेरे, पद आदि।

हरिदास निरवनी—भी हरि पुरान की बाणी—पद झूलने, कुटुम्बिनी, गतिनी।

मनुष्यदास—बाणी, रत्नगार, जानबोधि।

- रज्जवज्जी—बानी—साखियाँ, पद, सर्वश्रेष्ठ, अरिस्त, छापस, बावनी, आदि ।  
 मुन्दरदान—मुन्दर प्रसावनी । हरिबोल, वितावनी, सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानसमुद्र, मुन्दर-  
 विनाग, अद्भुत उपदेश, इत्यादि ।  
 अक्षर अनन्य—राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग, सिद्धान्तबोध, ब्रह्मज्ञान, आदि ।  
 मारी साहब—रत्नावली, फुटकर पद ।  
 धरनीदास—शब्द प्रकाश, प्रेम परमास, रत्नावली, आदि ।  
 गुलाब साहब—बानी, ज्ञान गुण्डि, राम सहस्रनाम ।  
 जगजीवनदास (सत्तनामी)—शब्द सागर ।  
 बीरमान—आदि उपदेश ।  
 दूलनदास—बानी, प्रश्लावली ।  
 गरीबदास—बानी, श्रेष्ठ साहब—मार्गी, पद, रमनी, आदि ।  
 दरिया साहब ( मारवाड वाले )—बानी ।  
 दीप्ता साहब (बिहार वाले)—ज्ञान दीपक, दरिया सागर ।  
 चरणदास—अनेक श्रेष्ठ—ज्ञान स्वरोदय आदि ।  
 गियनारायण—गुरु अग्र्याण, प्रश्लावली ।  
 भीमा साहब—राम बुद्धलिया, रामजहाज, रामराय, आदि ।  
 साहूजी बाई—महज प्रकाश ।  
 दया बाई—दया बोध, विनय मालिका ।  
 रामवरन ( रामस्नेही )—अणभ बानी ।

मनकाव्य का तृतीय उत्थाव पश्चिमी विचारान्तर के प्रभाव का परिणाम है । इन युग के प्रायः सभी गत सुनिश्चित विज्ञान और अनुसर्वा विचारक हैं । उनकी दृष्टि अधिक व्यापक है और कथनशैली में तर्कपूर्णता, चूटीनापन, स्पष्टतादिना आदि गुण हैं । कविता की दृष्टि में गनटू साहब और स्वामी रामनीध की कृतियाँ उल्लेखनीय हैं इनका गद्य भावोन्माद अत्यन्त सुन्दर नहीं है । इन युग की रचनाएँ ये हैं—

- गनटू साहब—बुद्धलिया, रत्न, भूलने, अरिस्त और मार्गिया ।  
 तुलसी साहब—पद रामायण, रत्न सागर, प्रश्लावली ।  
 निरुपमा (स्वामी जी महाशय)—पद मधुर ।  
 गान्धिराम (दूधर महाराज)—प्रेम बानी ।  
 स्वामी रामनीध—मन्त्र आदि ।

निष्कर्षित करने में ये कई श्रेष्ठ के अन्तः-अन्तः मन्त्रदायक शब्द हैं, जैसे बर्बाद पद, नानक पद, दादू पद, माधु मन्त्रदाय, चरणदासी मन्त्र, शरीरदासी पद, सत्तनामी पद, प्राणनामी पद इत्यादि । इन मन्त्र में थोड़ा-थोड़ा अन्तर अन्तर

हैं, परन्तु सामान्यता इतनी अधिक है कि इन्हें एक ही मत की विविध शाखाएँ समझना चाहिए। इन्होंने हिन्दुधर्म और मुसलमानों की निरर्थक रीतियों का विरोध, और राम, कृष्ण, अल्लह आदि की एकरूपता का प्रचार किया। हिन्दू-मुस्लिम गण्य के समय जिन सातिमयी बाणों की आवश्यकता थी मनों ने उगी की अभि-  
 व्यञ्जना की। वे साम्प्रदायिक झगड़ा मिटाना चाहते थे—दोनों उद्देश्य में उन्होंने सब धर्मों की मिलती हुई व्यापारण बातें लेकर तथा उनकी स्पष्ट भिन्नताओं, जैसे मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि की असंगतता एक छोटी दिशा कर तथा रोड़ा निमाड की दूनरी छोड़ दिखाने हुए एक सामान्य भक्ति पद्धति निरानी।

मन-आह्वय में एक ईश्वर की उपासना का प्रतिपादन किया गया है। वह ईश्वर निराकार, अनाम, निरजन, उद्योति-स्वरूप, मुरनिरूप, मत्तुग्य और सर्वव्यापी है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह कैसा अनुभव-गम्य है। मनों की निराकार उपासना में धन्दा और भय नहीं, प्रेम और भक्ति है। भक्ति प्रेम और भक्ति के लिए अपने से भिन्न आराध्य की सेवा, माननी पड़ती है, इसलिए न तो वे भली भाँति निर्गुण का रूप स्थिर कर सके हैं और न मनुष्य की पूरी भक्ति ही। बरौर के परवर्गी मनों में यह सम्पष्टता बढ़ती ही गई है पर उनकी उपा-  
 सनाओं की का कोई गिद्दान नहीं निकलता। वे सभी ब्रह्मवाद छीटने हैं तो सभी अवतारवाद, सभी एकरूपवादी, धर्मनवादी तो सभी-सभी गणुणोपासक बन जाते हैं। सभी भारतीय ब्रह्मवाद की, सभी पैगम्बरी एकरूपवाद की खर्चा करने लगते हैं। हमें तो कई बार सन्देह होने लगता है कि अमरदाम को वैष्णव भवन बहोँ अथवा निर्गुण उपासक, मादव को सूफी बहोँ अथवा ज्ञानमार्गी, और दूनन-  
 दाग और धर्मदाग को भक्त बहोँ अथवा मन। धन्तु, मन-आह्वय में भक्ति का स्वरूप सम्पष्ट और समगल ही रहा है।

मनों ने अपने ईश्वर को उगी नामों से पुकारा है जिन नामों में गणुण-उदा-  
 गर अपने इष्टदेव को पुकारने हैं। राम, गोविन्द और हरि का नाम बार-बार माना है। राम नाम की महिमा के पीछे सब में गाये हैं। बरौर, मानव, मनुष्य, परमदाग, दूननदाग, सबने माना है कि दुन दु गानव धन्दादरन जदम् में स्थायी गुण का कोई माधन है तो वह राम नाम ही है। दादू ने 'निरदन मौर' का उन्नेग बहूँ अधिक किया है। चरनदाग और गहबो ने 'राम नाम' के साथ कृष्ण की उपासना की है और दूनन ने हनुमान का स्मरण भी किया है। सब ने माना है कि नाम ही उस प्रभु ने मिलाया है। उन सब के लिए प्रिय नाम कैसा 'ना' अथवा 'नाम' था है। इन दो की निराकार के सभी-सभी 'मननाम' शब्द प्रयोग करते हैं। उन 'नाम' का महत्व मनों में बताया है और उसके स्मरण का उपदेश भी दिया है। नाम-स्मरण मनों की प्रमूण माधना है। नाम को मयने ने



अन्तर में रस उमड़ता है और प्रिय के दर्शन होते हैं। वह प्रिय हमारे भीतर है—उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं। हमारे भीतर ही मस्जिद और मंदिर है—अन्तर के पट खोलने बिना उम प्रियतम में मिलन नहीं हो सकता।

मनो की 'नाम' साधना भी अपने ढंग की है। इसके लिए न माला की आवश्यकता है न आमन जमाकर जप करने की। जप की विधि तो स्वयं निष्पन्न होती रहती है। इसीलिए हमें 'मंत्रा जाप' कहा गया है। इसकी समाधि भी योगाभ्यासियों की समाधि में भिन्न 'महज समाधि' बताई गई है। 'नामस्मरण' एक योग है, जिसे शब्द भोष कहा गया है। यतः इस प्रसंग में मनो ने योगसाधना की प्रक्रिया का उल्लेख कई स्थलों पर किया है। हमारा पिंड वा शरीर ब्रह्माण्ड है। जो ब्रह्माण्ड में है वही इस घट में है। परमात्मा का यह मंदिर ब्रह्माण्ड की तरह रहस्यमय है। योगियों की भांति अधिवक्तर सत्य मानते हैं कि मानव शरीर की रचना में तीन नादियों—इंद्रा, पिंगला और सुषुम्ना,—तथा मात कमल—मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, प्राणाहन चक्र, विमूढ चक्र, और इन सब के ऊपर एव शीर्ष कमल मह्यार चक्र—प्रधान है। गुदास्थान एव जननेन्द्रिय के बीच मूलाधार या मूल नाम का कमल है जिग के चार दलों में मूल का निवास है। इस के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र या 'स्वाद' छ दलों का कमल है। मणिपूर या नाभिचक्र दस दलों का, हृदयचक्र या प्रावाहन वरह दलों का, वट-चक्र या 'विमूढ' गण्ड दलों का कमल है। दो ओहों के बीच में अज्ञा चक्र है जिसके केवल दो दल हैं। शीर्षकमल या मह्यार मह्यदल कमल है जो मस्तिष्क प्रदेश में अवस्थित है। मह्यार में नित्यपुरुष का वास है। सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार के मध्य में निचले भाग में चल कर मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में ऊपर की ओर जाती है। इंद्रा और पिंगला इन के साथ निरुद्ध हुई है। इंद्रा वा अत बाई नाक तक और पिंगला वा दाहिनी नाक तक है। सुषुम्ना भ्रुकुटी में होकर ब्रह्मरन्ध्र या भवन गुफा तक चली जाती है। चक्र सुषुम्ना नाड़ी के अवस्थान माने जाते हैं। मंत्र में निश्चय चक्र अर्थात् मूलाधार में कुंडलिनी मणिषी की भांति मुक्त रहती है। मायात्र देव कुम्भक प्राणायाम के द्वारा योग-प्रक्रिया आरंभ करना है तो यह कुंडलिनी जागृत होकर सुषुम्ना के सहारे ऊपर की ओर प्रक्रमण होती है और अमृत छंदो चक्र का अंदरी हुई तथा उसमें निहित मक्ति को उद्बुद्ध करती हुई मह्यार ना पट्टुचली है। वहाँ यह ब्रह्मन्त्री 'जिब' के साथ मिल जाती है और इस प्रकार समाधि लग जाती है। यही अनाहत शब्द गुनाई पटना है, यही अमृत रस वा स्वाद भिन्न है। यही 'कुंडलिनी योग' वा पथ है।

मनो ने अष्टादशयोग के सम, निरम, धामन, प्राणायाम, प्रवाहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का उल्लेख तो किया है लेकिन न तो इनका विस्तार में वर्णन

विद्या है और न ही 'महयोग' के लिए हठयोग की क्रियाओं को निराला आवश्यक माना है। अतः प्राणायाम को महायक माधना के रूप में एवं नामस्मरण के प्रारंभ के रूप में स्वीकार किया है।

गंनों की यह योगप्रणाली अधिकांशतः गोरखनाथ सम्प्रदाय में अपनाई गई है।

यह गंनों ने अपने को प्रभु की पवित्रता भारी के रूप में देखा है। महर्षि ने ईश्वर को भी कहा है। 'बबोर ने भी 'हृदि जननी में वात्सल्य भाग' कह कर हृदि को माना बतलाया था। परन्तु प्रायः सबने परमात्मा को 'प्रियतम' और जीव को 'दुःखिन' कहा है। दुःखिन अपने दुःख में मिलने को मदा उन्मुक्त रहती है। पवित्रता का यह बुद्धि यही है। इनो माधना में धारक मन्त्रदान ने कहा है—

अतएव वरं न चाकरो, पंढी वरं न काम ।

दास मल्लिका बहु गये, तयके दाता राम ॥

उनका यह भाव्य नहीं कि हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जायें, पट्टि धर्मधनता और प्रसाद का पोषण करने वाले इसका यही धर्म लेते हैं। वास्तव में मन्त्रा अपने को ईश्वर के प्रति पुनः रूप में समर्पण करने है। ऐसी निर्भङ्गता यह गंनों में पाई जाती है जिसमें 'गर्भमन्त्र पश्चिम' 'सुखाय प्रभु का आश्रय निरा जाता है। महर्षि कहती है कि 'उन स्वामी की गोद में जाकर सब विपत्तियों के गामने जीवन क्या पनाके, हाथ क्यों फैलाऊँ ? पत्नी को छोड़ो मे याचना करने प्राणपति हरि कैसे भवारा कर गये ? सुन्दरदास और चन्द्रदास का यही मन है कि 'मैं देखा छोट के जीये हरि नाम'। जीव के प्रेम में वही धन्यता हानी पात्रिय जो पवित्रता के पवित्र-प्रेम में होती है।

गंनों के इस श्रद्धावाद में अस्मिता और भूरी शक्तियों का सम्मिश्रण हुआ है। इसमें आत्मा परमात्मा में मिलकर एक रूप धारण करती है—दोनों में कोई भिन्ना नहीं रहती। आदर निर्गुणवाद में सम्मता माने के लिए भुंजार का यह पुट दिया गया है। 'शुद्ध' की पड़ी का यह मन्त्र-विषयों ने स्वागत किया है। गंनों ने एक स्वर में गाया है कि जीव का यह वह कल्याण नहीं हो सकता जब तक कि के साथ 'मगई' न हो जाय। परन्तु इस सम्बन्ध में पहले, 'शुद्ध' की पड़ी माने सब, आत्मा की दीर्घकाल तक विरह की उरता में जलता पड़ा है। विरह की यह उरता समझनी है, क्योंकि इसमें 'रिम मिलन की धारा' बहाकर बनी गयी है। मिलन की विरह प्रतीक्षा में विरह की परिणाम गुणवत्ता हो जाती है। 'आर' यह गंनों में धन्य मिलन का उन्माद और धन्य



महर्षी और दया गुरु का गुणानुवाद करने कभी थकती ही नहीं। सब मंत्र-कवि गुरु की वंदना करके अपने विषय का प्रतिपादन करते हैं।

गाथना की राह में माया की प्रबल बाधा रहती है। इसने मंगार की वज्र में कर रखा है—उम्बवा मन्त्रव्य बनन और बामनी ने है। इस जगत् को 'धपना' समझकर हम इसने लिपटे जो हुए हैं, दसी लिए परमात्मा का गाथा-स्वार नहीं होता। जो जगत् की उपासना करे वह भक्त या जानी कैसा ! मंगार के गाथ गंधर्ष में न लग कर मन को मंगार में मोड़ लेना चाहिये। "रहना नहीं देग बिराता है", "मंगार मिथ्या है", "यह जगत् पानी के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर है"। यह हमारा शरीर, जिन का हमें बड़ा अभिमान है, एक कच्चे घटे के समान है, जरा भी टेम लगी और यह गया। मनुष्य का शरीर परम दुर्लभ है, जिसे भी यह मिल गया वह मुक्ति का अधिकारी हो गया। मुक्ति के अधिकारी की नज़र का सामान जमा करने देग मनों को दुःख होता है।

गाथना के पथ में चलते हुए मनों को धपनी बुगद्यों और दुर्चतनाओं का स्मरण हो आता है, परन्तु ये निगम नहीं होते। प्रभु इन धक्कणों और पापों को बित में नहीं माने। वे हमसे धनदेयी-धनगुनी कर के धपनाते हैं—बच्चे से गाथ चूक हो जाय, फिर भी माँ उन्हें बँसे छोड़ेगी।

नाम की गाथना में जाति, धार्मिक, ब्राह्मण, चाइान, पुरण-स्त्री आदि का भेद या प्रतिबन्ध नहीं है। 'हरि को भजे सो हरि का होई।' राम-नाम लेने का सब को समानाधिकार है। मन कवि रूढ़ियों के विरोध में बहुत बड़ गये हैं।

मनकाव्य में प्रवृत्ति-चित्रण का अनाव-ना है। उसमें प्राध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक पक्ष ही प्रगट है। मन की गाथक थे, मन उम्बवा धनमुनी होना स्वाभाविक ही है।

निर्गुणता मनों के सम्बन्ध में इतना बड़ देना आवश्यक है कि इनकी दीरो पार्श्वगत है। बहुत कम जानी है जिन में कुछ मौलिकता है। गाथाग्धन. सब ने बड़ी दली-गिनी दाँते बार-बार दुर्गाई है। और १५वीं, १६वीं शताब्दी के मन-काव्य में कोई विशेषता रह हो नहीं जाती। कुछ एक ने परपरा का दानन हो किया है। बरौर, दादु और मुन्दर मरीने बहुत कम कवि हैं जिनसे मन्दर उच्च गतिव्य के अन्तर्गत आ सकती है !

अधिकतर मन कवि धर्मिष्ठ थे। जो कुछ उन्होंने कहा है अपने अनुभव की प्रेरणा से कहा है। मिथिल समाज में इनका बहुत कम धारण हुआ है। बरौर में तब और बाद-विवाद को बड़ी-बड़ी और कर्कशता होने के कारण इनमें सहृदयता और भाविकता कम ही है। धनबलः धर्मशाय, दादु और नालर में

सरलता और सरसता कबीर ने अधिक है। मुन्दरदास की रचना साहित्यिकता की कमीटी पर पूरी उतरती है। उसमें काल और देश की प्रवृत्तियों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है यद्यपि प्रायः गतों ने समाज की समस्याओं की उपेक्षा की है। मुन्दर मुनिशिक्षन थे—दुर्ग की बानी में व्यर्थ की तुल्यबंदी और ऊँटपटाग की बातें नहीं हैं।

हममें कोई मन्देह नहीं कि ये मत साधक थे, कवि नहीं थे; परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि इनकी कृतियों का हिन्दी-साहित्य में बड़ा महत्त्व है। साहित्य वही है जो मानव-समाज की सर्वकालीन भावनाओं का निरन्तर पोषण करता हुआ समाज के क्लेश, अज्ञान, मधयं, और उद्वेग के विचारों को प्रभावित करके मनुष्य की आत्मा में स्वभाविक दानि, प्रेम, स्फूर्ति और राजनी-शक्ति को उत्पन्न करता रहे। कौन नहीं समझता कि सत-साहित्य सारवत् रूप से एक-रस आज भी यथावत जीवन-गन्देश को सुनाने में समर्थ है। गतों ने मत्तार के दुःख को दूर करने का जो बत लिया उसमें उन्हें आत्म-तृप्ति प्राप्त हुई है और उसमें मत्तार का भी निश्चय ही कल्याण होता रहेगा। उनकी विषय-सम्बन्धिनी गुण्यता मान भी ली जाय तो भी उनकी रचना उपादेयता में खाली नहीं है।

गतों की बाणी में अभिव्यक्ति का सौन्दर्य भले ही न हो, भावना का सौन्दर्य प्रबल है। काव्य का वास्तव रूप भले ही अमुन्दर मान लिया जाय उसके विषय का सौन्दर्य बहुत कुछ है। वास्तविक सौन्दर्य वही है जिसे कवि ने अपने अन्तर्गु में अनुभव किया है। गतों की सौन्दर्यानुभूति मर्यादित है। अतएव जहाँ वे उपदेशक बनने लगते हैं, वहाँ वह गम्भिरता नहीं मिलती जो साधनाप्रधान बाणी में है।

साहित्य का एक और उद्देश्य भी है—सामान्यजन की समझ पैदा करना। दूसरे लोग जहाँ जगन् के साथ उपर-दर का सम्बन्ध रखते हैं, वहाँ ये मर्मी या साधक कवि उनकी अन्तरात्मा में बैठ कर निखरते हैं। मत्तार, ईश्वर, और आत्मा के विषय में जिस सत्यता का अन्वेषण करके इन्होंने हिन्दी-साहित्य द्वारा हमें साक्षात्कार कराया है, वह किसी अन्य साहित्य में प्राप्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि गतों ने उस 'रम्य' का, जो साहित्य की आन्तरिक खेती है, अधिक परिमाण में मत्तार किया है। दश बान में काव्य-कला की कमीटी पर पूरा उतरने वाला कोई भी काव्य गत-साहित्य की समझ में ईर्ष्या नहीं कर सकता।

मन-नाथ में गतों की बाणी का प्राधान्य है। गतों का ध्येय या ईश्वर-भक्ति-प्रचार, और इसके लिए जन-समाज की भाषा ही उपयुक्त थी। भाषा हममें बजनाया और अन्य प्राणीय भाषाओं के मन्द भी यन्त्र-प्रदेशों



के वर्णन में तथा मृष्टि और भाषा के चित्रण में, अथवा 'कामिनो' का वर्णन करने में प्रथम अद्भुत और बीभत्स रस भी पाये जाते हैं। अन्य रसों के उदाहरण भी यत्र-तत्र मिल जायेंगे। नेकिन, मतवाणी में सम्भवतः शान्त रस को छोड़कर किसी रस को पूर्ण निष्पत्ति नहीं हो पाई, क्योंकि मतकाव्य में प्रत्यन्तात्मक रचनाओं का प्रभाव है।

मन-वाक्य की रचना-शैली अनेक प्रकार की है। कबीर जी का एक 'बीजक' ६००-७०० पदों का मसह है और दयावाई और महमोवाई की मारो वाली १०० पदों में ऊपर है। किसी मत कवि के १००० पद हैं तो दूसरे के कलेवर १२०० और किसी के १४०० भी हों गये हैं। कुल मिलाकर मंत-माहित्य का कलेवर बहुत बड़ा है। कई विषयों का यहाँ विस्तार

दिया गया है और मिथानों की व्याख्या में बहुत कुछ बार-बार कह दिया गया है। मंतों के अनुपादियों ने अपने गुणों को ईश्वरीय महत्त्व देने हुए पौराणिक देवताओं के साथ उनकी गोष्ठियाँ वर्णित की हैं। उन गुणों की स्तुतियों में बहुत-सा पद्यीय साहित्य भरा पड़ा है। प्रयोगों की कमी भी मतमाहित्य में नहीं है।

इस में संदेह नहीं कि उत्तरकालीन मंतों (प्राणनाथ, धरणीदाम आदि) ने दूसरों के अनुकरण में कथाओं, मगनवियों और चरितों की शैली को अपनाया, परन्तु मंतों की प्राचीन रचनाएँ प्रायः भुक्तक हैं। कविरव की दृष्टि ने सब से सुन्दर कृतियाँ वे पद, 'सबद' या भजन हैं जिन में स्वानुभूति की गहराई है। ये पद गेय हैं और राग-रागिनियों के मंदर्भ में लिखे गये हैं। 'सावित्री' दोहा छंद में है और इन में नित्य प्रति के प्रश्नों को मुलझाने का प्रयत्न किया गया है। किन्हीं-किन्हीं परवर्ती मंतों ने अपने गानियों को विषयवार भगों में विभाजित किया है, जैसे 'गुरुदेव की भग', 'गुमिरण की भग', 'विरह की भग', इत्यादि। दादूदास की गानियों की रज्जब ने ३७ भगों में विभाजित किया। दोहा-चौता-ट्रयो का एक-गाथ प्रयोग कबीर की रमैनी और प्रथ बावनी में, नाना और अन्य गिर गुरुओं की वाली में और परवर्ती मंतों की वर्णनात्मक रचनाओं में हुआ है। नागरी के बावन भयारों की प्रथम धारंभ में रस कर पद्य-रचना हुई है—बनौरी की प्रथ बावनी, और प्रथगवती, कबीर पथी 'ज्ञान चौबीसा', गुरु ग्रन्थ में बावन प्रकरी, धरणीदाम का 'बजरहा' इसके उदाहरण हैं। फारसों की वर्णमात्रा का व्यवहार भी हुआ है। निषिधों, बारो और बागह मागों को लेकर भी रचनाएँ की गई हैं। आदिप्रथ में इन मंत के उदाहरण मिलते हैं। इस के प्रतिरिक्त रज्जब, महमोवाई और हस्तिदाम ने निषिधों द्वारा और मुंदरदाम, सुलान गार्हव, भीमा—प्रथ, परदु माह ने बागह मागों द्वारा मुंदर अभिव्यक्तियाँ प्रस्तुत की हैं।

मंतों की मात्राविकृतियों में 'गोष्ठियाँ' भी प्राप्त होनी हैं जो प्रश्नोत्तरों

के रूप में है। ऐसी गोष्ठियों की परम्परा कम-से-कम नामराशियों के समय से चली आती है। बबौर, नानक, दरिया माहब बिहारी और तुलसी माहब से सम्बंधित 'गोष्ठियाँ' महत्वपूर्ण हैं। मन तुलसी माह ने गोष्ठी की जगह 'मवाद' शब्द का प्रयोग किया है।

गंतकाव्य की एक और विशेषता उसकी उलट-धामियों में पाई जाती है। उनटवातियों के शब्दों में स्वभाव-विप्लव एवं प्राकृतिक नियमों के विप्लव घटने वाली क्लृप्तवाचिता का उत्पन्न रहना है। कुछ ममीशकों ने इन्हें 'अधम काव्य' कहा है। लेकिन, शब्दों के गूढ़ अर्थ को समझने वाले उनका ध्यान उठाने हैं। सतों के रहस्यवाद का ये विशिष्ट ध्य है। इनका सम्बन्ध सतों की गापना और अनुभूति की अभिव्यक्ति से है। प्रायः विषयों के शीर्षक साधुनिक सम्पादकों ने दिये हैं, परन्तु प्राचीन सात्करणों में विषयों के नाम, शब्दांशों के शीर्षक आदि नहीं मिलते। दोहा, कुण्डली, और कुछ एक और छन्दों को छोड़ अधिकांश शब्दों और पदों का आकार भी निश्चित नहीं है। विषयों का क्रम भी निश्चित नहीं जान पड़ता। प्रायः गुरु-बंदना आरम्भ में आती है, परन्तु अनेक वाणिज्यों में पहले ईश-विनय की गई है। गुरु-भक्ति के पद वाणी के बीच में, अन्त में और अन्य विषयों के साथ भी रसे गये हैं। एक पद ईश्वर पर है, दूसरा जातपात पर, तीसरा गुरु पर, चौथा फिर ईश-विनय पर, पाँचवाँ तीर्थों पर, छठा फिर गुरु-महिमा पर इत्यादि। मन की सहर ज़िपर चल पड़ी, चल पड़ी। जो विषय जब और जहाँ सामने आ गया उसी पर कुछ कह दिया। कहीं कहीं एक ही विषय की उल्लियाँ में परस्पर-विरोध भी आ गया है। पुनरुक्तियाँ तो संकटों ही मिलती हैं। 'सन्तों की कुछ वाणिज्यों' नीचे उद्घुन की जाती है—

( १ )

आनीने कुंभ भरईसे ऊरक, ठाकुर कउ इतनाम करउ ।  
बडिआनीत सब भीजन महि होतें, बीडनु भंता बड करउ ॥१॥  
बत जाउ तत बीडनु भंता । महा धनंद करे सारकेता ॥२॥  
आनीने कुंभ परोईसे माता, ठाकुरकी हउ पुन करउ ।  
रहिने बासु गई है मवरह, बीडनु भंता बड करउ ॥३॥  
आनीने इपु रोपाईसे चोर, ठाकुर कउ नंदे करउ ।  
रहिने इपु बिटारिउ बापरे, बीडनु भंता बड करउ ॥४॥  
ईने बीडनु ऊभे बीडनु, बीडनु बिन संगार नही ।  
बान धनंतरि नाया प्रणबे, पूरि रहिउ नूं सरब नही ॥५॥

(नामदेव)  
अन नामदेव, जिन्हें बबीर रूप धारण भक्त के रूप में मानते थे, उद्घुन और



निर्गुण दोनों उपागनाओं के मानने वाले जान पड़ते हैं। उनकी कथनशैली में ध्वनहीनता, निर्भीकता और एकनिष्ठा आदि गुण व्याप्त हैं।

( २ )

धिरह जलाई में जलों, जलती जलहरि जाऊँ ।  
मो देखा जल हरि जलें, संतो कहा बुझाऊँ ॥  
हिरदा भीतरि दौ बलें, धुवां न परगट होइ ।  
जाके लागी सो सलें, के जिहि लाई सोइ ॥  
कबीर सोय समुंद की, रटें पियाम पियाम ।  
समुंदहि तिणका बरि गिनैं, स्वाति बूंद की प्राप्त ॥ (कबीर)

( ३ )

संतो साहज ममाधि भसी हूँ ।  
जब से क्या भयो सतगुरु की, सुरति न घनत चली हूँ ॥  
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा ।  
पर बन एंड राम सेलीं, भाव मिटायौं दूजा ॥  
शब्द निरंतर मनुवा राचा, मलिन वासना रयागी ।  
जागत सोयत ऊडत बैठत, ऐसी तारी लागी ॥  
घोत न मूँदूँ, कान न हँवूँ, काया-कष्ट न पाहूँ ।  
उघरे नैनन साहेब देखूँ, सुन्दर बदन निहाहूँ ॥  
बहहि कबीर यह उन्मनि रहनी, सो परगट बहि गाई ।  
हुल-सुल के बह परे परमपद, सो पद है सुखदाई ॥ (कबीर)

कबीर की रचनाओं में काव्यकला का प्रदर्शन नहीं है। उनके बहुत से पद मनोरम और सुन्दर भी बन पड़े हैं। कबीर का जो उच्च स्थान हिन्दी साहित्य में है वह इन्हीं शब्द, चुटीले और गरम पदों के कारण है। ऐसे पद आचार, नीति और सामाज सम्बन्धी हैं। माया, ईश्वर और भ्रान्त आदि विषयों की चर्चा बोधगम्य नहीं है। कबीर साहब वस्तुतः सत्य के पुजारी थे। इस सत्य के कथन में निर्भीक और निरिन्द थे। उनकी साधना स्वानुमति और मद्दिचार से संशय रहती है।

( ४ )

मायो भरम बंसेहु न बिताइ, ताते दैत दरसो भाई ॥ टेक ॥  
बनक बुझत सुन पट जुदा, रजु भुषंम भ्रम जेता ।  
जम तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों, बह्य जीव इति तैता ॥ १ ॥  
बिमत एक रम उपरें न बिनसै, उदय घस्त बोट नाही ।  
बिगता बिगन घटे नहि बयटू, बसत बसे सब माहीं ॥ २ ॥

निस्वत निराकार ध्वज धनुषम, निरभय गति गोविंदा ।

अगम अगोचर अच्युत अतरक, निरगुन अंत अनंदा ॥३॥

(रंदात)

रंदात की रचनाओं से उनका दैर्घ्य, गहरा भगवत्प्रेम, हृदयग्राही ध्यात्मनिवेदन और दृढ़ विन्यास प्रगट होता है । उनकी कविता में भक्ति भी है, ध्यान भी और कला भी ।

( ५ )

मया बीषाणा साहू का नानक बौराना ।

हुँ हृदि बिनु अवर न जाना ॥रहाव॥

तब बीषाणा जाणिये जो भय बीषाणा होइ ।

एकी साधिव बाहरी बुजा अवर न जान कोइ ॥

तब बीषाणा जाणिये जो साहिव अरि पिणार ।

मंदा आर्य आपसी और भला संतार ॥

(नानक)

इनकी कविता की विशेषता है इनकी सरमना, स्वाभाविकता, मयीतान्मयता और सहज सुन्दरता । इन्होंने नाम-मायना पर विशेष बल दिया है । इनकी कवय-शैली में भावनामयी के साथ-साथ मस्ती की झलक भी मिलती है ।

( ६ )

नाथ सपीड़ा सीजिये, प्रेम भगति नन साइ ।

बाहू सुमिरन प्रीति सौ, हेत सहित स्यो साइ ॥

नाथ लिप्यतब जाणिये, जो तन मन रहै समाइ ।

आदि अंत मय एक रस, बबहुँ मूर्ति न जाइ ॥

नाथ न आवै तब बुली, आवै सुख संतोष ।

बाहु सोवर राम का, बुजा हरण न सोक ॥

(बादुरपाल)

बाहु नम्र, दयाशील, और दयालु सब धी धे ही, वे प्रेमोन्मत्त कवि भी थे । इनकी रचना में कबीर की श्री दुःखनाश धरवा रहस्यगुणता नहीं है । वह धीर और यत्नकार भी नहीं हैं, पर मायुषे कबीर से अत्यधिक अधिक हैं ।

( ७ )

माई मेरो प्रीतम राम बनावतु रो माई ।

हउ हरि बिनु प्रिय पतु रहि न सकई, जेने बरहम बेनि तिराई ॥

हमरा मनु बैराग बिरहनु भाइ, हरि बरसन भीष के माई ।

जेते धनि कमना बिनु रहि न सकै, तेते मोहि हरि बिनु रहन न जाई ॥

राख सरणि जगदीसुर पिछारे, मोहि सरया पूरि हरि मुसाई ।  
जन मानक के मनु धनैदु होत है, हरि बरसनु निमल दिलाई ॥  
(गुद रामदास)

इनके सभी पद छोटे-छोटे और भावपूर्ण हैं। परमात्मा के प्रति पूर्ण अनुभूति और साधना इनकी अभिव्यक्ति के विशेष गुण हैं। इनकी वर्णन-शैली से जान पड़ता है कि इन्हें काव्य-रचना पर अष्टा अधिकार प्राप्त था।

( ८ )

तन किछु घर महि बाहरि नाही । बाहरि जौलें सो मरमि मुसाही ।  
गुर परसादी जिनो अंतरि पाइया, सो अंतरि बाहरि सुहेता जोउ ॥१॥  
सिमि सिमि अंचित धारा । मनु धीवें सुनि सबहु बोधारा ।  
अनद बिनोद करे दिन राती । सदा सदा हरिकेला जोउ ॥२॥  
अनम अनम का बिछुड़िआ मिलिआ, साथ क्रियाते सुला हरिआ ।  
सुमति पाए नाम धियाए, गुरुमुखि होए मेला जोउ ॥३॥  
अस तरंग जिउ जलहि समाइआ । तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ ।  
कहु मानक अम बटे किवाड़ा, बहुहि न होइअ जजला जोउ ॥४॥  
(अर्जुनदेव)

गुद अर्जुन बड़े योग्य विचारक और तपस्वी सन्त थे। सत्यनिष्ठा, विश्वप्रेम, योग गरलना उनकी कविता के विशेष गुण हैं।

( ९ )

अवधू आसण बैसन झूठा, जस लग मन बिसराम न पावै ।  
पल तजि करि न पूठा ॥टेक॥  
ज्ञान गुका जायें नहि जोगी, अगम अरब कहा बूझै ।  
पौष अगनि में पडि पडि दासै, वा सोतल डोर म झुसै ॥  
बिबिध बिकार बालि अरि ईषण, धूई ध्यान न धारै ।  
कहा अगनि आकाम न अंजै, ती पारा बपुं मारै ॥  
निगम अगम तही सागं आसन, गरब नाद नित धारै ।  
नयरी माहि अगति बसि भूला, जहाँ तहाँ उठि भावै ॥  
मन महि पवन अटक से उसटा, परम जोग उर धारै ।  
अन हरिदास निरखाम अरम तजि, निरगुण जत निसतारै ॥  
(हरिदास निरंजनी)

इनके अनेक पद सरस और गभीर हैं। उनमें योगसम्बन्धी साधनाओं के धार्मिक सन्त-जनों के मिथ्यात्व पर भी प्रहार टापा गया है। इनकी शैली सुबोध और सरल है।

( १० )

देव पितर मेरे हरि के दास । पावन हों तिनके बिश्वास ॥

साधु जन पुत्रों चित लाई । जिनके दरसन हिया जुड़ाई ॥

×

×

×

×

तेरा भं बीरार-दिवाना ।

घड़ी-घड़ी तुझे बेला चाहूँ तुन साहेब रहमाना ॥

(मसूक़दाम)

जहाँ-जहाँ बचड़ा फिर, तहाँ-तहाँ फिर गाव ।

बड़े मसूक़ जहाँ संत जन, तहाँ रमैया जाव ॥

(मसूक़दाम)

इनकी सर्वोत्तम रचनाएँ आत्मबोध, वैराग्य तथा प्रेम का उपदेश देती हैं । उनमें इनका घटन विश्वास, विश्वप्रेम और प्रवाद अनुभव प्रसरता हैं । इनकी भाषा सरल प्रोग्राम और सुन्दर है ।

( ११ )

मे आये बाधा भई, भं माहीं तब माहीं ।

रज्जव मुचना मे जिना, बंधन मे ही माहीं ॥

घपना बहुरा आपही, धूरण समझे माहीं ।

रज्जव रामहिं कपूं भिसे, बहुत अंतर इस माहीं ॥

(रज्जव)

निरुकायी सेवा करे, कपूं भरती आकास ।

बंद धूर पाणी पवन, कपूं रज्जव निज दास ॥

रज्जव जी बड़े जानी घोर विद्वान् माधव थे । वे मल्ल होने के अनिरुक्त पन्ने बरि भी थे । उनकी रचनाओं में दुष्टानों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है जिनसे उनका विमल अनुभव और यथोचित चिन्तन प्रकट होता है ।

( १२ )

देसहु बुरपनि या संगार की ।

हरि तो होरा लीड़ हाथ ते, बाँधत मोट बिहार की ॥

माना बिधि के करम बसावत, ताबति नही तिर धार की ।

शूरे मूख मे भुनि रहे हे, फूरी घाँस गंगार की ॥

कोई लोभी कोइ बनजी लागे, कोइ फाल हप्पार की ।

घघ भुंघ मे बहुत रिनि प्याये, लुधि बिगरी बरतार की ॥

नरक जानिके बारम जाने, भुनि जान लवार की ।

लपके लप लपे लो लपकी लपकी लप लप लो ॥

धारम्यार पुकार कहत हों, सोहैं सिरजनहार की ।  
सुन्दरदास बिलस करि जंहें, देह छिनक में छार को ॥

(सुन्दरदास)

मत् कवियों में सुन्दरदास की काव्यबल, प्रवीणता, प्रतिभा और साहित्यिकता निर्विवाद है । इन्होंने केवल भजन और शब्द ही नहीं कहे, उच्चकोटि का साहित्य भी लिखा है । अर्थशून्य ऊटपटांग उक्तिों से इन्हें चिन्त थी । इनके अधिवक्ता मिदालन्त शास्त्र-मम्मत्त हैं । इन्होंने वेद, पुराण, देव कान, ममाज की दोति-नीति तथा लोक, मर्यादा की अवहेलना नहीं की । ये बड़े विद्वान् मन्त थे । इनकी कविता में हार्म्य और विनोद का भी अच्छा पुट देखने में आता है । भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था ।

( १३ )

धरनी परबत पर पिया, चढ़ते बहुत डराव ।  
बज्रहुँक पाँव जु डिंगमिंग, पावो कतहुँ न ठाव ॥  
धरनी पलक परं नहीं, पिय की सलक सोहाय ।  
पुनि पुनि घोवत परम रस, सबहुँ प्याम न जाय ॥  
बहुत हुवारे मेवना, बहुत भावना कोह ।  
धरनी मन संसय मिटी, तत्त्व धरो जय चीह ॥  
धरनी सो पंडित नहीं, जो पढ़ि गुन कर्म बनाय ।  
पंडित ताहि सराहिये, जो पढ़ा बिमरि सब जाय ॥

(धरनीदास)

बाबा धरनीदास एक पहुँचे हुए मत् थे और उनकी रचनाओं से उनकी अनुभूति की गहराई प्रगट होती है । उनकी दाँनी में भावगाभीर्य, शब्द-माधुर्य और संगीत का प्रवाह प्राण्य होता है ।

( १४ )

मोहि बाह्यु हं मन माया ॥टेक॥

एकं सद्य ब्रह्म किरि एकं, किरि एकं जग रदाया ।  
घातम जीव करम अरमाना, जड़ वेतन बिलमाया ॥१॥  
परमारथ को पीठ दियो हं, स्वारथ सनमुख माया ।  
नाम नित्य तजि धनिनं माये, तजि अमृत दिव खाया ॥२॥  
मतगुह कृपा कोऊ कोउ बाँचे, जो सोये निज बाया ।  
भीता यह जग रतो कनक पर, कामिनी हाथ बिबाया ॥३॥

(भीता साहब)

इनकी दार्शनिक विचारधारा वेदान के सिद्धान्तों से प्रभावित है। इनकी दर्शनशैली मग्न और भाषा मधुर एवं मृगीनमय है।

( १५ )

गदगद बानी बूँट में, झंझू टपकें नैन ।  
बहु तो बिरहिन राम की, तनछूत है दिन-रैन ।  
जाप करें तो पीव का, ध्यान करें तो पीव ।  
पिय बिरहिन का जीव है, जिय बिरहिन का पीव ।  
हाय हाय करि कब मिले, छानी पाटी जाय ।  
ऐसा दिन कब होगा, वरदान कर्ने प्रयाय ॥

(बरनदास)

बर्बर की पिशा और विचार-पद्धति का इन पर बहुत प्रभाव है। निम्न-निम्न मनो की कटु आलोचना प्रायः ये नो करने हैं। ये बड़े सम्पन्नमयीन मन थे। ये साधना (ज्ञान ममाधि) में चित्तशुद्धि, प्रेम थड़ा पर बहुत साधक करते थे।

( १६ )

पिशा जिन मोहि नौद न धारं । तृष्ट ॥  
मन गरबें लन बिहारी समवे । ऊपर से मोहि शाकि विभाव ॥  
सासु मनद घर दाहनि चाहें । निज मोहि बिरह गताव ॥  
मोहिन हूँ कं मे बन दुई । कोऊ न सुधि बतनाव ॥  
परमदास जिनं कर जोरि । कोइ नरे कोई कुर बनाव ॥

(परमदास)

बाप्यगुण दंग कविता में बहुत प्रभाव है। इनकी रचना में मग्नता और मनमग्नता के साथ-साथ मृगीनता का भी आलंकार और दार्शनिक सिद्ध-मान है। भाषा भी मृगीनता और मनो दुई है।

( १७ )

बीरामी भुगली घना, बहल मही प्रसमार ।  
भरपि बिदे निरुं लोक में, तह न मानी हार ॥  
तह न मानी हार, मुनि की बाहन बीगरी ।  
हीरा देखी पाइ, मोल माटी के बीगरी ॥  
मुरल नर समझी मही, मममाया बहु बार ।  
बरनदास कहे तहमिना, मुमिरे ना करनार ॥

(तहमिना बाई)

सहजो धार्द मगुण-निगुण में अभेद मानती थी। इनकी रचनाओं में प्रगाढ़ गुरुभक्ति, मानव जीवन की भाव, नामस्मरण की महिमा वर्णित है। इनके भाव बड़े स्पष्ट, मधुर और सुन्दर हैं—भाषा भी स्वच्छ और सरल है।

( १८ )

गुरु बिन जान ध्यान नहीं होय । गुरु बिन चौरासी मग जोय ॥  
गुरु बिन राम भक्ति नहि जाये । गुरु बिन असुख कर्म नहि त्याग ॥  
गुरु ही दीन-वधात गुसाई । गुरु सरन जो कोई जाई ॥  
पलट करे काम न हंसा । मन को भेटत है गय संसा ॥

(दया भाई)

दया भाई की कविता मधुर और सुबोध है। उसमें जटिलता कही नहीं माने पाई। इनके भावों में वैराग्य गुरुभक्ति, दैन्य आदि मत-गुण विद्यमान हैं।

( १९ )

भरे मन देहु सब बिसराय ।  
दीन हूँ सबलोन करि के नाम रहू ली साथ ॥  
नाम भगुन जपहु रसना गुप्त अंतर पाय ।  
मंस छटि के होय निरमल मुद्रि पादिस आय ॥  
निगुन निहारि निरंतु घनत नाहीं जाय ।  
सीम तुल्य कर परहु चरन छटि नाहीं जाय ॥  
सदा रहहु मंचित हेत सगाई नहि बिसराय ।  
जगजीवन परकास मूरति मूरति सुरति मिसाय ।

(जगजीवन साहब)

इनकी कविता की विशेषता है इनकी सरलता और नम्रता। ये दैन्य भाव का परिचय बहुत कराते हैं। मगुण कवियों के ये धार्मिक भाव (विनय, आत्म-नियेदन, दैन्य आदि) इनमें स्पष्ट लक्षित होने हैं। मधुरता और मनीतामयता इनके पद्यों में भरी पसी है।

( २० )

गगन-मंडल में रमि रहा तेरा संगी सोय ।  
बाहर भरमे हानि है अंतर दीपक जोय ॥  
चित के छंदर चाँदनी कोटि मुर सति-भान ।  
चित के अंतर देहरा चाहे धूय परवान ॥  
जिलमिल दीपक तेज के दसों दिमा बरहात ।  
सतगुरु की सेवा करे पावे मुक्ता-पात ॥

(गरीबदास)

इनकी रचना-शैली कबीर की शैली में मिलनी जुलनी है। पाण्ड और दोग की कड़ी धानोचना, अनन्य भक्ति, परोपकार का उपदेश वैसा ही करते हैं, हाँ, वेद-पुराण की निंदा नहीं करते। वे 'मन पुण्य' परमान्या को मगूण धीर निर्गुण में गये मानने हैं।

( २१ )

संत सनेही नाम हैं नाम सनेही संत ॥  
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावें ।  
वे हैं बाकिफकार मिसन की राह बतावें ॥  
अप-अप तीरथ बरत करं बहुनेरा कोई ।  
बिना बसीला संत नाम में भेंट न होई ॥

(पलटू साहब।)

इनकी रचनाओं में सब में प्रसिद्ध इनकी कुडलियाँ हैं। पुनः कि दोष इनकी कविता में और मन-नवियों में अधिक हैं। इनकी विशेषता यह है कि शातरंग के प्रतिरिक्त और और शृंगार-रस पर इन्होंने सुन्दर कुडलियाँ कही हैं। पौराणिक भक्ति की व्याख्या और नीति सम्बन्धी उक्तियाँ इनकी बहुत सुन्दर हैं। इनकी भाषा सुबोध और परिमार्जित है। इनकी विचारधारा कबीर से मिलती-जुलती है। ये श्री उक्त्य कोटि के अनुभवी मन्त्र, निर्भीक धार्मिक और निर्द्वन्द्व मन्त्ररमा थे।

( २२ )

अगम एक बीज में भोज ग्यारी सत्तो ।  
अंड बिब निरग बहंड मारा ॥१॥  
मुरनि की संत निग बहल में बस रही ।  
निकरि बट लोत गई गगन वारा ॥२॥  
अकल ओ सकल लख लोक ग्यारी भई ।  
गई घर अघर पर मुरनि लारा ॥३॥  
आइ ओ अंत घर संत पहिबानिया ।  
बास गुलसी अज अघर ग्यारा ॥४॥

(मुत्तमी साहब)

मुत्तमी साहब मनमन के गुपारख थे और धार्मिक युग की आदर्य मत्त रमारा की पुनः प्रसिद्धा करना चाहते थे। वे सम्प्रदायवादियों के विरोधी थे। बर्बर, मानव और दास की विचारधारा का इन पर स्पष्ट प्रभाव है।

रासरीय बड़े मोखी मन थे जिनकी विचारधारा में स्पष्टतन्त्र 'बाखोरिधनि' के माय-माय विवरकम्याण की भावना भी निहित थी। वे 'मोखीया ओ



विद्यात्मा का एकाकार चाहते थे। उनकी शैली में भावावेश, स्वानुभूति, भोज और ध्यानदोलनाम विशेषतया उल्लेखनीय है। भाषा कारसी-बहुत होती है।

### सूफी-काल

सूफीमत की स्थापना इस्लाम के माघ ही हो गई थी। कुरान के ऐसे प्रसंग, जिन में सर्वव्यापी प्रेम-स्वरूप प्रभु के जीवन और मौजूदगी का वर्णन है, सूफीमत का आधार हुए। यगरा की भक्त राबिया ने प्रेमसागर ईश्वर की प्राप्ति में घोर तपस्या की। घाठवी जलवादी में पैगम्बर-इश्वर के अवलोकन ने पहने-पहन सूफी स्थापना-मंदिर की स्थापना की। यही मे सूफी साधना की वह स्वतंत्र धारा बनी, जो आज तक भिन्न-भिन्न देशों में बनी आ रही है। यह भी माना जाता है कि सूफी मत इस्लाम की बढ़ती हुई कट्टरता की प्रतिक्रिया में बढ़ा हुआ। मुहम्मद साहब और उनके बाद की चार पीढ़ी तक के खलीफा बड़े धर्मपरायण, कर्तव्यशील, त्यागी और तपस्वी थे। धीरे-धीरे धार्मिकता की अवस्था राज्यविस्तार की आकांक्षा प्रबल होने लगी। उन्नी के माघ अनुदारता, दूरता और दृढ़ता भी बढ़ी। साम्प्रदायिक भावना तीव्र हो गई। ऐसे वातावरण की प्रतिक्रिया ही में सूफियों ने लज, भक्ति, प्रेम, उदारता, एकांतप्रियता के आदर्शों का प्रचार प्रारम्भ किया। इन का जीवन गश्वात्ताप (तीरा) और आत्ममर्पण (तबक्कुल) का जीवन था। विद्वत्पुत्र महामाधों में राबिया, दवाहीम अयाज, हल्ताज, मसूर, बयाजोद अल बस्तामी, जुनेद, जन्नानुद्दीन अमी, हाफिज, गादी आदि अनेक मौलाना, दरवेश और फकीर हुए हैं। मिस्र, अरब और ईरान में इनके बड़े-बड़े केंद्र रहे हैं।

भारतवर्ष में सूफी-मत का प्रचार सिध-पतन के बाद ही शुरू हो गया था, परन्तु यह प्रचलन रूप में होता था। सूफियों की अधिष्ठित रचनाएँ प्राथमिक पारसी में हैं—यही उम्र काल में साम्यभाषा थी—दूसरी का सूफियों को विशेष ज्ञान था। सूफियों की आदर्श, गूढ़ों और मगनविषय बहुत प्रसिद्ध हैं। हिन्दी-साहित्य में इनका प्रभाव कबीर के समय में स्पष्ट रूप में प्रकट होने लगा था। वह पर समय था जब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के निकट आने लग्ये थे। मुसलमान हिन्दुओं की कथाएँ सुनने लगे और हिन्दू मुसलमानों की रवायतें सुनने लगे तैयार हो गये थे। अतएव महाप्रभु, बन्दनामाएँ और रामानन्द के प्रेम-प्रधान वैष्णव धर्म का प्रभाव मुसलमान कबीरों पर भी पड़ा। इस समय तक हिन्दू और मुसलमान गाथाओं के बीच में कुछ-कुछ सामान्य धारणाएँ प्रतिष्ठित हो गये थे। ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान धर्मात्मा सूफी कवि प्रेमप्रधान गैरक साहित्य-शैली में उतरे। वे धारणाएँ गहने ही मे हिन्दुओं में प्रचलित थे। सूफियों ने इनकी मधुरता

घोर कोमलता का अनुभव करके इन्हें अपने प्रभु-प्रेम और अपनी साधना का प्रतीक बना लिया ।

सूफ़ी-कवियों की प्रेममार्गी काव्य-धारा १६ वीं शताब्दी से आरम्भ हो कर २०-वीं शताब्दी के आरंभ तक प्रसिद्ध रही । इन कवियों में प्रायः सभी मुसलमान हुए हैं और प्रायः कवियों ने प्रबन्ध-काव्यों की सृष्टि की है । निम्न-प्रमाण रचनाएँ विभिन्न रचनाएँ उल्लेखनीय हैं—

मूल्ना दाऊद—बंदावन ।

कुतबन—मृगावती ।

मन्नन—मधुमावती ।

जायसी—पदमावत ।

उदयमान—विश्रावती ।

जान—कनकावती, कामलता, मधुकर भावनि, रत्नवती, छोता ।

घोस मबी—ज्ञानदीप ।

कासिमशाह—हंस जवाहिर ।

नूरमुहम्मद—इश्रावती, अनुगम बामुरी ।

निवार—युमुक-जुलैखा ।

शबाब धरमद—नूरजहाँ ।

शेख रहोम—प्रेमरस ।

मसीर—प्रेमदर्शन ।

इनके प्रतिरिक्त जायसी ने 'मृगावती' और 'प्रेमावती' का उल्लेख भी किया है । निम्नो रचनाओं में 'अनुमृगट की बधा' और 'युमुक जुलैखा' उल्लेख-योग्य हैं ।

इनके प्रतिरिक्त कुछ मुसलमान कवियों ने मुक्तक कविताएँ भी लिखी हैं और इनमें अपने प्रेमरसपूर्ण उद्गारों और अनुभूतियों को प्रगट किया है ।

इनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

अमीर गुमरो—पद और दोहे ।

जायसी—छन्दरावट, धागिरी बत्ताम, मोरठे ।

शेख ऊरोद—मनोक (दोहे) ।

मारी शाह—छन्द, मूलने, गातिदा ।

बरकतुल्लाह पेमी—पद और दोहे ।

बुल्लेशाह—पद और काव्यम् ।

रीन दरवेश—कृतकविता

मसीर—पद ।

हाजी बत्ती—दोहे।

इनमें बरकतुल्लाह, यारी साहब और दरिया साहब की रचना में सूफी मिदात, बंजव पदति और ज्ञानमार्ग का मधुर सम्मिश्रण पाया जाता है।

सूफियों के प्रभाव के फलस्वरूप दादू, पुहकर कवि, नागरोदाम, बावरी साहिब, बोरु साहिब, बून्ना साहिब (बुन्नाकी राम), गुलाल साहिब आदि हिन्दी कवियों की रचनाओं में सूफी प्रेम-तत्त्व का निरूपण भारतीय ढंग से किया गया है। पुहकर का 'रसरत्न' प्रबन्ध-काव्य है, दोष कवियों ने छुटकर पदों में रचना की है। इनमें भी ज्ञानमार्ग और प्रेम मार्ग दोनों के सिद्धांत धारण हैं। भाषा और शैली का एकीकरण भी हुआ है। इनके प्रतिरिक्त हरराज की 'बोला मारवणी बजपही', काशीराम की 'कनक-मजरी' और हरमेवक की 'कामरूप की कथा' प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनमें केवल प्रेम की रहस्यमयी कहानी बही गई है, किसी सिद्धांत विशेष का प्रतिपादन नहीं किया गया।

नीचे हम उभी विचार-धारा और शैली का वर्णन करेंगे जो सूफी काव्य की अपनी विशेषता है। प्रागे उत्तरकाल के कवियों की रचना के उदाहरण दिये गये हैं जिससे सुनना की जा सके।

'सूफी' शब्द का अर्थ है प्रेममाधना वा वह साधक जो ऊन (सूफ) की बरानी और कनटोप पहने मंगार से विरक्त हो, अपने प्रियतम परमात्मा के प्रेम-मद के रियर और स्थायी आनन्द में मग्न रहता है। सूफियों की काव्यशैली मान्यता हमारे बंजव धर्म की प्रेम-माधना से बहुत अर्थों में मिलती जुगती है। सूफी मानते हैं कि जो कुछ 'सत्ता' है वह एवमात्र प्रभु की है—दृश्य-मदृश्य सभी पदार्थ उभी से निकले हैं और उसी से प्रोत-प्रोत हैं। अथर्वन ईश्वर सृष्टि के रूप में व्यक्त है। इसी सृष्टि का परमोत्कर्ष मानव है जो ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति है। प्रायेक मानव में परिपूर्णता बीज रूप में अवभावतः विद्यमान रहती है। उस की प्राप्ति पूर्ण मानवत्व की उपलब्धि है। पूर्ण मानव ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जगत् के प्रति यनी हुई उसकी आगमिनी वा भीर हो जाता है और वह ईश्वर में लीन हो जाता है। प्रभु के चरणों में सर्वप्रियमर्पण करके उस में लय हो जाता ही सूफी माधना की परम परिणति है—मानव का मध्य है। चिन्तु, हम स्थिति की उपलब्धि कोई आसान बात नहीं है। 'बून्नाह मतर हूबार पदों के भीतर लिपा है।' 'उम तक पहुँचने के लिए साधक को अनुशास, आत्म-अर्थ, वैराग्य, दारिद्र्य, धर्म, विद्वान्त और गरीब—इन मान योगाओं (मुकापात) से होकर जाना पड़ता है। इन मुकापात तक पहुँचना भी साधक के अर्थों पर निर्भर है। उसके लिए श्रम, गन्धर्भ,

मदावार और मन्त्रिक को भावदयकता बनाई गई है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म में कर्मकाण्ड, उपायनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और सिद्धावस्था है उसी प्रकार सूफी साधना की प्रक्रिया भी—शरीफन (कर्म धर्म), नरीफन (उपायना), ज्ञानीफन (ज्ञान) और मार्फन (मिर्ज़ि) ये ही चरण (स्टेज) मिलते हैं। इस साधना में पौर या मौलिया (गुरु) के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। यूसी उस परमेश्वर की उपायना करते हैं जो निर्गुण निराकार तो है, परन्तु अनन्त प्रेम का स्रोत भी है। परमाध्यात्म वह निर्गुण, निरन्तरि एव निर्विघ्न है, अवधारण्य, उस में विविध गुण भी हैं। वह हमें मदाभ्यासों द्वारा साक्षात् कर रहा है। परन्तु हम इस साक्षात्कार से हटकर जगत् के पदार्थों की लोभ में लगे रहते हैं। प्रेम का द्वारा हमारा ध्यान-करण शुद्ध होता है, हम जगत् के प्रारब्धों से छूट जाते हैं और प्रभु की कृपा से प्रेम-मार्ग की पूर्णावस्था को प्राप्त होते हैं। प्रभु की ओर में हमें गोपनी की जो प्रक्रिया है उसे सूफी इज्जिब (साधना) कहते हैं, और साधना की जो साक्षात्ता प्रभु से मिलने (कर्म) के लिए है उसे वे इज्ज (प्रेम) कहते हैं।

साधना और परमात्मा का कर्म (मिलने) जब तक नहीं हो सकता जब तक परमात्मा का अनुग्रह (कडमुल्पाह) प्राप्त न हो। जब तक साधना, निरन्तर-ध्याना में रहकर, अपने प्रियतम का स्मरण-चिन्तन (जिस्) करे और 'प्रेम की गीत' का आनन्द ले। सूफी मृत्यु (फना) का बड़े उत्साह के साथ स्वागत करते हैं, क्योंकि मृत्यु ही साधना की धारिणी यही रिश्ते में निरास कर अपने प्रियतम के ध्यातव्य का आनन्द प्राप्त कराती है।

इसी धार्मिक प्रेम की ध्याना सूफीमत के हिन्दी कविता में लीरिज प्रेम के कथानको द्वारा की है। धार्मिक प्रतिबन्धों के कारण सूफी कवि अपने उपायना के प्रेम के सम्बन्ध में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कह सकते थे, भले उन्होंने प्रेमा-ध्यानों की ही ईश्वर-प्रेम की धर्मिण्यजना का साधन बनाया। वह धर्मिण्यजना मर्त्य के रूप में की गई और हमारे प्रेममार्गी साहित्य में आवासीय रहस्यवाद की सृष्टि हुई। कहा गया है एक धर्मोक्ति है और नवी प्रत्यक्ष वर्णन प्रत्यक्ष के प्रतीक हैं।

प्रेम की आर्तुति स्वयं-दर्शन, चित्र-दर्शन, सौन्दर्य-अनुभवा सबका सारस्य दर्शन के होती है। प्रेमी अपने प्रेमाधार से मिलने के लिए आतुर हो जाता है और अपने स्वयं की प्राप्ति के लिए सबकुछ परिश्रम करने के लिए तैयार हो जाता है। प्रलो-भनों और विघ्न-साधनों को पार करना और अपने कष्ट कोपता हुआ बट धरमर होता है। कभी-कभी तो मरुत होकर वह फिर सकट में पड़ जाता है। मैरिज धर्मः उसे अपने मरुत की प्राप्ति हो जाती है। प्रेमदावाओं का प्राप्ति, यही सीमा है।

सूफी साध्यान् धात्मा की रहस्यवादी प्रेम-कथा है। ईदवर को स्त्री और धात्मा को पुरुष मान कर पुरुष (राजकुमार चंद्रगिरि, मनोहर, रत्नसेन अथवा मुजान) को धनवी प्रेमिका (मुयावती, मधुमानवी, पद्मावती अथवा विद्यावती) ने मिलने की कथा प्रतीकरूप में बही गई है। यह शैली विदेशी प्रभाव के कारण है। भारतीय प्रथा के अनुसार नायिका ही नायक के प्रति आकृष्ट होती है, परन्तु इन कथाओं में प्रेमी को ही प्रेमिका की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील दिखताया गया है। अलबत्ता किसी-किसी ने और उपसंहार में आसानी ने भी भारतीय दृष्टिकोण को लिया है। जायसी ने तो नायिका को सतीत्य तथा उरबट पतिप्रेम का परिचय देकर अपने भारतीय होने का प्रमाण दिया है। प्रेमवर्णन में अदलीलता का अभाव, प्रकृति के रूपों का मार्मिक चित्रण, कथा की मुखांत परिणति, ये सब बातें भारतीय वातावरण के अनुकूल रखी गई हैं।

सब सूफी कवियों के कथा-प्रसंगों के बीच-बीच में प्रेमी के कष्ट और त्याग आदि के वर्णन मिलते हैं। 'प्रेम की पीर' का धार्यन्त सुन्दर चित्रण इन काव्यों में मिलता है। जायसी का विरह-वर्णन विशेष-रूप से विशद है। इन्होंने विरह-एतस प्रेमी और प्रेमिका के साथ गारे सत्कार की महानुभूति दिखाई है, यद्यपि वर्णन में वही-वही अभिव्यक्ति से भी काम लिया गया है।

साधक को प्रेम-अथ से विचलित करने के लिए शैतान उत्पन्न भेष्टा करता है। राजकुमार मनोहर के लिए राक्षस, रत्नसेन के लिए असाउहीन, मुजान के लिए कुटीबर शैतान है जो उन्हें बन्ध देने हैं और मृत्यु में डूबाना चाहते हैं। इस शैतान ने बंधने के लिए पीर अथवा मृद की बहुत आवश्यकता है। सूफियों में पीर की महत्ता बड़ी है जो मंगी में मृद की। सब सूफी काव्यों के प्रारम्भ में मृद की स्तुति की गई है।

यद्यपि सूफी कवि कथा के बहाने आध्यात्मिक तरव का निरूपण करना चाहते हैं, तो भी वे कथा की गरमता और सत्य में अपने सत्य को भूल-ने जाते हैं। केशव की तरह उन्होंने कथा का धर्म-अंग नहीं किया। उनकी कथा गणित और सुव्यवस्थित रहती है। यह ठीक है कि कथा तो हिन्दू जीवन से ली जाती है, परन्तु हिन्दू जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व उसे नहीं हो पाता—बड़ी-न-कहीं बुरा हो ही जाती है।

प्रेम-कथाएँ इतिहास अथवा सोच-विरास से ली गई हैं, परन्तु इनमें कल्पना का बहुत कुछ हाथ है। इससे ऐतिहासिकता की हत्या अवश्य हुई है, पर साहित्यिक दृष्टि से अच्छा ही हुआ है क्योंकि ऐसा करने से कथा में रोचकता आ गई है।

सूफियों के प्रबंध-आध्यात्म में हिन्दुस्तानी और ईरानी शैलियों का सुन्दर सम्मेलन हुआ है। कथाओं के पात्र हिन्दू हैं, उनके आदर्श हिन्दू हैं, उनको सम्पत्ति संतुष्ट

नाटकों के ढंग पर सुगम है क्यानको के घटुर्गत हिन्दू देवी-देवताओं के भी विवरण है। साथ ही भारतीय काव्यगतों से पूर्ण रहते हुए भी ये प्रेम-काव्य पाठकों मननशी के वर्णनात्मक रूप लिये हुए हैं। भारम्भ में ईश्वर-बंदना, वैष्णव की धुनि और उन समय के बादशाह की प्रशंसा की गई है। फिर कथा के माध्यम नायिका के स्थान और परिवार आदि का परिचय देकर कथा का आरम्भ होता है। कथा सुनो या प्रप्यायो में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं की गई, बग़ाबर सभी चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं का प्रसंगों का उत्तरोत्तर शीर्षक के रूप में रहता है। इन काव्यों में 'धन्क लैला' का सा घटना-वैविध्य भी मिलता है। मधुमालती का पक्षी बन जाना और मंत्र के प्रभाव से फिर मनुष्य-रूप ग्रहण करना हीरामन मृगे का दूत बनना, नादकों का मोन के मुँह में जाना और बच निकलना इत्यादि घटनाएँ भरपूर रोमांचकारी हैं। परन्तु इनकी अत्युक्ति कथा-प्रसंग में गड़बड़ी प्रकर है।

इन काव्यों में वस्तुवर्णन भी प्रायः अशुचिकर और शुष्क है, अलबत्ता जहाँ प्रेम की मधुर धनियन्ति हुई है अथवा आत्मा और परमात्मा के बिगड़ और मिलन का वर्णन किया गया है, वहाँ प्रकृति तथा वस्तुओं का वर्णन भी रोचक और शरीर बन गया है। यहाँ पर फिर यह बताना आवश्यक है कि इनका विरह-वर्णन हिन्दू-संस्कृति और काव्यव्यक्ति के अनुबद्ध नहीं। मयनशी के ढंग का अना-वश्यक वर्णन-विस्तार अगह-अगह क्यानक की शरीरता की आघात पहुँचाता है। कहीं-कहीं प्रबंध-बलना मनोविज्ञान और काव्य की कलात्मकता की हत्या भी हुई है।

हिन्दू देवी-देवताओं और मूर्तियों की कहीं-कहीं अवमानना की गई है और इस्लामी आग्रहताओं की प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रायः शूरी कवि धार्मिक चरित्र-चित्रण में स्वभावविशेष नहीं ला सके। धार्मिक प्रेम (इश्क हकीकी) के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान दिया गया, चरित्र चित्रण की विना नहीं की गई।

शूरी काव्य एकल, अलबत्ता और अशुचि या सगुण है। घटना-वर्णन में यथोक्त बहुत ही कम पाई जाती है।

इन दोनों के रहते हुए भी प्रेमनायिकों की मार्तण्डिक देव बहुमूल्य और आनन्ददायी हैं। हिन्दी-मार्तण्डिक में अलबत्ता अल-काव्य बहुत कोरे हैं। शीर्षकों के बाद यही प्रेमचरित्र हमें प्राप्त होते हैं। इनके धर्मिक 'मनचरित्रात्मक', 'अविवरण' और एक-आध अन्य चरित्र-काव्य ही हमारे मार्तण्डिक-मार्ग में पा पाया है। इस दृष्टि में शूरी-कवियों की रचनाओं के अन्तर्गत का अनुमान किया जा सकता है। यहाँ के आनन्दमय में दूर न रहते हुए भी प्रेम-काव्य में हमें

रोचक, भावपूर्ण और शौकिक कहानियाँ दी हैं। संसार के प्रेम की इतनी मयूर और कोमल अभिव्यक्ति हम को पहली बार सूफी-काव्यों में मिलती है। इनमें खटन-खटन नहीं है, केवल एक जगह 'पदमावत' में रत्नमेन के मुँह से मूर्तिपूजा की बुराई हुई है—परन्तु उसने ऐसा नैराश्य में कह डाला है। प्रायः लोग निराशा में अधोर होकर देवताओं को कोमा ही करते हैं।

सूफी-कवियों की दृष्टि व्यापक और तीव्र है। उन्होंने बड़े-बड़े सूक्ष्म भावों तक अपनी पहुँच दिखाई है। रति, शोक, वियोग, रोमांच, युद्धोत्साह सब का सम्बन्धपूर्वक वर्णन इन्होंने किया है। ये लोग चिन्तन में बड़ा धम्यास करते थे। जायसी, उसमान और नूर विशेषतया बहुयुत और अनुभवों फकीर थे। इन्होंने ज्योतिष, हठयोग, वेदांत, रसायन आदि का अच्छा परिचय दिसाया है।

मुक्तक सूफी काव्य की मूल से बड़ी विशेषता यह है कि उस में साधारणतया वही भाव सक्षित होते हैं जो सत्ता के पदों में मिलते हैं। बहुत से इतिहासकारों ने इसी लिए सेर फरीद, यारी साहब, बल्ले साह, दीनदरवेश, यादरी साहब, बीर साहब, गुलाल आदि की गणना मत्तो में की है।

साधारण भाषा में उत्कृष्ट भावों का प्रदर्शन करना कवित्व की सर्वोत्तम कगौटी है। इस कगौटी पर मुसलमान लेखकों की ये कृतियाँ उज्ज्वल कीर्ति के साहित्य का भग है। शोक है कि ऐसे भावुक और उदार मुसलमान कवि भारतवर्ष में उठ गये हैं। इन्होंने मुसलमानों के अंदर हिन्दुओं के प्रति जो सद्भावना की लहर फैलाई उसकी पुनरावृत्ति की कितनी बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी के जितने मुसलमान कवि भक्तिकाल में हुए हैं यदि इससे आधे भी ध्यान होते तो हिन्दु-स्तान के अनेक सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों का हल स्वयं हो जाता।

प्रेम-काव्य-साहित्य की भाषा मुख्यतः अवधी है। यह अवधी सरल और स्वाभाविक है। यही गूरब में जनसाधारण की बोली थी। उसमें संस्कृत के कठिन समास या दुर्बह प्रयोग नहीं हैं। भाषा का जैसा सुन्दर भाषा रूप सूफी-काव्य में प्राप्त होता है वैसा पहले न था। तुलसीदास ने इसी भाषा में पाण्डित्य भर कर बाद में इसे साहित्यिक रूप दे दिया। सूफी काव्य में भरबी-फारसी की शब्दावली स्वाभाविक ही है।

सूफी कवि नब्बों की धमियाँ, सतना और ध्वनना शक्तियों से पूर्णतः अभिन्न थे और उन्होंने इनका प्रचुर उपयोग भी किया है।

प्रेमकाव्य के दृढ़ हैं दोहे और चौपाइयाँ। नूरमुहम्मद ने बरबं का प्रयोग भी किया है। अवधी भाषा और दोहे-चौपाई तथा बरबं का स्वाभाविक मेल सक्षित होता है। पद-आवृत्ति में अवधी भाषा के दोहे अवधी के दोहों से ईर्ष्या नहीं कर सकते।

जामती में पहुँचे कुतबन और मसन ने पाच-पाँच चौपाइयों के पीछे एक दोहे का प्रेम रक्खा है। जायसी और उममान ने सात-सात चौपाइयों के बाद एक-एक दोहा रक्खा है। नूरमुहम्मद में फिर पाच-पाच चौपाइयों के उपरान्त दोहे का प्रेम आता है।

अनंवारों में अर्ध-चमत्कार प्रधान है, पद्य-चमत्कार गौण और कम। वैसे भी इन कवियों को शब्द-चमत्कार से रुचि नहीं थी। नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में, मायक के कपड़ों का चित्रण करने में, बिरह की भावना को प्रगट करने में अनंवारों की सुन्दर योजना हुई है। उनमा, रूपक और हेतुप्रेक्षा प्रधान अम-वारों में से है।

प्रेम-काव्य का प्रधान रस शृंगार है और इसमें वियोग-शृंगार का आधिपत्य है, क्योंकि मायक का बिरह ईश्वर से बहुत दिनों तक रहता है। शृंगार का वर्णन भारतीय प्रथा के अनुसार ही होता है और इसकी पूरी-पूरी विवेचना की जाती है। पूर्वानुराग श्रवण द्वारा अथवा चित्र द्वारा उद्दिष्ट होता है, मान का माध्यम प्रायः गुरु रहता है, रति-भाव रस-शास्त्र की रीति का पूर्ण अनुसरण करता है। नायिका के रूप का अत्यन्त स्पष्ट और सजीव वर्णन किया जाता है। एक रस-दोष अवश्य है। भारतीय शास्त्र के अनुसार शृंगार रस के स्थायी भाव रति से भाग और रक्त की भावना का सामञ्जस्य नहीं हो सकता, परन्तु इन कवियों ने मसन के ढंग पर बिरह-वर्णन में माय और रक्त का वर्णन भी किया है। ऐसे प्रकरणों में बीमल-रस भा गया है। बीररस तथा शात-रस भी इन काव्यों में मिलने हैं। हा, हास्य और रोड रस का अभाव है।

प्रेम-काव्यों का कर्तव्य प्रायः एक ही है। यथों की वृद्धगत्या में बहुत बड़ा-बड़ा संतर है। कथा का विभाजन संदों में किया गया है। संदों के नाम कथा-विकास की दृष्टि से रखे गये हैं। 'पद्मावत' में मिहल-कनेवर द्रोप-वर्णनसंद, मानसोदरसंद, जोगीसंद, पद्मावती-मुष्ठा-भेटासंद, पद्मावती रत्नमेन संद, इत्यादि कथा के ही विभाग हैं। इस प्रकार 'दुद्रावती' में स्तुतिगद, स्वप्नगद, मानिनगद, पुनवारोसंद, महानगद, आह्लाद इत्यादि और 'विजयवती' में विजयसंद, परेवासद, हस्तीसद, विजय-वतीविषादसंद, परेवाकथनसंद, गुजानकथनसद इत्यादि कथा के अलग-अलग भिन्न-भिन्न विवरणों के ही नाम हैं। 'सूक्त-जुनंसा' के संद कुछ लंबे हैं। वैसे संदों का परिणाम निश्चित नहीं है। कोई संद छोटे हो तो कोई बड़े, और किसी के दो पृष्ठ हैं तो किसी के ३०-४०।

काव्य-कर्तव्य की कल्पना में जिसी समानता प्रेममायों कवियों के काव्यों में है, इसी की अन्य काव्य में नहीं पाई जाती। यदि किसी को रस रस



अपकार का नाम न बताया जाये सो यह यही समझेगा कि ये एक ही लेखक की और एक ही काल की कृतियाँ हैं ।

प्रेममार्गी काव्य-शैली के नमूने नीचे दिये जाते हैं ।

बदाहरण

( १ )

साह हुतन अहं बड़ राजा । छत्र सिंहासन उनको छाजा ॥  
 वंशित श्री बुधवंत सयाना । पढ़ें पुरान धरष सब जाना ॥  
 धरम बुविटल उनको छाजा । हम सिर छाह जिपौ जग राजा ॥  
 दान देह श्री' गनत न आवैं । बलि श्री' करत न सरबरि पावैं ॥

(कुतबन—मृगावती)

सूफी शैली के हिन्दी कवियों में सबसे पहले इन्ही का नाम आता है । इनकी कविता में परमात्म-प्रेम, प्रेममार्ग की कठिनता और धरम-समर्पण की सुन्दर अभि-  
 व्यञ्जना मिलती हैं ।

( २ )

विरह-अवधि अवगाह अपारा । कोटि माहि इक परं त पारा ॥  
 विरह कि जगत अँविरषा जाहो । विरह रूप यह सुष्टि सबाही ॥  
 नैन विरह-अंजन जिन सारा । विरह रूप दरपन संसारा ॥  
 कोटि माहि विरसा जग कोई । जाहि सरीर विरह-बुल होई ॥  
 रतन कि सागर सागरहि, गजमोती गम कोई ।  
 अँवन कि बन बन उपजं, विरह कि तन तन होई ॥

(मंसन—मधुमालती)

'मधुमालती' की कथा 'मृगावती' की कथा से अधिक रोचक है और इसके भागे वर्णन भी अधिक विशद हैं । उपनायक और उपनायिका के चित्रण में कथा में अद्भुत गौरव आ गया है । प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर हुआ है ।

( ३ )

भागमती पचावत रानी । बोज महासत सती बसानी ॥  
 बोज सौन बड थाट जो बँठी । श्री निबन्धक परा तहँ बौठी ॥  
 बँठो कोई राज श्री पाटा । अँत सबे बँठे पुनि साटा ॥  
 बँदन अगद काढ़ सर साजा । और गति देव अले सं राजा ॥  
 बाजन बाजहि होय धगोता । बोज बँत सं चाहँ तोता ॥  
 एक जो बाजा भयो विवाह । अब हुसर है और निवाह ॥  
 जिपन जलं जो बँत की छाता । भुये रहत बँठे इक पाता ॥

घाज मूर दिन धयवो, घाज रयनि धमि बूढ़ ।  
घाज नाथ जिय दोजिये, घाज धगिन हम जूढ़ ॥

( ४ )

(जायसी—परमावत)

घाड़िउं मंहर बसिउं बिछोई । एहिरे दिवस कहुं हो तब रोई ॥  
घाड़िउं घापन ससो सहेसो । दूरि गवन तजि बसिउं घरेसो ॥  
मंहर घाड़ बाह मुख बेसा । जनु होइया सपने कर सेसा ॥  
मितहु ससो हम तहंघां जाहीं । जहाँ जाइ पुनि घाउब नाहीं ॥  
हम गुम मिनि एकं सँग सेसा । संत बिछोह जानि जिउ मेला ॥

(जायसी—परमावत)

जो रिट्ट है सो तब, मोहि बिन नाहिन कोई  
जो मन चाह सो जिया, जो चाहें सो होई ॥  
मोहि जोति परछाही, नवो लख उजियार ।  
गुरन धार के जोति, उदित यह सतार ॥

(जायसी—अनरावट)

जायसी का 'परमावत' प्रेमगाथाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रिय वचन है। क्या कलाकला में और क्या भावना में, क्या प्रस्तुत वचन में और क्या अग्रस्तुत की अभिव्यक्ति में इस वचन की गूढ़ता, सरसता, गम्भीरता और रोचकता निर्विवाद सिद्ध है। इसमें स्तुति, नगनिग, श्लोक-वचन, स्त्री-परिचय, प्रेम, विरह, गुण, दुःख, धर्म, राजनीति, घर, दुर्ग, समुद्र, राजमंदिर, जीवन, मृत्यु, सभी विषयों का विस्तृत, हृदयग्राही और विषाद वर्णन किया गया है।  
अनरावट में परमेश्वर की स्तुति और मनार की अमरता का वर्णन दश-भाग्य-वर्णमाला के अक्षरों के रूप में किया गया है जैसे 'य धारु बटु ग्यान विचार । जेहि मई सब समान समार ॥' यह सीली पारसी-उर्दू की 'सो हरफ़ी' के भी कई हैं।

( ५ )

धारि बतानो लोई बिनेरा । यह जग बिज कोह जेहि केरा ॥  
कोहेंति बिज पुरख छउ नारी । को जल बल धनि लख सँवारी ॥  
कोहेंति जोति मूर-नति तारा । को धनि जोति मितइ को पारा ॥  
कोहेंति बदन बेर जेहि लोता । को धनि बिज बदन पर लोता ॥  
छाग बिज निति जानइ लोई । कोहि बिनु मेदि लखइ नहि कोई ॥  
कोहेंति रंग रसाम छउ नेता । राजा रोगा छउर जग जेता ॥  
यह सब बरन कोहू कहैं ताई । छागु अचरन अरन मोनाई ॥

कोन्हा धगिनी पौन पर भाँति भाँति संसार ।

धायुन सब महें मिति रहा को निगरावद पार ॥

(उसमान—चित्रावली)

‘चित्रावली’ की रचना ‘पद्मावत’ के ढंग पर हुई है। इसमें भी उसी प्रकार प्राप्यात्मिक वर्णन, राजस्तुति, नगर, सरोवर, यात्रा आदि का विशद वर्णन है। बिरह-यत्न के अन्तर्गत प्रकृति-वर्णन भी गरस और सुन्दर हुआ है। इनकी कविता में पौराणिकता भी है, बदाकि नायक को शिव का अंश माना गया है।

( ६ )

जय लगि चारि चारि रहूँ चारी । राजकुँवर कहूँ ठग भस भारी ॥

दाहिनि धमक चाहूँ अधिकार । दुधऊँ चित रहै चित लाई ॥

बहेउ पवन सट पर धनुराणें । सट दितरानि पवन के लापे ॥

परी बदन पर मट सटकारी । तप विवस भँ मिति धौंविपारी ॥

मोहि परा हरगन कर चेरा । हुना जान धन धौंलिन केरा ॥

(नूरमुहम्मद—इन्द्रावती)

उत्तरकालीन सूफी कवियों में ‘इन्द्रावती’ और ‘धनुराग बागुरी’ के रचयिता नूरमुहम्मद का नाम भी प्रसिद्ध है। कवित्व की दृष्टि से नूरमुहम्मद की रचना बहुत अच्छी है। इनके स्वाभाविक वर्णन विस्तृत और विशद हैं, प्रेम-चित्रण सुन्दर है और इनकी भाव-व्यञ्जना भी उच्चकोटि की है। इनकी भाषा ठेठ अवधी है जिसमें मल्लूत और वज्रभाषा के शब्द सूख मिलते हैं। प्रास्थान-गढ़नि के अनुसार लिखने वाले सूफी कवियों में इन्हें अन्तिम कवि माना गया है।

( ७ )

जोवन बिना सुमन अति लार्ग । तरनी भये कहाँ को भारी ॥

बिनु तवनी हरनी सुन बँन । बरनी जात न काये नैन ॥

हाथ भाव नहि जानत भोरी । कभूँ न बितवें बितवनि चोरी ॥

जब बटास नैनन मे बरिहूँ । मरनुस कहार देव बस करिहूँ ॥

धँवान बरन किरति है पावत । ज्यों बस धमपागिर है धावत ॥

बँटी ओत बेहुरं माहि । सोयो रहो देखनी माहि ॥

छोता देवी बरिपरि नैन । बरित भयो मुख सज्ज न बँन ॥

(आनकवि—छोता)

आनकवि के प्रवर्णों की विशेषता है उनका प्रसाद, स्वाभाविक मर्मज्ञ, और ‘वैश्रूण’ प्रेमसत्य-निष्ठा । ‘छोता’ में उनकी मौलिकता के दर्शन होते हैं। अन्य सूफी रचनाओं में उपलब्ध नहीं।

( ८ )

वेम छंद भद्रज्ञानी, ममद ग्यान मति भूत ।  
 संवरि रूप धनुसाड मन, उठे हिये महें मूल ॥  
 उठि ब्रह्म मुस संवरत सोई । भई सपन कहि सक न रोई ॥  
 जस सोचरे मुस तब बिलसाई । वै सुनाव तें रोइ न जाई ॥  
 बिरह बान वेवा एक जारा । रोम-रोम व्याकुल तेहि जारा ॥  
 बिलपो बिरह धाति कं सागी । सुखमं सागि हिये भैं धागी ॥  
 सखी बेंसि बन बदम मलीना । मन व्याकुल तन सुष-सुष हीना ॥  
 सुपन्हि पत सुख चित उदासा । कवन मोच कर हिरदं बाला ॥  
 सुम सब कर जग प्राण धारारा । काहे सागि भई बिरारारा ॥  
 सब सुख सुमहि पिपातें दीन्हा । मन भलो न केहि कारन बोगहा ॥

(निसार—धूमक जुनेसा)

निगार बड़े विद्वान् बधि ये । हृदय की अनेक अवस्थाओं का विवर्ण करने में उन्हें बड़ी सफलता मिली है । वे हैं तो पुरतें धार्मिक, पर नृप मुहम्मद की भाति दूगरी के प्रति बटुमाय उन में नहीं है ।

( ९ )

खनी अतां बाबूख बी भागो । श्री परमात्मा धूमक जानो ॥  
 प्राण, स्वाद, इरादो करो मन । सखन शब्द नैनन का बगान ॥  
 जिता बेल संरोह परमाना । श्री अनुमान, सरन श्री ग्याना ॥  
 यही जो ग्यारह हैं मेहि गाता । जानो इन्हें धूमक के भाता ॥  
 हात और पद बालिक के जानो । श्री तैमूर के पोवन मानो ॥  
 रिपु झुनेसा जानो संगू । दाई जानो विज्ञान के साथू ॥  
 जानो अरीब मिल दपीरो । और मिल को जानु तरीरो ॥  
 जीवन धारवा मन में जानो, है राजा रव्यान ।  
 धरध 'नतीर' ग्यान का होना, बहुत यही परमान ॥

(नतीर—प्रेमदर्शन)

नतीर ने श्री निगार की तरह भारत में बाहर की बधा के धापर पर अपनी प्रगल्भ-रचना की । दोनों ने मिल के धूमक-जुनेसा का बालक बरदादा । उपर्युक्त वर्णन में नतीर ने बधा के प्रतीक की स्पष्ट चर्च की चेष्टा की है ।

धूमक बलिबाधों के नमूने जोने दिने जाते हैं । ये अनेक हिन्दी कौतियों में मिलने हैं ।

( १० )

बहुत रही बाबूख घर दुगहिन, जय, तेरे बी में जाताई ।

नहाय घोष के बस्तर पहिरे, सब ही सिगार बनाई ।  
 विदा करन को कुटुंब सब धाये, सिगरे सोय सुगाई ॥  
 चार कहारन डोली उठाई, संग धुरोहित नाई ।  
 चलें ही बनंगी होत कहा है, नैनन नीर बहाई ॥  
 धंत विदाहं चलिहं दुलहिन, काहू की कछु ना बसाई ।  
 मौज लुसो सब देखत रह गए, मात-पिता औ भाई ॥

(अमीर खुसरो)

अमीर खुसरो ने कई प्रकार के पद्य और गीत लिखे । उनके दृष्टान्त हमारे दैनिक जीवन के देखे-गुने अनुभव हैं ।

( ११ )

नैनन धाये बेसिये, तेजपुंज जगबीस ।  
 बाहर भीतर रमि रह्यो, सो धरि राखो सीस ॥  
 छाठ पहर निरलत रह्यो, सनमुख सवा हनूर ।  
 कह धारी घर ही मिलै, काहं जातै दूर ॥  
 आतम मारि गुहागिनी, सुन्दर धापु सँवारि ।  
 पिय मिलवे को उठि बसी, चौमुख दियरा बारि ॥

(धारी साहब)

इनकी कविता में भक्ति, ज्ञान और प्रेम तीनों का सुन्दर समन्वय हुआ है । इन्होंने ज्ञान में भी प्रीति को ही प्रधान आधार माना है । इनकी साक्षियों में अप्रतिम प्रेम और गंभीर आत्मानुमति का मौल्य विशेष रूप से प्राप्त होता है । भाषा, पद, तथा वर्णन-शैली के विचार में ये अपने पहले के सूफी कवियों से भिन्न हैं । इन्होंने और इनके परवर्ती सूफी कवियों ने प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखे ।

( १२ )

हिन्दू बहो तो हम बड़े, मुसलमान बहो हम्म ।  
 एक मंग दो फाड़ हैं, कुण जादा कुण कम्म ॥  
 कुण जादा कुण कम्म, कमी करना नहि कमिया ।  
 एक भगत हो राम, दूजा रहिमान सो रमिया ॥  
 बहो धीन बरवेस, दोय सरिता मिय सिधु ।  
 मबरा साहब एक, एक मुमलिय, एक हिंदु ॥

(बीन बरवेस)

इनकी गहरी स्वानुमति, उदार भावना, और मरत्य अभिव्यक्ति दर्शनीय है ।

( १३ )

बाबल कैसे बिसरा आई ।

जदि में पति संग रस सँतुंगी, चापा परम समाई ॥  
सतगुरु मेरे किरपा कीनों, उत्तम सर परनाई ।  
घब मेरे साईं की तरम पड़ेगी, लोग चरन लगाई ॥  
ये जानराय में बातो भोली, ये निरमन में मंथी ।  
ये घतसाए में बोल न जानूँ, भेद न सकूँ सहैली ॥  
ये बहुरभाव में छातम कन्या, समझ न जानूँ जानी ।  
हरिया कहूँ पति पूरा पाया, यह निदख्य कर जानी ॥

(हरिया साहब)

घार की बरिना में ज्ञानमार्ग का प्रभाव स्पष्ट मलित होता है । इनकी रचना में गुरु-महिमा, नाम-स्मरण, रामचिंतन, प्रेम-धर्मिमार, विरह आदि विषयों का वर्णन सुन्दर है ।

( १४ )

जनम मुकुल भेलो हो हय धनि पिया की पियारी ।  
सोरही सिंगार सेपूरण पहिरन देलन क्य निहारी ॥  
तत तिलक बे माँग सँवारन दिनवत धँबरा पमारी ॥  
छाट पहर धुनि मीठनि बाजँ सहज उठे मनचारी ॥  
रोति-रोति नेवदावर बाटी मुक्ना भरि-भरि धारी ॥  
गगन-मंडल में परमपद पावल जगहि कइल घर धारी ॥  
जन गुनाव मोहागिन पिय संभ मिल मो भूजा पमारी ॥

(गुनाव)

गुनाव साहब मन प्रभुनि के प्रेमाश्रयी कहि थे । इनकी बानियों में अधिम भक्ति, गंगार की धगागता, ज्ञान धीर प्रेम के उपदेश मिलने हैं । इनकी बरिनाओं की देगवर गुना निदख्य होता है कि इनके यहाँ मन्त्रमार्ग धीर प्रेममार्ग में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

( १५ )

यह बात न समझे, धीर मुनो, जो लज्जी में धी धाग लगी ।  
अब बुझवर टंडी राम हुई, तो उसकी देह कहाँ पहुँची ॥  
धी एक तरफ तो दून्हा था, धीर एक तरफ तो कुमहल थी ॥  
अब दोनो मिलकर एक हुए, फिर बात रही क्या परे की ॥  
माटी का पाटी, धाग धागिन, अब मोर, पत्रन की पत्रन हुई ।

अब किस से बुझिये कौन भुआ, ओ किससे कहिये कौन मुई ॥

(नबोर)

इनकी रचनाएँ बड़ी मजीब, प्रवाहपूर्ण चुटीली और स्वाभाविक हैं। भाषा सरल और व्यक्तिवपूर्ण है।

## सगुणवाद

वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड की प्रतिन्रिया में वासुदेवधर्म का और हिगावाद के प्रतिन्रिया स्वल्प बौद्धधर्म का एक ही समय में उदय हुआ। वासुदेवधर्म का मुख्य उद्देश्य उदारता, अहिंसा और गदाचार का प्रचार तथा भगवान् परंपरा की भक्ति था। इसी के विरुद्ध रूप भागवत, नारायणी और वैष्णवधर्म हुए। बौद्धधर्म की महायान शाखा ने भक्तिमार्ग का आश्रय लिया और महामानियो ने बुद्ध की मूर्तियाँ बना कर जगह-जगह मंदिरों का निर्माण किया। इसके साथ-साथ, और कुछ दृष्टिहानकारों के मतानुसार इससे पहले ही, जैनधर्म में मूर्तिपूजा का आरम्भ हो गया था। पुराणों के अवतारवाद ने भक्तिमार्ग को विशेष प्रगति प्राप्त हुई। जगन्नाथिद स्वामी शबरदाचार्य ने ब्रह्म की व्यावहारिक सगुणोपासना का स्वीकार करते हुए भट्टसवाद का प्रतिपादन किया था। परन्तु इसमें वे भक्ति का दृढ़ आधार गढ़ा न कर सके। जयदेव ने 'गीतगोविन्द' में कृष्णलीला का वर्णन किया है परन्तु उसमें आध्यात्मिकता की विशेष छाप नहीं है।

सगुणवाद की प्रवृत्ति धारा बढ़ाने का श्रेय दक्षिण के सत्तों को प्राप्त है। रामानुज (संवत् १०७३) ने नारायण या विष्णु नाम से हरि की उपासना का उपदेश दिया। उन्होंने राम भगवान् कृष्ण की आराधना का बही उल्लेख नहीं किया। निम्बार्क स्वामी (लगभग संवत् १२५०) दक्षिण में वैष्णव-भक्ति का गद्गद उत्तर भारत में लाये। १३५० के लगभग श्री गणेशानन्द जी ने काशी में वैष्णव धर्म-प्रचार का प्रचार किया। उनके निष्य रामानन्द जी ने गारे भारतवर्ष का भ्रमण करके अपना मत फैलाया। रामानन्द ने राम को ईश्वर का अवतार माना और उनके साथ जगन्जननी सीता की आराधना का भी समावेश किया। उग मध्य राधाश्रम भक्ति का कारी प्रचार हो गया था। राम और सीता की पूजा गदाविद् राधाकृष्ण की भक्ति के ही अनुकरण में प्रचलित की गई थी। राम-भक्ति के प्रवर्धन में रामानन्द जी ने सब का अधिपति समान रूप से स्वीकार किया था।

दूसरी मध्य महाकाण्ड में विष्णुस्वामी ने वैष्णवमत के प्रचार में अधिक योग दिया। उनके उपाधितारी ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिगोचन और चम्नभ थे। चम्नभ-

चारों ने 'पुष्टिमार्ग' स्थापित किया। भगवान् के अनुग्रह पर विश्वास करने का नाम ही पुष्टि है। बल्लभ-संप्रदाय में शृंगारिचना तथा प्रेम संगीत को धारा का विशेष प्रवाह मिलता है। भगवान् कृष्ण के घमें स्वरूप की अपेक्षा उगवी प्रेमनाला को अधिक प्रधानता दी गई। इनके साथ ही गोपियों की पूजा का भी विधान किया गया। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने राधा की गोपियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान देकर उसकी प्रकृति-रूप में पूजा की व्यवस्था कर दी। विट्ठलनाथ ने ही अपने पिता के शिष्यों में से चार छोटे अपने शिष्यों में से भी चार चुनकर 'षष्टिदाय' की स्थापना की।

इस समय तक वैष्णव-भक्ति की दो दिग्विष्ट शाखाएँ हो गई थीं और हिन्दी साहित्य में इनका पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व होने लगा था। पुष्टिमार्गीय कृष्ण-बाण की धारा के छादि प्रवर्तक गुरुदासजी थे। षष्टिदाय के अन्य कवि—मन्द-दास, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, दीनानाथी गोविन्दनाथजी भी पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे। कई प्रसिद्ध सुगममान कवि भी विट्ठलनाथ के शिष्य थे।

पुष्टिमार्ग के प्रतिग्विन कृष्णभक्तों के और कई मत स्थापित हुए। इन सब के समर्थन में हिन्दी कविता मिलती है। हिनहरिवन, हरीराम ध्याम और प्रव-दास राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। स्वाधी हरिदास ने टट्टी सम्प्रदाय की नींव डाली, श्रीभट्ट कवि निम्बार्क सम्प्रदाय के पोषक थे, पदाधर भट्ट और गुरु-दास मदनमोहन गौरीय सम्प्रदाय ने सम्पन्न थे, और मीरा ने ती मधुनबाद ज्ञानमार्ग तथा प्रेममार्ग का सफुर समिश्रण करके एक नई ही पद्धति की स्थापना कर डाली।

वैष्णव भक्ति की राम-बाणधारा के प्रतिनिधि कवि तुमगीदास जी हुए हैं जो रामानन्द की गण्य-परम्परा में थे। परन्तु रामभक्ति इनकी मोहप्रिय न हो सकी, जितनी कृष्णभक्ति। बाण्य के क्षेत्र में भी तुमगी ने प्रतिग्विन कोई प्रसिद्ध कवि नहीं हुआ। कम्पदास, माधवादास शालचन्द चौलान और हृदयराम ने राम-भक्ति की परंपरा में कविता व्यवस्थ की, परन्तु वह उन कोटि की नहीं बन सकी जैसी कृष्ण कवियों की।

अपने पुण्य में हम पहले कृष्ण बाण और रामराय की गान्धर्व मिलनदास का उल्लेख करेंगे और फिर उनकी छाती-छाती दोनों पर बिचार करेंगे।

गमन भक्ति-साहित्य में दिन बियों की धरों में समानता पाई जाती है, वे हैं—(१) ईश्वर-भक्ति (२) ध्यानमार्ग (३) ईश्वर के अनुग्रह पर विश्वास (४) नाम-रूप-बोनों और (५) मूर्तभक्ति। सब का समानता सामान्य सर्वव्यापमान है। वह धर्ममा होत हुए भी जन्म में रहता है, प्रकृति जो निरमल होत हुए भी वह प्रेम का रहता है, सर्वव्यापक होत हुए भी



वह भक्त के लिए एकदेशीय बनकर लीला कर सकता है। भक्त के लिए वह सब कुछ कर सकता है। भक्त और भगवान् का व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है—चाहे वह सम्बन्ध स्वामी सेवक का हो, माता अपवा पिता और पुत्र का हो, मित्र-मित्र का हो या पति पत्नी का। भक्त को भगवान् की अपार कृपा पर विश्राम रहता है। तुलसी, मूर, नन्ददास सब ने व्यक्तिगत भक्ति का ही आदर्श उपस्थापित किया है।

निगुणिया कवियों की भाँति मगुणवादियों में भी अनन्यता पाई जाती है। तुलसी का दृढ़ निश्चय है कि राम यदि उसे दुस्कार भी दें तो उसी के चरणों में निपटे रहने में गति है, किसी अन्य में मुक्ति की प्राप्ति नहीं है। 'तुष तजि और कौन पै जाऊँ' कह कर मूर ने भी वही भाव प्रगट किया है। वास्तव में अनन्य भाव क बिना भक्ति सम्भव ही नहीं है। यद्यपि तुलसी और मूर ने राम कृष्ण के शाय अन्य अवतारों का भी वर्णन किया है और उनके प्रति भक्ति-भावना प्रगट की है, तथापि तुलसी ने राम को और मूर ने कृष्ण को जिस आसन पर बिठाया है, उसके बराबर वे किसी को स्थान नहीं देते। मोरा का अनन्य-भाव तो प्रसिद्ध ही है। भक्त अपने इष्ट को छोड़कर वैकुण्ठ का सुख भी नहीं चाहते। न केवल पुष्टिमार्गियों ने, अपितु सब भक्त-कवियों ने इष्टदेव के अनुग्रह की याचना की है और उन अनुग्रह में अनन्य विश्राम पूर्णरूप से स्वीकृत हुआ है।

भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान् मूर्त रूप धारण करके उनके मकटों का निवारण करते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है भगवान् के लीलावतारों और विग्रह-रूप (मूर्ति) की स्थापना भक्ति का आवश्यक अंग है बिना किसी मूर्त आधार के भक्ति नहीं हो सकती। हमारे भक्त कवियों ने विष्णु के राम और कृष्ण अवतार रूपों में जिन आकर्षण, सम्मोहन और मोहक की रचना की है, वह वास्तव में अत्यन्त गर्भाव, मार्मिक और अद्वितीय है। ऐसे विशद, विलसित और विभिन्न लज्ज-विभ्र सिमी अन्य माहिर्य में कहीं मिलेने। मूरदास ने कृष्ण के श्यामपत और शौकनाम्मा के अगणित मुन्दर चित्र बनाये हैं। तुलसी ने राम और लक्ष्मण की छवि का बहुत प्रशस्त वर्णन किया है। रूप का ध्यान करना वैष्णव भक्ति-मार्ग का एक विशिष्ट अंग है। मोरा, हिनहरिकश, रमयान, ललित-विशोरी, बिहारी, देव, हरिचन्द्र सब ने श्रीकृष्ण और राधा के रूप का सग्न वर्णन किया है। मगुणवादों के विवेक चिन्तनशील भक्त ही नहीं बल्कि भावना-शील कवि भी थे। उनके काव्य में आनन्दारिक्ता, कला तथा कवित्व का सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। एक बात अवश्य है कि कृष्ण-कवियों की कृतियों में राम-कवियों की अपेक्षा प्रणय की रमयाधुरी कहीं अधिक है।

नाम की महत्ता का वैष्णव कवियों ने स्वीकार किया है। राम-भक्त और

कृष्ण-भक्त कवियों ने गुरु को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। उनकी कृपा के बिना दृष्ट के दर्शन नहीं होते।

भगवान् का रूप और मीठयं भक्त के हृदय में प्रेम का सञ्चार करता है। भगवान् का रूप रति-भाव का प्राप्तम्बन है। यह रति पाँच प्रकार की होती है—सात्ति, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा और मधुरा। इसी क्रम में भक्त भी शांत, दाम्प्य, नश्य, वात्सल्य और मधुर स्वभाव के होते हैं। समूण उपामना में सात-रस अधिक मात्रा में नहीं रहता। गम-भक्तों में वहीं-वही इसके उदाहरण मिलते हैं। सुनयी में दास्यभाव की प्रधानता है। कृष्ण-भवन कवियों ने सात्ति और प्रीति को नहीं छपनाया। उनकी भक्ति अधिकतर सत्य, वात्सल्य-और मधुर भाव की है। मधुरा रति का महत्त्व सब से अधिक माना गया है। कृष्ण-काव्य शृंगार रस से भरा पड़ा है।

गीता, श्रीमद्भागवत, नारदभक्तिमूत्र और शाङ्ख्य भक्तिमूत्र में समूण भक्ति की व्याख्या बड़े विस्तार में की गई है। समूणवादियों के लिए इन ग्रन्थों में वर्णित भक्ति-पद्धति मान्य रही है, अतः नीचे नारदभक्तिमूत्र के अनुसार भक्ति के ११ प्रकार उद्धृत किये जाते हैं—

#### १. गुण साहाय्य

तोई सच्चिदानंदधन रामा । अज बिम्बान कबलपाभा (तुलसी)

सुख अनादि अविगत अनन्त गुण पूरण परमानन्द (गुरदास)

#### २. व्यापत्ति

भास बितास तिलक झलकाही ।

पीत जतौनी तिरगु मुहाई ॥ (तुलसी)

मैननि निरनि द्याम स्वदय ॥ (गूर)

#### ३. पूजासाधित

बन्दी करन सरीअ सुम्हारे । (गूर)

#### ४. स्मरणासाधित,

सुमिरिय मान कय बिनु बेले । छावन हृदय सनेह बिमेये । (तुलसी)

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो । (गूर)

#### ५. दास्यसाधित

घर के गाथ सोई उधारि । (गूर)

ऐसो हरि कजल शान पर प्रीति । (तुलसी)

#### ६. गम्यसाधित

हरि तो पीत न बैंगी कोई । (गूर)

#### ७. धामनिवेदनासाधित

जो हम भले धरे सो तेरे । (सूर)

धोर मोहि को है काहि कहिहों । (तुलसी)

■ तन्मयतासक्ति

नाहिने नाथ अथलंब मोहि छान की । (तुलसी)

मेरो मन अन्त कहाँ सुख पार्थ । (सूर)

६ परमविरहामक्ति

चकई रो छलि घरन सरोवर जहाँ न प्रेम विषोग । (सूर)

१० कान्तासक्ति

जनक जननि गिय राम प्रेम के । (तुलसीदास)

११ घागल्यासक्ति

बन्दे बासरूप सोइ रामू । (तुलसी)

मध्या भक्ति दस प्रकार है—(१) यवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वन्दन, (७) दास्य, (८) गुर्य, (९) आत्मनिवेदन ।

रागात्मिका भक्ति के प्रेमी मन, वाणी और क्रिया इन तीनों का मध्या उपांग करने के लिए मन से प्रेम, वाणी से जप और कीर्तन तथा क्रिया से रातांग करने रहने की सदैव सलाह देते हैं । गुरुकी भक्ति के लिए वैराग्य, विवेक, श्रद्धा, विश्वास आदि आवश्यक हैं ।

## राम-काव्य

राम-चरित्र का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि-वृत्त रामायण है । रामायण में इन्द्र, वासिष्ठ, मरुती, उषा, विष्णु, शिव आदि देवी-देवताओं का उत्तम मिलता है ।

राम में देवत्व की छाया भी नहीं दिमाई गई—वे मनुष्य हैं और पंगरु और मानवता की सीमाओं के भीतर विचरते हैं । 'मानवधर्मशास्त्र' में

मार्हित्य राम की विष्णु का अवतार माना गया है । इसी समय बृद्ध में ईश्वरत्व का समावेश किया जाने लगा था । हमने पहले भी

गفته कि रागावतार की भावना बृद्धमन की महायान रागा मे प्रभावित हुई थी और राम की वीरपूजा में परिवर्तन हो गई थी । 'नारायणी' में द्रष्ट देव के रूप में विशाखमान है । 'गोहिता' में विष्णु के साथ लालि का सम्बन्ध स्थापित किया गया है । रामभक्ति में दश लालि ने गोला का रूप धारण किया । राम का पूर्ण रूप गुणज्ञान में विकसित हुआ । इस समय 'विष्णु-पुराण' की जन्म हुई । परन्तु राम-चरित्र पुराणों का प्रिय विषय न बन सका । केवल 'अध्यात्म-पुराण' और 'महाभारत-समाप्त' में राम का भक्ति-भाव-मन्य-मन्य वर्णन

मिलता है। इस समय तक राम-भक्ति ने एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया था। रामानुजाचार्य की 'मह्यमोति' में श्री रामानन्द की 'रामावत-पद्धति' में राम की अनन्य और विशिष्ट भक्ति बार्दित की है।

यह तो रहा मरुतन का राम-माहिम्य। हिन्दी में तुलसी ही राम-काव्य के सम्राट् हैं। उनसे पहले भूपति (मवन् १३४५), भगवतदास और चन्द (१५-वीं शताब्दी) ने राम-चरित्र का वर्णन किया था। रामानन्द ने भी कुछ पर हिन्दी में बहने थे। परन्तु इनकी मरु से बड़ी देन बर्वाँ और तुलसीदास हैं। 'मुरसागर' में बास्मीकीय रामायण के क्रमानुसार कुछ घटनाओं को ले कर भक्ति-पूर्ण पद पाये जाते हैं।

गुल्मीदास जी की अनेक रचनाएँ हैं। इनमें 'रामचरितमानस', 'राम-ललानहृद', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावर्ण' इत्यादि में राम बया का वर्णन है।

१७ वीं शताब्दी विजयी में ही स्वामी अष्टदास, नामादास, प्राणचन्द चौहान और हृदयराम हुए हैं। स्वामी अष्टदास की बनाई 'ध्यानमन्त्र', 'कुडलिया' इत्यादि पुस्तकें मिलती हैं। नामादास के रचे हुए राममन्त्रों पदों का एक मण्ड मिलता है। 'अष्टयाम' में 'रामचरितमानस' की शैली पर राम-चरित बड़ा गया है।

प्राणचन्द चौहान का 'रामायण महानाटक' गवाड-शैली का काव्य-ग्रन्थ है। इसी शैली पर हृदयराम का 'हनुमन्नाटक' है। बंगवदास की 'रामचन्द्रिका' रीति-पद्धति के अनुसार लिखी गई है। इस में प्रबन्ध-जगदल की बनी हैं।

मधुबदास के 'रत्नगान', और 'आनखोप', मानदास का 'रामचरित्र', रामभुनास का 'कृपारामकितान', तुलसी साहब का 'चटरामायण', बयसूदन दास का 'रामावमेय', और मनियारमिह के 'मोदपनहरी', 'हनुमान-दशवर्णी' उत्तम-योग्य हैं।

१९ वीं शताब्दी विजयी में बाबा रामचरणदास, बाबा रघुनाथदास राम-मनेही और महाराज रघुनाथमिह ने कृष्णकाव्य की शृङ्गारिका में प्रभावित होकर राम-काव्य की रचना की। बाबा रामचरणदास के रचित 'अपररामायण', 'मुन्नी-रामायण', 'सोमगहिता', 'हनुमन्गहिता', 'महाराजदास', 'बौद्ध-मरु', 'महाराजोप' आदि अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। इनमें राम की विनाश-बोधा का ही वर्णन अधिक है। बाबा रघुनाथदास का 'विशय नामर' इसी प्रकार का ग्रन्थ है। महाराज रघुनाथमिह ने 'राम-रत्नकर', 'रामायण' आदि काव्य रचकर रामभक्ति-परा का बीज बोया। शताब्दी तक पड़े-पाड़े हैं।

मिह्र और निराला में शृंगार और वीररस की प्रधानता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का कर्णरस प्रमुख है।

रामकाव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है। केशव की 'रामचन्द्रिका' में वज्र-भाषा का प्रयोग हुआ है। बाद के शृंगारी रामकवियों ने भी प्रायः वज्रभाषा का प्रयोग किया है। तुलसीदास की रामकविता में वज्रभाषा का सम्मिश्रण है। उन्होंने न तो शुद्ध अवधी का प्रयोग किया है और न ही शुद्ध वज्रभाषा का। यही हाल अन्य भक्त कवियों का है। तब तो यह है कि उन्होंने परिमार्जित भाषा का स्वरूप दिखाने के लिए अपने काव्य नहीं लिखे थे।

राम-काव्य में भोजपुरी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, मल्लुत, गुजराती आदि अनेक भारतीय भाषाओं के शब्द मिलते हैं। खड़ी बोली के शब्द और मुहावरे सब में पाते हैं। 'साकेत' तो है ही खड़ी बोली में। धरवी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। तुलसी ने अनेक ऐसे शब्दों को हिन्दी की पोशाक पहनाकर भारतीय शब्दों के साथ बराबर का दर्जा दिया है।

तुलसीदास जी ने भाषा का परिष्कृत रूप उपस्थित किया है। उसमें न तो वीरगाथा-काव्य की कर्कशता है, न प्रेमकाव्य की शमीलता और न ही भगवति तथा विच्छिन्नता। तुलसी का शब्द-चयन परिष्कृतपूर्ण है। उनमें वह शब्द-चमत्कार तो नहीं जो केनव भयवा मूर में है, परन्तु उनकी भाषा की भावात्मकता, रसानुकूलता भयवा उपयुक्तता में किसी की गदेह नहीं हो सकता। तुलसी की भाषा-शैली चलकृत न हो करके स्वाभाविक, सरल और भाव-व्यञ्जक है। तुलसी की प्रतिभा इतनी उच्चकोटि की है कि उसमें अलंकार स्वयं भावानुगामी हो गये हैं। अलंकारों के लिए भावों की अवहेलना नहीं करनी पड़ी। अलंकार का जहाँ कहीं प्रयोग हुआ है कुशलतापूर्वक हुआ है। तुलसी अनुशासन की छाहर नहीं देते, उगमा और रूपक से अधिक काम लेते हैं। अन्य कवियों ने भी कई प्रकार के अलंकारों का उपयोग किया है। परन्तु इनमें केनव को छोड़कर, शब्दालंकारों की महत्त्व नहीं दिया गया।

रचना-भेद, भाषा-भेद, विचार-भेद, अलंकार-भेद के साथ ही साथ राम-काव्य में छंदभेद भी पाया जाता है। वीर-भाषाओं का छण्ड, मल्लकाव्य के दोहे, प्रेम-काव्य के दोहे-पौनर्द्वय, और इनके प्रतिरक्त कुण्डलियाँ, छोरठा, सबैया, धनाशरी, ठांवर, विभयी आदि प्रपञ्च हुए हैं। दोहा-पौनर्द्वय का मुख्य प्रयोग हुआ है। तुलसी ने इनका परिष्कारपूर्ण प्रयोग किया है। केशव ने अनेक छंदों में बसा का प्रदर्शन किया है, परन्तु उनमें भावानुकूलता नहीं है। गुप्ता ने भी छंद बरत बरत कर रचे हैं, परन्तु उनके छंदों में पूर्ण शक्ति नहीं पा पाई। मत्सरा:

छोटे-छोटे छंदों में कन्हा पकट होतो है धीर वहीं-नहीं। ऊहृष्ट छंदरचना भी मिलती है।

रामनवनि-काव्य में मे कुछ नमूने नीचे दिये जा रहे हैं—

उदाहरण—

( १ )

अवधेम के द्वार सचार गई सुत गोद में नृपति सँ निवसं ।  
अवलोकित सोच-विमोचन को ठगि-सो रही जे न टगे धिक सि ॥  
मुसली मनरंजन अंजित अजन नैन शु संजन जाति से ।  
सजनी सारी म सम सोल उर्भ नव सोल सरोरह-से बिसतं ॥

(सुसतीदास—कविनाथजी)

जगकारन तारन भव भंजन परनी भार ॥  
कीतुह् अरिस भुवन-यनि सीन्ह मनुज-अवतार ॥  
कोमलेन हमरस के जाये । हम पितु-बचन मानि बन भाये ॥  
नाम राम लछिमन बोल भाई । संग नारि सुकुमारि मुहाई ॥  
इहो हरी निमित्तपर बंहेही । बिप्र फिरहि हम खोजत तेही ॥  
पापन धरित कहा हम नाई । बहहु निप्र निज कथा बुझाई ॥  
प्रभु महिषानि परेउ गहि बरना । सो मुन उमा जाइ नहि बरना ॥  
पुनरित तन मृत आव न बचना । बैलत हरि रंघ के रचना ॥

(सुसतीदास—रामचरितमानस)

सुसतीदास का हिन्दी महाकाव्य में बड़ी स्थान है जो महर्षि वाल्मीकि का संगठन में। गोस्वामी जी हिन्दू-मंदिरों के पूरे प्रतिनिधि तथा परिवर्धक हैं। धारण सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक तथा वैयक्तिक सभी प्रकार की दशाओं का गहन विवरण दिया है। धारणी दृष्टि अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् दोनों की ओर मुख गई है। भक्ति, ज्ञान, प्रेम, माया, वैराग्य, ब्रह्म, मन्मथ भादि का बहूत अष्टांग स्पष्टीकरण धारण किया है। धारणी भाषा, वाक्य-रचना, शब्द-विन्यास और वर्णन-शैली सभी सुन्दर और स्वच्छ है।

( २ )

पहरे राम तुम्हारे सोवत । मे अनिमंठ अंध नहीं जोवत ॥  
अरमारण मारण महि जान्यों । इंडी पोरि कुरगारथ मान्यों ॥  
भीरनि के बल अरत प्रकार । अररदाम के राम अपार ॥

(अररदाम)

मान की बलिगा धी नरदाम की सेनी की है धीर उनमें प्रबलभाषा की हो पूरी प्रपानता है। इनके शिष्य नामादास भी प्रबलभाषा में राम-भक्ति-रचिना

लिखते थे। इन दोनों की पद्यरचना में एक ही शैली और निपुणता पाई जाती है।  
( ३ )

ए हो हनु ! बहो धीरधुर धीर कछु सुधि है सियकी द्रिष्टि माँहो ?  
है प्रभु संक कलंक बिना सुखसँ तहँ रावन बाग की छाँहो ।  
जीवति है ? कहिबेई को नाथ, सु बयो न मरी हमतँ बिछुराही ?  
प्राण बसँ पदपंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं ॥  
(हृदयराम—हनुमत्पाठक)

हनुमान-भक्ति का सकेत रामानन्द और तुलसीदास में मिलता है। उनका मतव्य है कि राम-भक्ति हनुमान जी के प्रसाद से ही प्राप्त होती है। हृदयराम ने सस्कृत के हनुमत्पाठक की शैली पर ही अपने प्रथम रचना की। इनके बाद राममल्ल पांडे ने 'हनुमान चरित' नामी एक काव्य लिखा किन्तु हनुमान जी का चरित निम्न की प्रणाली बहुत आगे नहीं चल पायी। हाँ, मुक्कन अवश्य लिखे गये।  
( ४ )

बेहि धंवर राज तो कहँ मारि बानर-राज को,  
बाँधि बेहिं बिभीषनहि धर कोरि सेतु समाज को  
पूज आरहिं अक्षरिपु की पाये सार्गहि वर के  
सीय को तब देहु रामहि पार जाय समुद्र के  
(केशव—रामचंद्रिका)

बहा कुंभबर्णों कहा ईंद्रजीतो,  
करँ सोइबी बा करँ मुँद भीनो ।  
सु जो लौं जियोँ हौं तवा दास तेरो,  
तिपा को सकँ सँ भुनो मंत्र मेरो ।  
हनों राम स्वों बंधु सुखीव मारी,  
अयोध्याहि ले राजपानी सुपारी ॥  
(केशव—रामचंद्रिका)

केशवदास की प्रतिभा बहुमुगी थी। उन्होंने कई शैलियों में कई प्रकार की रचनाएँ की हैं। 'रामचंद्रिका' में आने विविध छंद-रचनानैनी का शारणीय और पाठित्यपूर्ण नमूना दिया है। यह प्रबन्ध-नाट्य भी है मुक्कन भी है। इसके गवाद, इसी वर्णनशैली जानदार है। हाँ, बघावों के सम्बन्ध-निर्वाह में बहो-बहो निपुणता आ गई है। केशव का शब्द-कीर्तन, अमर-पानुपं और वार्त-वार्त प्रगट है।  
( ५ )

अपु बिजल धनि पवनसुमररा । सगे करन तब हृदय विचारा ॥

यह धर्मीय बालक हर जोरा । अब न चलें कछु बिचम मोरा ॥  
 मैं सब भीति भयों बेहाला । कहि विधि उबरहुं रण बिकराला ॥  
 भानि जाहुं जो समर बिहाई । तो प्रभु अप्र साख अपि काई ॥  
 बहहि सबत-जन करि उपहामा । भजे मस्तमृत बालक त्रामा ॥

(मधुसूदनदास—रामाश्रमेप)

इनकी गीतों 'रामचरित-मानस' के ढंग की हैं । दोहे-चौपादों के बीच में कहीं-कहीं गीतिका आदि दूसरे छंद भी आये हैं । इनकी भाषा भी प्रायः प्रबधी है । मायकों के शीलगुण भी इन्होंने तुलसीदास जी के समान रखे हैं । इनकी कविता शक्ति और प्रबन्ध-कुशलता प्रशंसनीय है ।

( ६ )

प्रसन्न बानी रीझ अट्ठहाम किलकारि,  
 सलकारि हाँक मानो काल घटा पहरात है ।  
 मँक जाँरि ठाढ़े सिन्धु तट के निबट,  
 कोटि-कोटि बिजु छटा छहरात है ।  
 पार कहं प्रातःकाल बार-रवि मइल,  
 बिगल मुख-मँइल ठबनि ठहरात है ।  
 तामे जोति ज्वाल जाल माल की लपट भरी,  
 काल कँमी जीम पुँछ सास सहरात है ॥

(मनिपारमिंह—मुन्दरकांड)

यह एक अच्छे कवि की रचना है । इनकी भाषा सानुग्राम और मिष्ट व्रज-भाषा है जिसमें संस्कृत शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है 'गौदयेंनहरी' और 'मुन्दर कांड' की ऐसी रामायण के अनुसार रची गई है । रीतिबद्ध में अनेक कवियों ने संगृह्य में अनुवाद करके अपना स्वतन्त्र रचना करके रासबाण्य की ग्लानाधिकः धीवृद्धि की है, परन्तु माहिरियता बहुत कम में आ पाई है ।

( ७ )

अनल उबड़ को प्रजाप मय-संड द्वायो,  
 ज्वाला बंड मानो जलुख केरं जाय-जाय;  
 पुरी न लखान कथातमार्ग हरगतिन एव,  
 लोहिण दयोपि भयो द्वाजा एक द्वाय-द्वाय ।  
 देखना भूनीत मिठ बारण घंघरं जेने,  
 मानि भगवान् बेवि द्योम घोर आय-वा-  
 रंनि रामराज हेन बीगरी मँक लाय ताय,



घाय भरे घले कवि राय यश गाय-गाय ॥

(म० रघुराजसिंह)

महाराजा रघुराजसिंह जी ने अनेक विषयों पर कविता लिखी है जो बहुत विषाद और मनमोहिनी हैं। इनका रामायण उत्तम ग्रन्थ है। इसमें छंदों की छटा और अनुप्रास दर्शनीय है, तथा युद्ध, भूमया और भक्ति के वर्णन सुन्दर हैं। इनकी भक्ति दाय-भाव की रही है। इनकी कविता में कहीं-कहीं तुलसी की छाप भी लक्षित होती है।

( = )

“ यह घोर क्या कहने छला ?  
 यह घरे, क्या चाहिए तुझ को भला ? ”  
 “जनकपुर की राज-कुञ्ज-विहारिका,  
 एक सुकुमारी सलोनी सारिका !  
 देख निज निज सफल लक्ष्मण हूँसे,  
 उर्मिला के नेत्र संजन से फँसे।  
 “तोड़ना होगा धनुष उस के तिए”  
 “तोड़ जाता है उसे प्रभु ने प्रिये ॥”  
 “सुतनु, दूटे का भला क्या तोड़ना !  
 वीर का है काम दाढ़िम फोड़ना !  
 होड़ दोतों की सुहारे जो करे,  
 जन्म निमिता या धयोप्या में घरे । ”

(संमिलीतरण गुप्त—सारेत)

भाषुनिक नाम की राम-वविनाशो में ‘सारेत’ धरयन्त प्रसिद्ध है—परन्तु इसमें राम और सीता का वर्णन अधिा न हो करके लक्ष्मण और उर्मिला का वृत्तान्त है। इसमें भक्ति भी नहीं है।

कृष्ण-बाध्य

वेणुज माहिर्य में कृष्ण-बाध्य का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। महाभारत के कृष्ण राजनीतिज्ञ और नीतिनियामक नेता हैं। वे राधा और गोपियों के प्रिय नायक नहीं हैं। महाभारत में तो राधा का नाम तक नहीं आता। पुराणों में कृष्ण को ईश्वरत्व प्राप्त हुआ है, लेकिन प्रायः पुराणों में राधा का नाम नहीं मिलता। कृष्णभक्ति के प्रसूत आचार श्रीमद्भक्त-रसक तब से राधा का बोर्ड स्थापित करने लगे हैं। हाँ, एक गोपी का निर्देश

अवश्य है जिमने पूर्वे जन्म में भी कृष्ण की आराधना की। 'आराधना' शब्द में ही 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति हुई। कृष्णभक्ति में राधा का स्थान प्रधान है। निम्बाक तथा विष्णुस्वामी सम्प्रदायों में कृष्ण का ब्रह्मत्व और राधा की विशिष्टता स्वीकार की गई है। धागे चलकर गौड़ सम्प्रदाय की राधा-वल्लभा शाखा और निम्बाक सम्प्रदाय की मगी दामा ने राधा को अधिक महत्व दिया। निम्बाकों में सस्कृत के प्रसिद्ध गीतिकाव्य 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव ने राधा-कृष्ण-विहार के गीत गाये हैं। यही गे हमारे साहित्य में कृष्ण-भक्ति का आरम्भ होता है। हिन्दी में वैष्णव साहित्य के जन्मदाता विद्यापति हैं। परन्तु उनकी कविता में जयदेव के भौतिक प्रेम की छाप स्पष्ट है। इनमें ईश्वरीय अनुभूति की भावना घटती भक्ति नहीं मिलती। राधा-कृष्ण का प्रेम भौतिक और वामनामय प्रेम है। पालोचरण इस भौतिक शृंगार में भले ही आध्यात्मिकता का संकेत मान लें पर राधा का जीवन-विवरण, उसकी वयःगन्धि, कृष्ण से मिलन, मान, विरह आदि इस दृष्टि से लिखे गये हैं कि इनमें भक्ति की प्रेरणा नहीं हो सकती। वैष्णव भक्ति की शाखों धारा दक्षिण में बहती हुई आई और इसका प्रचार सब गे अष्टादश शताब्दी में बनारस महाप्रभु ने और उत्तर भारत में बल्लभाचार्य ने किया।

हिन्दी में कृष्ण के पावन चरित्र में भक्तिभावना के गाम्भीर्य का समस्त धर्म बल्लभाचार्य की है क्योंकि इन्हीं के चमत्कारपूर्ण पुष्टिमात्रों में दीक्षित होकर गुरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-नाम्य की रचना की। कृष्ण-भक्त कवियों की गव्या दानी अधिक है कि मनी, प्रेममागियों और गम-कवियों को मिला कर भी उतनी नहीं है। संतनाम्य में बबीर, प्रेमनाम्य में जायसी और राम-नाम्य में तुलसी प्रथम सब पर छा गये हैं; परन्तु कृष्ण-नाम्य में गूर, नन्ददास, भीराबाई, हरिहरिदास, गगनाल, गलाकर आदि अनेक प्रसिद्ध कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

इसी संदर्भ पर हम काव्य-रस के अनुसार विचार करेंगे।

### भक्तिपूर्ण कृष्णकाव्य

भक्तिभाव की अनन्य कृष्ण-गम्भीर रचनाओं में निम्नलिखित उन्नेत-योग्य हैं—

प्रमुख रचनाएँ, गुरदास—'गुरदास', 'भक्तगीत'।

नन्ददास—'राम पञ्चाध्यायी', 'भक्तगीत', 'गुलामा चरित'  
हरिहरिदास।

कृष्णदास—'प्रेम-सत्त्व-निष्पन्न', 'अमरगोत' ।

परमानन्ददास—'परमानन्द सागर' ।

कुमनदास—फुटकर पद ।

चतुर्भुजदास—'द्वादशयज्ञ', 'भक्ति प्रताप' ।

छोत स्वामी—फुटकर पद ।

गोविन्द स्वामी—पद ।

हितहरिवंश—'हित बीगमो' ।

ध्रुवदास—रगरत्नावली, व्रजलीला, वनविहार, रमविहार, आदि ४० ग्रंथ ।

गदाधर भट्ट—अनेक ग्रंथ ।

गुरदास मदनमोहन—फुटकर पद ।

मीराबाई—'नरमी वा मायरा', 'गीतगोविन्द टीका', 'राग गोविन्द',  
'राग गोरठा के पद' ।

स्वामी हरिदास—पद और बानी ।

श्रीमट—'सुगन नाटक', 'आदि बानी' ।

हरिराम ध्याम—'रागपञ्चाध्यायी', 'पद' ।

रंगमान—'प्रेम वादिया', 'सुजान रंगमान' ।

ध्रुवदास—'रगरत्नावली', 'रहस्य मजरी', 'रंग विहार', 'मजन'  
आदि अनेक ग्रंथ ।

X

X

X

X

कृष्ण-बाण में वैयक्तिक और साम्प्रदायिक संतियों के किन्ने ही भेद मिलते हैं ।  
१—अष्टदास के कवियों का उत्सर्ग हम पहले कर चुके हैं । इन्होंने कृष्ण के  
अनुग्रह (पुष्टि) की प्राप्ति के लिए भक्ति का प्रतिपादन किया है ।  
बाण्य-सीली गोपीजनो ने अपने प्रेम में कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया था, इस  
लिए भक्तों को गोप-गोपियों के कृत्यों का ही अनुकरण करना  
चाहिए । अष्टदास के कवियों में गुरदास और नन्ददास की कविता उच्चकोटि की  
है । इनके धार्मिक पुष्टिमानों के अनुयायियों में रंगमान का नाम कृष्ण-गाथियों  
में प्रमुख रहेगा ।

२—हितहरिवंश, हरिराम ध्याम और ध्रुवदास राधाकल्याणी साम्प्रदाय में थे ।  
इनके मन में राधाकृष्ण की सुगन मूर्ति की भक्ति आदर्श भक्ति है । इन्होंने राधा-  
कृष्ण की विगुप्त शृंगार-केलि का मर्म वर्णन किया है । इन्होंने राधा का महत्त्व  
कृष्ण में भी धार्मिक माना है और राधा के दिव्य शृंगार का मोहक वर्णन किया है ।  
राधा का रूप धार्मिक रमय तथा मोहक बन गया है ।

३—निम्बार्कमठानुयायियों में स्वामी हरिदास और श्रीमट जी प्रसिद्ध हैं ।

मोगवाई की भक्ति-भावना स्वतः होती थी, फिर भी उस पर निम्बाकं मन का प्रभाव स्पष्ट है। निम्बाकं के मन में वाग्देवता कृष्ण प्रकृतिरूप गंधा के साथ उपास्यदेव है। ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी कृष्ण के चरणकमलों की प्रागधना करने हैं। गमयन जीव उनके आश्रित है। जो भक्त उनके निवास, स्वरूप, कृपा और प्रमोद को जानते हुए उनकी चरण में आते हैं, उन्हीं को कृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है।

४—गौडीय सम्प्रदाय के संस्थापक श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में गदा-धर भट्ट और गुरदास मदनमोहन हुए हैं। इन्होंने गोवर्ण कृष्ण की प्रागधना पर और दिया है और उपासना तथा पूजा की प्राधान्य न देकर कृष्ण-सीमा तथा नाम-कीर्तन का प्रचार किया है।

इनके प्रतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के मिथान्त भी हिन्दी काव्यों में मिलते हैं, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनका महत्त्व अधिक नहीं है।

मोरा और रमगान के अलावा बहुत से कवि ऐसे हुए जिनमें किसी भगवान का प्रागध नहीं है।

एक-दो आक्षेपक बातें यहाँ करना चाहें हम कृष्ण-काव्य का समष्टिरूप में व्यवहार करेंगे। पहली बात यह है कि मिथान्तों में गूनाधिक अन्तर रहने हुए भी सब से गुरदास के काव्य का अनुसरण किया है और सब ने 'पुष्टि' पर अपनी धारणा प्रगट की है। दूसरी बात यह है कि कृष्ण और वज्रभूमि के मोदक और इनके प्रति प्रेम का वर्णन सब सम्प्रदायों में मिलता है। सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण के राग और प्रहृति की सीमा का विवरण किया है, भोग का स्थान इन सब में समान है। उगने कृष्ण-सीमा की अवस्था कृष्ण के प्रेममय स्वरूप का वर्णन किया है। वह राधा की बीच में नहीं नाई। वह स्वयं राधा-रूप थी।

भक्त कवियों ने कृष्ण का यह मनोरञ्जक रूप उद्भिन्न किया जो बाण-संगीत करने वाला और मीरिकासी की गीताने-गिताने वाला था। गम-भक्तों ने तो गम के मोहग्रस्त रूप को ही हृदयगत किया था। कृष्ण का मोहग्रस्त रूप भी अत्यन्त है जिसकी अभिव्यक्ति महानारण में हुई है, जो पूतना-महार, बर्बा-गुर-वध, बग-नाथ आदि से दीप्त पड़ती है, परन्तु कृष्णभक्ति के हिन्दी कवियों ने उस और बहुत कम ध्यान दिया है। महानारण का मोहित, बीर कृष्ण हिन्दी काव्य में नहीं है—यह है मोदक की प्रति और प्रेम का प्रतीक गंधाधन्य, गोती-नाथ रूप। मुझे है कि रमगान भवे-प्रथम चिन्ती ने यह सुझाव कि श्रीकृष्ण उनकी प्रेम्मी से कहीं अधिक सुन्दर है, अन्तर्गत की और धारण हुए से। कृष्ण के वाक्य की चिन्तन भक्ति का आनन्दक अंग समझा गया है। धामे वाक्कर राधाकृष्ण के साथ पर राधा-आदिवा-भेद की मूर्ति भी होने लगी। भक्तिमान

में हो राधाकृष्ण की शोभा को लेकर नयनसिन्धु-वर्णन की प्रथा भी चल पड़ी थी। श्रीकृष्ण के राम का आधार लेकर ऋतु-वर्णन भी प्रारम्भ हो गया था। वैसे तो मूर ने भी स्थान-स्थान पर नायिका-भेद दिया है, और ऋतु-वर्णन भी किया है, परन्तु रीति-कवियों की भांति नहीं।

वैसे तो साकार उपासना में रहस्य की सम्भावना नहीं है पर कहीं-कहीं मगुणवाद में निर्गुण की ओर भी धारमा की प्रेरित किया गया है अथवा प्रतीकवाद था गया है। मीरा में रहस्यवाद स्पष्ट है। इन पंक्तियों की कवीर और जायसी के रहस्यवाद से तुलना करनी चाहिए—

सूखी ऊपर मेज हमारी किस बिधि सोना होई ?

गगन मण्डल पे सेज पिया की बिभ बिधि मिसना होई ?

(मीरा)

मूरदास ने अपनी रहस्यात्मक अय्योक्तियों में चर्चई, भक्ति, भृङ्ग और मुक्ते की मन्वीष्य किया है। ये सब धारमा के प्रतीक हैं। इस प्रकार के रूपक अनेक कवियों में मिलने हैं। राधाकृष्ण हमारे मगुण काव्य में प्रकृति और ब्रह्म, अथवा शरीर और आत्मा के प्रतीक-भाव हैं। मोक्ष और मयूरा अनादि जीवन के दो साक्षात्कार और-द्वार हैं। श्रीकृष्ण की मूर्त्ति 'योगमाया' है। इस मूर्त्ति की ध्वनि से गोपिका स्त्री आत्माओं का आह्वान होता है। मोक्ष सहस्र गोपियों में श्रीकृष्ण ऐसे हैं जैसे अमर्त्य आत्माओं के बीच में परमात्मा। मन्ददास की 'रामपञ्चाध्यायी' में इस विषय की सख्य दृग से गमनाया गया है।

कृष्ण-भक्त-कवियों में रामभक्तों की अपेक्षा तन्मयता अधिक है, उनमें प्रेमानुभूति की मात्रा भी बहुत अधिक है। इसी कारण इस परम-भाव की भक्ति का बाहुल्य भक्त-काव्य में प्रगट हुआ है। प्रबन्ध काव्य के उपयुक्त यह भक्ति-भावना नहीं है। इस जगह यह भी दोहरा देना आवश्यक है कि राधाकृष्ण की भक्ति कई रूपों में प्रकट हुई है। मूर की भक्ति मया-भाव की है तो मीरा की दाम्पत्य भाव की। इनके अनिरक्त दाम्पत्यभाव और आत्मन्य भाव की भक्ति के समूह भी मिलने हैं।

राधाकृष्ण के बाल और जीवन तथा गोपियों के विग्रह-विषय के वर्णन के अनिरक्त कृष्ण-काव्य में ध्यात्म-निवेदन और विनय, मृदु-प्रसंगा, प्रकृति, नीति, उपदेश आदि अनेक विषयों पर रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

कृष्ण-भक्ति में दो रंग प्रधान हैं—वाग्यन्य और शृंगार। वाग्यन्य वाग्या-वरमा का और शृंगार यौवनावस्था का रंग है। वाग्यन्य के क्षेत्र में तिनो मना-बैसाविषया मूर की प्राप्त हुई हैं उतनी ओर हिमी कवि को नहीं। वे वाग्य के गहन में गहन कार्य को सामक बन कर वर्णन करने हैं। माँ और बच्चे की मृदु

भावनाओं और प्रवृत्तियों का स्वाभाविक चित्रण मूर में दृढ़कर किंगो हिन्दी बचि ने भाव तक नहीं किया। भावन चोरी में, भ्रमाओं के माय खेन-बूद में, लहार्-प्रगटे में, यपोदा की सिवायता का उत्तर देने में, माना द्वारा दक्षित विमै जाने में इत्यादि अनेक परिस्थितियों में बालकृष्ण के लौकिक आचार का ठीक-ठीक और मजीब चित्रण मूर ने ही किया है। ध्यान जी का बाल-नीला-वर्णन भी उल्लेख है।

शृंगार-रस कृष्ण-नायक का सर्वप्रधान रस है। इसका प्रवाह अन्य सब रसों का प्रतिबलन करके स्वर्णीय रूप से रहता है। छोटी प्रवस्था में ही कृष्ण गोपिका के साथ शृंगार-बीड़ा करने दिताई देते हैं। राधाकृष्ण की प्रेम-बहानी का विकास प्रपञ्च वर्णन प्रायः सब कवियों ने किया है। शृंगाररस के अन्तर्गत जिनने भी सवारी भाव होने हैं वे सब कृष्ण-नायक में चित्रित किये गये हैं। कृष्ण का रति-भाव, गोपिकाओं का आत्मस्वन, कृष्ण-शोभा का उद्दीपन कृष्ण-गोपिका-मिलन में स्वेदकण्ठ और रोमाञ्च का अनुभव, मोह और चपलता के गचारी भाव-मभी शृंगाररस के महायुक्त उद्दिष्टन किये गये हैं। रस की इनकी व्यापकता नहीं कम ही मिलती है। मयोंग और वियोंग दोनों प्रकार के शृंगार का साहित्यिक वर्णन कृष्ण-नायक में मिलता है। अमर-गीतों में विरह-वर्णन अत्यन्त भावार्थक है। रस वर्णन में प्राचीन परंपरा का पालन किया जाता है और स्थान-स्थान पर उपासम्भ के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। हिन्दी में सर्वोत्तम विरह-वर्णन मूरदास का है। अल्बि यह कहने में अत्युक्ति नहीं है कि विरलम्भ का जैसा वर्णन 'गूरदास' में है वैसा ममार के किसी भाहित्य में दुर्लभ है। मारा का विरह-निवेदन सब में अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि वह स्त्री के जाने ही हृदय का उद्गार है। मिलन के वर्णन में गोल्ड-रतिबीड़ा केरि, विनाय, राग, छेद-छाद आदि की ध्वजना भी आवश्यक हैं। शुभ-शुभ के कुछ कवियों में वागता की गामपी रहते हुए भी अन्तर्लपता नहीं जाने पाई और गणकृष्ण आराध्य बने गये हैं। बाद के कवियों के हाथमें श्रीकृष्ण और गणकृष्ण नायक-नायिका बन कर गये हैं और आगे जाकर मन्मथ-मीरा, शिरगिरी, बेगमों की वह पाग बजाई गयी जो रीतिराज में शृंगारिणी नदी-नालो के जल में उमड़ दिवनी।

पद्म-शयना में शान्त-रम की मूर्ति हुई है । हाथ का देखने योग्य धारी-  
जिह्वा-आकार, अद्भुत-रम की मूर्ति का गायन हुआ है । हाथ धीरे-धीरे-  
रम गीत में मिलते हैं । अमर-गीतों में गीतों के अन्तों में हाथ का सुन्दर  
गान-रम है । नन्दारम जी का "अद्भुत-रम" हाथ-रम की मूर्ति में गान हुआ  
है । "गुण-गान" में शीत-रम के अन्तर्गत उदाहरण है । सब गीत यह है कि हाथ-  
रम के अन्तर्गत उदाहरणों में सब रमों की गान-गीत मिलती है, पर वे गीत

रंगों का चित्रण अधिक उपयुक्त, सुन्दर और स्वाभाविक है ।

कवि का मुख्य धर्म है विषय की तल्लीनता । इस दृष्टि से कृष्ण-माहिन्त्य उच्चकोटि का साहित्य है । इसमें भावों का जितना सूक्ष्म, सजीव और रसानुबन्ध चित्रण हुआ है उतना कहीं और सुलभ नहीं है । मूर, नन्ददाम, भीरा और रम-गान की भी सहृदयता, सरसता और तल्लीनता कृष्ण-काव्य में ही नहीं, विन्य-साहित्य में भी आदरणीय रहेगी ।

सत्कालीन कृष्ण-काव्य एकमात्र व्रजभाषा में लिखा गया है । जिस प्रकार राम की जन्मभूमि की धवली भाषा राम काव्य के लिए उपयुक्त हुई है, इसी प्रकार कृष्ण की व्रजभूमि की भाषा कृष्ण चरित्र की व्याख्या के लिए प्रशिया समर्थ हुई है । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के बाल और किशोर जीवन में कोमल भावनाओं का साक्षात्कार होने के कारण व्रजभाषा जैसी खलित और भूमिपुत्र भाषा ही उनके चित्रण में योग दे सकती थी । मारे कृष्ण-साहित्य में एक ही भाषा के प्रयोग के कारण उसका भसी भावि परि-भार्जन और परिष्करण हो सका है । व्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने में मूर का बहुत हाथ है । उस समय तक अधिवाश साहित्य राजस्थानी लड़ी बोली भयवा धवली में लिखा गया था । मूरदास ने साधारण बोलचाल की व्रजभाषा लेकर अपनी सब से पहली साहित्यिक रचना वा माध्यम बनाया । उसमें संस्कृत पद भी हैं, परन्तु बहुमात्र से नहीं । उसमें ठेठ शब्द भी आये हैं पर उसकी साहित्यिकता निश्चित है । मूर के लिखने का ढंग पाण्डित्यपूर्ण है । अन्य अष्ट-छाप के कवियों ने भी शब्द व्रजभाषा का प्रयोग किया है—अम्बल नन्ददाम 'जड़िया' ने अपनी भाषा को तद्भव शब्दों में अधिक अलङ्कृत कर दिया है । भीरा की भाषा में वह एकरूपता नहीं है जो व्रजभाषा-कवियों में है । भीरा का जीवन मारवाड़, मेवाड़, गुजरात और व्रज में व्यतीत हुआ था, इस लिए उनकी भाषा में राजस्थानी का छूट है । फिर भी भाषा का स्वरूप व्रजभाषा ही रहा है । रमगान की भाषा अधिक सरल है—सरसता में वह मूर और भीरा की बराबरी कर रही है ।

दूसरे काल की भाषा-शैली की यह विशेषता है कि भावों का स्पष्टीकरण सीधे और स्पष्ट ढंग से किया गया है । अर्थ को छिपाने भयवा उक्ति में कृत्रिमता माने का प्रयत्न नहीं किया गया । रमगान को ही ले लें । चाहे उनके समय में कविता को अनुरूप करने की प्रवृत्ति छाने लगी थी, फिर भी वे कृत्रिम भयवाओं पर नहीं गिरे । अन्तराल के बिना ही इन कवियों के चित्र सजीव और सुन्दर हैं ! जहाँ कहीं अन्तराल पाये हैं, वे स्वाभाविकता को बढ़ाने हैं । उपमा और दृष्टान्त वा उपयोग भावों को अधिक सरल बनाने के लिए किया गया है ।

कृष्ण-कवियों की कविताओं का एक और लक्षण है उनका संगीत । बहुत से भक्तों ने यह ही जिने हैं जिनको वे मूर्ति के आगे गाते थे । गुरुदास और भट्टदास के अन्य कवियों के यह प्रसिद्ध हैं । संग के गीत आज भी घर-घर गाये जाते हैं । रंगमान के संगीत का प्रवाह भी अनुठा है । नंददास और तुलु दूमेरे कवियों में रोना, दोहा आदि का प्रयोग भी किया है और गुरुदास ने भी रोना और गोताई जिने हैं; परन्तु कृष्ण काव्य में राग-रागनियाँ ही अधिक हैं ।

प्राचीन कृष्ण-काव्य के उदाहरण—

उदाहरण

( १ )

मंया में न चरहों गाइ ।

तिगरे ज्वाय पिरावत भो गो मेरे पाई पिराइ ।

जो न पराहाहि नुछ बलबार्हि छरनी सीह रिपाइ ॥

में पठवति अपने मरिवा कूँ छावें मन बहराइ ।

“ गुर ” द्याम मेरो धनि बालक भागत ताहि रिगई ॥

(गुरुदास)

बिन गुणाय बंनि भई कुंने ।

नव में तना लगनि धनि गोलन, छव भई विरम उराय की पुंने ॥

बुधा बहनि जमुना, नग जोलन, ब्या कमल पल्ले, धनि गुंने ।

पवन, पानि, धनगार, मर्मावनि, बधिमुन-जिरन भानु भई भुंने ॥

गू रूपी । कष्टिओ मापव गो, बिरह बरह बर भागन भुंने ।

गुरुदास शत्रु की भग जोहनि, छेनिवा भई बरन उयो गुंने ॥

गुरुदास जी की कृष्ण कविता मरोंगुष्ट है और दुस कविता में भक्ति का गुण सर्वप्रधान है । भक्ति के माध-माध इन्होंने मानव-वृत्ति, प्रवृत्ति और मगार के अनुभवों का जिनके प्रदर्शन किया है । वान-मीच्छ, मात्स्य-मीच्छ, माध-मीच्छ, भागा-माधुने और प्रभाकृष्णता इनकी कविता के विशेष गुण हैं । इनकी भक्ति वागम्य, मग्य और मग्यभाव की है । इन्होंने राम, कृष्ण और विष्णु की पूजा की भाती है ।

‘ गुरुदास ’ की प्रेरणा देने की श्रीमद्भागवत से है, परन्तु की अन्त में गुरु-दास की वाच्यता और अन्त में है । कृष्ण की वाच्यता में वाग-मग्य और अमर्त्यता (मोक्ष-विरह-वर्णन) में गुरुदास-ग्य की अन्त में वाग-मग्य है ।

( २ )

इसके की दरदर, मनो बलबार्हि ।

बय मंज नःबय, नव गुन धारणी ॥



रंगों का चित्रण अधिक उपयुक्त, सुन्दर और स्वभाविक है ।

कवि का मुख्य धर्म है विषय की तन्मीनता । इस दृष्टि से कृष्ण-माहिन्त्य उच्चकोटि का माहिन्त्य है । इसमें भावों का जितना सूक्ष्म, सजीव और रसानुबन्ध चित्रण हुआ है उतना वही और सुखम नहीं है । मूर, नन्ददास, मीरा और रम-गान की भी सहृदयता, सरमता और तन्मीनता कृष्ण-काव्य में ही नहीं, विरह-माहिन्त्य में भी आदरणीय रहेगी ।

तत्कालीन कृष्ण-काव्य एकमात्र व्रजभाषा में लिखा गया है । जिस प्रकार राम की जन्मभूमि की अवधी भाषा राम काव्य के लिए उपयुक्त हुई है, इसी प्रकार कृष्ण की व्रजभूमि की भाषा कृष्ण चरित्र की स्थापना के लिए प्रजिया समर्थ हुई है । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के बाल और किशोर जीवन में कोमल भावनाओं का साक्षात्प होने के कारण व्रजभाषा जैसी ललित और श्रुतिमयूर भाषा ही उसके चित्रण में योग दे सकती थी । मारे कृष्ण-माहिन्त्य में एक ही भाषा के प्रयोग के कारण उसका भली भाँति परि-भाषन और परिष्करण हो सका है । व्रजभाषा को माहित्यिक रूप देने में मूर का बहुत हाथ है । उस समय तक अधिवास साहित्य राजस्थानी राठी बोली अथवा अवधी में लिखा गया था । मूरदास ने माधारण बोलचाल की व्रजभाषा लेकर अपनी मध में पहली माहित्यिक रचना का माध्यम बनाया । उसमें संस्कृत पद भी हैं, परन्तु बहुतायत से नहीं । उसमें ठेठ शब्द भी आये हैं पर उसकी माहित्यिकता निश्चित है । मूर के लिखने का ढंग पारिडत्यपूर्ण है । ग्रन्थ अष्ट-श्लोक के कवियों ने भी कुछ व्रजभाषा का प्रयोग किया है—अन्वत् नन्ददास 'जहिया' ने अपनी भाषा की तनुभक्त शब्दों में अधिक प्रयत्न कर दिया है । मीरा की भाषा में वह एकरूपता नहीं है जो व्रजभाषा-कवियों में है । मीरा का जीवन माग्वाह, मेवाह, गुजरान और व्रज में व्यतीत हुआ था, इस लिए उसकी भाषा में राजस्थानी का पुट है । फिर भी भाषा का स्वरूप व्रजभाषा ही रहा है । रमगान की भाषा अधिक सरल है—सरमता में वह मूर और मीरा की सरादरी कर रही है ।

इन काल की भाषा-जीवी की यह विशेषता है कि भावों का स्पष्टीकरण मीध और स्पष्ट ढंग से किया गया है । अर्थ को छिपाने अथवा उक्ति में कृत्रिमता आने का प्रमाण नहीं दिया गया । रमगान को ही ले लें । आदि उनके समय में कविता को अलङ्कार करने की प्रवृत्ति आने लगी थी, फिर भी वे कृत्रिम अलङ्कारों पर नहीं रीते । अलङ्कारों के बिना ही इन कवियों के चित्र सजीव और सुन्दर हैं । जहाँ वहीं अलङ्कार आये हैं, वे स्वाभाविकता को बढ़ाने हैं । उपमा और दृष्टान्त का उपयोग भावों को परिष्कृत करने के लिए किया गया है ।

कृष्ण-कवियों की कविताओं का एक और लक्षण है उनका मंगीत । बहुत से भक्तों ने पद ही लिखे हैं जिनको वे मूर्ति के भागे गाते थे । मूरदास और चण्डिका के अन्य कवियों के पद प्रसिद्ध हैं । मोंग के गीत छात्र भी घर-घर गाये जाते हैं । रंगमान के मंगीत का प्रवाह भी धनूछा है । नंददास और कुछ दूसरे कवियों ने रोना, दोहा आदि का प्रयोग भी किया है और मूरदास ने भी रोना और चौपाई लिखे हैं; परन्तु कृष्ण काव्य में राग-रागिनियाँ ही अधिक हैं ।

प्राचीन कृष्ण-काव्य के उदाहरण—

उदाहरण

( १ )

धंया में न चरंहीं गाढ़ ।

सिगरे ग्वाल घिरावत जो सों मेरे पाई पिराई ।

जो न परवाहि पूछ बलदागहि अपनी सौह दिवाइ ॥

में पठवति अपने सरिका कूं धारं मन बहराई ।

" मूर " ध्याम मेरो अति बालक भारत ताहि रिगाई ॥

(मूरदास)

बिन गुपाल बैरिन भई कुंजें ।

नव ये लता संगति अनि सीतल, अब भई विषम उदास की पुंजें ॥

बुधा बहति जमुना, लग खोजत, बुधा कमल फूलें, अति गुंजें ।

पवन, पानि, धनधार, मञ्जीरनि, बधिसुन-किरन भानु भई भुंजें ॥

ए ऊयो ! कहियो माधव सों, बिरह करद कर भारत भुंजें ।

मूरदास प्रभु की मग जोहत, छेलियां भई बरन ज्यों गुंजें ॥

मूरदास भी की कृष्ण कविता मर्मोन्मुख है और इस कविता में भक्ति का गुण सर्वप्रधान है । भक्ति के माध-माध इन्होंने मानव-वर्ग, प्रहृति और मंदार के अनुभवों का सिद्ध प्रमाण दिया है । वर्णन-मोष्ठव, साहित्य-योग्य, भाव-मार्गीय, भाषा-माधुर्य और प्रभावपूर्णता इनकी कविता के विशेष गुण हैं । इनकी भक्ति वाग्व्य, मगा और मर्माभाव की है । इन्होंने राम, कृष्ण और विष्णु को एक ही माना है ।

' मूरगाव ' की प्रेरणा मने ही श्रीमद्भगवत से है, पर पदों की रचना में मूरदास की वाग्मय मौलिकता स्पष्ट है । कृष्ण की वाग्व्य में वाग्व्यम और भगवता (गोरी-बिरह-वर्णन) में मूरगाव की अनुभव भाग बहती है ।

( २ )

ऊपव जो उपदेश, सनो ब्रह्मावरी ।

इय मोय माव्य, सब दुन भागरी ॥

प्रेम धुजा रत रुपिनी, उपजावत सुख पुञ्ज ।  
 सुन्दर श्याम बिलासिनी, नव सुन्दावन कुंज ॥  
 सुनो व्रजनागरी ॥  
 सुनत श्याम को नाम, घाम गृह की सुधि भूली ।  
 भरि दानन्द रम हृदय, प्रेम बेलो द्रुम फूली ॥  
 पुलकि रोम सब अंग भये, भरि धाये जल नैन ।  
 कण्ठ छुटे गदगद गिरा, बोलै जात न बिन ॥  
 व्यथसा प्रेम की ॥

(मन्ददास-भँवरगीत)

इनकी कविता भी बड़ी मनोहारिणी हैं। 'रासचान्दोदी' और 'भरम-गोन' की कविता उच्चकोटि की हैं। इसमें धाराप्रवाह, ओज, गभीरता, विमलता आदि अनेक गुण हैं। रंगों में शृंगारगर्ग की प्रधानता है। अनुप्रासों और मस्कृत पदों का प्रयोग सुन्दर हुआ है। भाषा अत्यन्त मधुर, कोमल और प्रसाद-गुणपूर्ण है। शब्द-बचन में इन की जोड़ के कवि बहुत कम हुए हैं। 'मन्ददास जडिया' इसीलिए उनका नाम पड़ा। रोगी बीपाई आदि छंदों में आपने विशेष चमत्कार दिखाया है। मानव-हृदय का बिस्लेषण प्रकृति-विवरण की अपेक्षा इन्होंने अधिक किया है।

( ३ )

रासरस घोबिब करत बिहार ।  
 मूरसुता के पुतिन रम्य महे फूले कुंद मंदार ॥  
 अद्भुत मतदम बिजसत कोमल मुकुतित कुमुद बरहार ।  
 मतय पवन बहु मारद मूरन खंद मधुप संवार ॥  
 सुपर राम संगीत बतानिधि मोहन नंदबुमार ।  
 ब्रजभामिनि सग प्रमुदित नाचन तन बरचित घनसार ॥  
 उभै स्वरूप सुभगता सीधी कोक बसा सुख प्रार ।  
 कृष्णनाम स्वामी निरपर पिय पहिरे रत धं हार ॥

(कृष्णदास)

आपकी कविता मूरदास और मन्ददास की कविता के समान तो नहीं, परन्तु है। इसमें अनुप्रास, भाव-युग्मता और गभीरता है। इसमें भक्ति और शृंगार का प्राधान्य है। काव्य में प्रिय अर्थात् श्यामाविरता कम है।

( ४ )

भात्रि गयो मेरी भाजन फोरि ।  
 बहा बही तन मान जगोदा, चढ लायी धावन सब फोरि ॥

सरिका सात-पीच रांग सोन्हें, रोके रहन गाँव की छोरि ।  
 मारग में कोठ चलन न पावन, सेत दोहिनी हाथ मरोरि ॥  
 ममसि न परे है या टोटा की, रोति धोष मोरस दंडोरि ।  
 धानंद किरत कायु सी न्येत, तारी दंड-हंमत मुख मोरि ॥  
 को यह कुँवर, कौन को टोटा, सब वज्र बाँधो प्रेम की डोरि ।  
 'परमानंद दास' की टाकुर, सेति अंतर्मा अंबर छोरि ॥

(परमानंददास)

अष्टछाप के कवियों में काव्य-श्रेष्ठता की दृष्टि से मूरदास और नन्ददास के बाद परमानन्ददास का नाम आता है । इन की रचना बड़ी मरत, मरग और भावपूर्ण है । पदों के नानित्य और मायुष्य के कारण इन्हें विशेष मरत कवि माना जाता है ।

( ५ )

सैतल नंदकिमोर, वज्र में हो-हो होरी ।  
 गौरी राग अलापत गावत मधु मुरली बस छोरी ॥  
 बटि पियरी पट-पीत, बनी छवि, सीत बंदिबा मोर ।  
 मनमय मान हरत मन चितबनि, चपल मन की कोर ॥  
 बालबबूँब स्पामघन सोभित, जल समूह वज्र-नारि ।  
 बिबिध मिगार तज्जे मिलि झुंडन देत भामिनि मारि ॥  
 देखि रामाज मदनमोहन की, धाई सब मिलि सहित हुताय ।  
 तिनमें मृत्यु राखिबा मागरि, सहस सुघन की रास ॥  
 मगन भई तन की गुणि बिमरी, हुई गढ़घी अनुराग ।  
 यह सुत तीन लोक में गार्हि, गोविन के बड़ भाग ॥  
 और हार छेव छंगन भीजै, बीच मची वज्र-सोर ।  
 मानों प्रेम-समुद्र अघिक बन, उमैंगि अत्पी मनि छोर ॥

(बनुभुंजदास)

घारके बीतन-मद बटन मधुर और संगीतमय बन पड़े हैं । इनमें भक्ति-भावना और शृंगार की अच्छी छटा दिखाई देती है । घारके पदों में कृष्ण के जन्म से लेकर गोपी-विरह तक की वज्रवीणा का वर्णन है ।

( ६ )

छात्र बन भीजी राग बनायो ।  
 पुनिन पवित्र सुभग समुनातट मोहन बंनु बजायो ॥  
 दान बंजन बिजिन नूपुर धुनि गुनि राग मृग सङ्गरायो ।  
 अर्चनि मंदल अघ्य दामघन सारंग राग जमायो ।

तात् मूर्धन्य उषं मुरज रुक् मिति रस तित्पु मृगयो ।  
 विविध वित्तद वृषभान नंदिनो भ्रंय सुगंध वित्तयो ॥  
 अभिनय निपुन सटकि तट लोचन भूकुटि भ्रंय नवयो ।  
 तातायेई तायेई धरि नवगति पति वजराज रित्तयो ॥

(हितहरिवंश)

आप की कविता का विशेष गुण है मधुरता । इसी कारण से आप श्रीकृष्ण की बीसुरी के अवतार माने गये हैं । आप सरस्वतीजी पंडित थे, इस लिए आप की कविता में सरसता, कला और भावपूर्णता अधिक है ।

( ७ )

नंद कुल चंद, वृषभानु कुल कौमुदी,  
 उदित वृंदाविपनि विमल आकासे ।  
 निकट खेदित सलो वद वरतारिका,  
 लोचन भ्रंयोर तिल रूप रस प्यासे ।  
 रतिकज्ज-भ्रमुराग-उदधि लजी मग्जाद,  
 भाव अगनित कुमुदिनीगन विकासे ।  
 बहि गवाधर, लक्ष्म वित्त अस्तुरनि विना,  
 भानु भव ताप अप्पान न विनासे ॥

(गवाधर भट्ट)

भट्ट जी चैतन्य महाप्रभु के परम कृपापात्र थे । वे सरस्वती के धुरधर विद्वान् थे । उनकी भाषा में विद्वत्ता की छाया स्पष्ट है । पद-विन्यास का गौन्दर्य, भवन-गुलम हृदय-गारुड्य, और भावगामीय उनके पदों के विशेष गुण हैं ।

( ८ )

मोहिद बबहुं मिले पिपा मेरा ।  
 धरन-वसत को हंसि-हंसि देनों, राखों नैनन मेरा ।  
 निरसन को मोहि पाव धनेरो, कब देखों मुल तेरा ॥  
 म्पाकुल प्राण धरत नहि धीरज, मिल लू पीत राखेरा ।  
 भीरा के प्रभु गिरधर भागर, ताप लपन बहूतेरा ॥

(मीरा)

मीराबाई के पदों में अगाध प्रेम और हार्दिक भक्ति प्रगट होती है । आपका प्रभाव स्त्री-समाज और भक्त-समाज पर इतना गहरा पड़ा है कि अन्य किसी भी कवियत्री का उतना नहीं पड़ा । आपकी भक्ति में माधुर्य-भाव का ही प्राधान्य है । मीरा के सभी पद भव्य हैं । भक्ति की उत्तनीनता में भोग ने न भाषा की सजावट

की बिठा की घोर न छदों के मगटन का प्रयत्न किया। भाषकी भाषा में राजस्थानी का घुट है।

( ६ )

मोहत है घेदवा सिर मोर के जैमिये सुन्दर पाग बसी है ।  
 तैलिये गोरोन भाल बिराजति जंसी हिये बनमाल समी है ॥  
 रसतानि बिसोक्त बोरो भई दुग भूँद कं त्वात पुहारि हंसी है ।  
 सोतिरी धुंघट लोनी बहा वह मूरति नैनन भाँस बसी है ॥

(रासगान)

मुगनमान होते हुए भी रसगान पूरे पक्के वैष्णव थे। इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता है। पूरे भक्त होने पर भी ये शृंगार-रस की भी उत्कृष्ट कविता कर सकते थे। व्रजभूमि के प्रति इनकी श्रद्धा अनुपम थी। कृष्ण और कृष्णभूमि पर लिखे गये इनके सर्वसे बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा बल्लारी, गरम और गुढ़ वजभाषा है। अनुप्रास का इन्होंने अत्यधिक प्रयोग नहीं किया।

### रीतिकालीन कृष्ण-काव्य

रीतिकाल जब आने-आने हमारे काव्य की प्रकृति एतदम परिवर्तित हो गई। भक्ति का स्थान शृंगार ने ले लिया। धार्मिकता के स्थान पर विनाग ने घरना धागन जमाया। रीतिविवेचन के रेमे में राधा और कृष्ण भी पगोटे गये। कृष्ण और राधा के मोहक सीदये, उनकी काम-बोहा और गोरियों के बिलास का मौखिक रूप नामने धाया। कृष्ण-राधा की भक्ति में शृंगारिता की प्रधानता हुई। रीति-घबकार कवियों ने प्रायः राधाकृष्ण के प्रेम का महाराग लेकर ही मौखिक शृंगारिता की मूर्ति की। परन्तु इनका मुख्य विषय कृष्ण न था। बल्लारी ने मगलावरण में राधा-कृष्ण का स्मरण दबाने दिया है। कृष्ण-वर्णन का प्रभाव इतना व्यापक था कि इस युग की कोई भी रचना होगी जिस में राधा-कृष्ण का उल्लेख न हुआ हो। बिहारी, देव, रघुनाथ, मनिराम, कुमारी मिश्र, बदन, कृष्ण कवि, सोरनिधि, दयारथ, टाकुर, और नरसिंह मग की कृतियों में कृष्ण की मत्ता खोइल हुई है। श्रीधर (मुरलीधर), ग्याग और गजमेगार जैसे बोरकवियों ने भी कृष्णजीता का उल्लेख किया है।

इनके धर्मिकता इस युग के कवियों का एक बड़ा ऐसा भी है जिसने काव्य में भक्ति-भावना की प्रधानता है। वास्तव में यही कवि अविचारहीन धार्मिक परम्परा के अनुयायीकारी हैं। यह ठीक है कि इन को भी भक्ति के सामर्थ्य

का, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का, उत्तराधिकार नहीं मिला । मिला तो बस बाहरी ढांचे मात्र का उत्तराधिकार ।

प्रमुख रचनाएँ जिन काव्यों का एकमात्र विषय कृष्ण-चरित्र रहा है, उनके नाम काल-प्रमानुसार ये हैं—

पनानन्द—'कृपाकाण्ड निबन्ध', 'रसकेलिवल्ली', 'मुजानसागर', 'बानी' ।

नागरीदास—'गोपीप्रेमप्रकाश', 'श्रवसार', 'बीहार-चन्द्रिका', 'राम-रमणता', 'राम के कविरा', 'गोविन्द परचरई', 'भक्तिमगदीपिका' इत्यादि ।

चम्पू हम्पराज—'स्नेह-सागर' ।

अलयेति अलि—'रमय प्रबन्ध पदावली' ।

पाचा हितवृन्दावनदास—'रामरत्नाकर' आदि ।

भगवत् रमिक—'मुटवर' ।

श्रीहठी जी—'राधामुषागतक' ।

गोकुलनाथ—'गोविन्द मुण्ड विहार', 'राधाकृष्ण विलास' ।

मल्लि कवि—'गुरुभिक्षानलीना', 'कृष्णायन' ।

कृष्णदास—'माधुर्य महरी' ।

रमिक गोविन्द

बाबा दीनदयाल गिरि—'धनुगण बाग' ।

×

×

×

^

इस बाग के कवियों में पाचा हितवृन्दावनदास और श्रीहठी जी राधा-वल्लभी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे और पनानन्द और भगवत् रमिक निम्बार्क-मननुषामी थे । अन्य कवियों ने स्वतन्त्र रूप से अपनी भक्ति-काव्य-शैली स्थापना की अभिव्यक्ति की है । परन्तु कृष्ण-शैली-चरित्र साधारण रूप में सब में रहता है । अधिकांश रचनाएँ पूर्ववर्ती भक्तों के भावों का पिष्टपेष ही हैं । बिन्तु इनमें बहुत से कवि भक्त हैं और उन्हें मोति-बत्ता छपवा नवीनता में मगोकार न था । पनानन्द का इनमें बड़ी स्थान है जो गुरुदास का पहले युग के कवियों में । इनके अनिशिष्ट नागरीदास, पाचा हितवृन्दावन, भगवत् रमिक और बाबा दीनदयाल गिरि में अपनी-अपनी नवीनता और विशिष्टता है । पनानन्द ने मयोग और विशेष का सर्वत्र वास्तव्यपूर्वक किया है । पनानन्द में मनोवैज्ञानिकता बहुत अधिक है । इनकी स्थान की प्रशंसा अन्तर्बुद्धि-निष्पन्न की ओर है । इनमें बिहारी में अधिक गम्भीरता है । बिहारी में उत्पन्न-रस, लक्ष्य और आशोन्माद है, पनानन्द का उत्साह गुड, शांति और

गम्भीर है। नागरीदाम में फारसी काव्य का प्रभाव लक्षित होता है—उसमें मृदियाना वग का इच्छ (प्रेम) प्रतिपादन किया गया है। भगवन् गीता में भी प्रेमस्वरूप का निरूपण करते हुए कृष्ण-नरसिंह का प्रतिपादन किया है।

यह बात विशेषतया उल्लेखनीय है कि इस समय रीति-रीतों का दयदया होते हुए भी इन कृष्ण-नरसिंहों ने यथामन्त्र अपने को उनके प्रभाव में बचाया है। श्रीहरी, गोकुलनाथ, श्रीर दीनदयाल गिरि ने कलापरा पर अवश्य जोर दिया है, और बाबा हितबुन्दाबनदान तथा मधुन ने नरसिंह, छपनीला, शत्रुघ्नगर्भ आदि पर उल्लेख पद लिखे हैं, किन्तु उन सब में हृदयगत ही प्रधान है। धनयत यह मानता रहेगा कि इस काल को कविता कुछ निश्चित और हीन है। धार्मिकता और हृदय की गम्भीर अनुभूति का उसमें प्रभाव ही है। भक्तिबान के ध्यात्म-दर्शन का परिचय एक दो कवियों में ही मिल सकेगा।

इस युग की कविताओं में शृंगार-रस ही प्रधान है और प्रायः वह शृंगारिकता कलावीनता और नम्रता में परिणत हो गई है। रीति-व्यवहारों ने विशेष करके राधाकृष्ण को मुख्य सङ्गे स्त्री-पुरुषों में भी नीचे गिरा दिया है। इस नव्य की ओर हम पहले भी संकेत कर चुके हैं। कृष्ण की सीताओं और उनके बिहारी ने तथा समय की साहित्यिक प्रवृत्तियों ने उन कवियों को मोहित कर रखा था। सीताओं में भी जलविहार, बनविहार, मानवीला, दानवीला, गुना होनी बनेवा आदि निरुद्ध सीताओं का वर्णन ही अधिक है।

भक्तिबान के समान इस समय भी मुख्य-काव्य की रचना ही अधिक हुई है। गम की घोषा कृष्ण की ओर प्रवर्णकारों का बहुत कम ध्यान गया है। प्रवर्ण-रचना का उपांग अवश्य हुआ, पर वह सकल नहीं गया।

इस बात में भी कृष्ण-काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही है; कुछ इनी-गिनी रचनाएँ कवियों में मिली गई जो बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इसमें मन्देह नहीं कि इस समय भाव-मोहों की घोषा भाषा-मोहों पर अधिक जोर दिया गया है परन्तु भाषा निम्नदर्शनिक और स्वाभाविक हो गई है। धनानन्द की व्यंग्यता तथा प्रयोग-विचित्रता, नागरीदाम की गमता, हयरात्र की सरलता और कृत्रिमता, बाबा दीनदयाल गिरि का पारंगत आदरयोग्य है। इस काव्य की भाषा अर्धगुरु ने सही हुई, मधुर और गम्भीर है। उसकी साहित्यिकता में किसी को मन्देह नहीं है।

श्रीहरी जी, गोकुलनाथ और बाबा दीनदयाल जी की रचनाओं में लम्बाई का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यमक, अनुशासन, लम्बा, गुरु, उद्देश्य आदि का उनकी रचनाओं में विशेष आदर प्राप्त होता है, परन्तु इनके अर्थों में



कवियों ने लक्ष्मण अथवा हठ से काम नहीं लिया । अधिकतर कविताओं में अलंकार स्वाभाविक और यथास्थान आये हैं ।

छंदों में भी विविधता पाई जाती है । कवित्त, सर्वपा, अरिल्ल, रूप-माला, घनाक्षरी आदि मधुर छंद अधिक उपयुक्त हुए हैं । दोहे और चौपाइयाँ भी हैं । भक्तिकाल के पदों का प्रयोग भी मिलता है । यह बात भी उल्लेखनीय है कि इन छंदों में केसवदाम की तरह का तमाशा नहीं है । छंदों का निर्वाह प्रायः अच्छा हुआ है ।

इस काल की कृष्ण-भक्ति-कविता से कुछ भवतरण दिये जाने हैं—

उदाहरण

( १ )

गुरनि बतायो, राधा मोहन ॥ गायो,  
सदा सुखद सुहायो बुन्दावन गाड़े रहि रे ।  
अद्भुत अद्भुत महि-मंडल परे मे परे,  
जीवन को साहू हा हा बयो न ताहि सहि रे ॥  
आनंद को धन द्यायो रहत निरंतर हो,  
सरस सुंदर सों पयोहा-पन बहि रे ।  
जमुना के तीर केलि कोसाहस भीर ऐसी,  
पावन पुलिन वे पनित पर रहि रे ॥

(घनानन्द)

घनानन्द के गमकालीन बटन से कृष्ण-भक्त कवि पहले गीरिध प्रेम में लीन रहे, बाद में भगवद्भक्ति की ओर मुड़े । यही कारण है कि उनकी कविता में प्रेम और शृंगार का प्राधान्य है । विरंग-शृंगार लिखने में इन्होंने बखान कर दिया है । गुड व्रजभाषा लिखने में ये प्रसिद्ध हैं ।

( २ )

बसह बल्यना काम कनेस निवारनी ।  
परनिष्ठा परद्रोह न बचहु बिचारनी ॥  
जग प्रपंच बटमार न बित्त बड़ाइये ।  
ब्रजनागर नंदसान नृ निनिदिन गाइये ॥  
अन्तर कुँटिल बटोर भरे अभिमान सों ।  
निके गूढ़ महि रहं नन्त सनमान सों ॥  
उनको मर्गनि भूलि न बचहु ज़ाइये ।  
ब्रजनागर मरदान नृ निनिदिन गाइये ॥

बहुं न बबहुं धन जगन कुल रूप है ।  
हरि भवनन को संग मदा सुखदय है ॥  
इनसे दिग आनंदित सम बताइये ।  
ब्रजनागर नंदमान सु निर्दिदिन गाइये ॥

(भागीरदास—धर्म्मसंपर्षी)

आन की बलिना प्रेम-प्राप में मोन-प्रोण है । आनने कृष्ण मीरा भीरु हानी  
आदि जगकों का बहा ही विगद और रोकर यमन किया है । आन की भाषा  
ब्रजभाषा ही है जिन में पारमो के शब्द भी पाये जाते हैं ।

( ३ )

इत से अपनी राधिका गोरी सौपन धनको गंधा ।  
उत से अति आतुर आनंद सौं आए कुँवर कहैया ॥  
बसि भीहँ कुँवर राधिका बगहँ कुँवर सौं खोली ।  
प्रेम-प्रेम जगति भरे आनंद सौं हरजनि दिन दिन खोली ॥

(बरती हमराज)

बरती श्री की बलिना भाव-प्रधान है । भाषा मधुर, मरल तथा प्रसादयुक्त  
है । मन्त्रमुग्धन मानुषागिष हाना हुआ भी मरल और भावरोचक है ।

( ४ )

सोभा बेहि बिधि बरनि गुनाऊं ।  
इव रमना, मोठ मोहन हानी, बहो पार क्यों पाऊं ॥  
धंग-धंग साधन-आधुरी बुधि बसि बिनी बनाऊं ।  
अनुमति मुनिन कहि गये क्यों दूग दल रसि धुरि जू उखाऊं ॥  
मोक न गुनो गुनन नहि देनी, ऐसो बच निबाई ।  
मेरी तेरी बहा बनी, लख-मुग-मनि प्रेम बिबाई ।  
बबहू गौर इयाय तन बबहू, मोहन व्यामे धारें ॥  
बह धरि जात निष् बौ, पंढी खौवन नरि साबें ।  
गुनरता की हर मुरमोहर, बेहद दूबि की राया ।  
भाबें बह धनन धरि शारव, लऊ न गुनं साधा ॥  
व्याह काम बरबह है निजगन दिव छद दय गुमानो ।  
'ब्रजराजन' हिननन जियो बग, मो जानन की रानी ॥

(हिन ब्रजराजन)

हिननन इनके मुख में । 'बाबा श्री' बड़े मुरमोहर और अति शक्तिमान हैं ।  
ये । बहूँ हैं इनोने एक भाग पर निगे ये । इनकी धार्मिक बलिना होने पर भी  
इनकी रचना शारदायुगी है । उसमें मधुर-मधुर भाव-वैचित्र्य, भाव-मोहक और

काव्य-सौंदर्य आदि गुण मिलते हैं। इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदुराज का नहीं। इनके वर्णन में नख-शिख, अष्टयाम, छत्रलीला आदि प्रसंग बहुत सुन्दर हैं। वैराग्य और सिद्धान्त-सम्बन्धी पद भी अनूठे हैं।

( ५ )

कोऊ उमाराज, रमाराम, जमराज कोऊ,

कोऊ रामचंद, सुलकंद नाम नाथे में ।

कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति सुरपति, कोऊ,

देवन ध्याय फल लेत पल भाषे में ॥

‘हठी’ को आपार निरापार को आपार तू ही ।

जप तप जोग जग्य कछुवै न साथे में ।

कटे कोटि बाधे मुनि घरत समाधे ऐसे,

राधे, पद राखरे सदा ही अवराधे में ॥

(हठी—राधा सुधाशक्त)

हठी जी भगवद्भक्त होने के साथ साहित्य-भर्मेज भी थे। इनकी रचना का कलापक्ष भी समृद्ध है। इस में उपमाओं और अनुप्रासों का अच्छा प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा भी मधुर और सुन्दर है। राधा का आध्यात्म मानने हुए इन्होंने अन्य देवी-देवताओं को हीन दिमाया है।

( ६ )

मुकलित पल्लव फूल सुगंध परागहि झारत ।

जुग मुख निरखि विपिन जनु राई सोन उतारत ॥

फूल फलन के भार डार मुक्ति यों छवि छार्ज ।

मनु पसारि वह भुजा वेत फल पवित्रन कारज ॥

मधु मकरंद पराग-सुख छति मुखित मत्त मन ।

बिरद पढ़त जनु राज भूपति के धनु बंदीजन ॥

(रगिक गोविंद)

इनकी रीति-रिवाज में सिंगी ‘मुगल-रग-माधुरी’ बड़ी सरस और प्रसिद्ध रचना है जिसमें राधाकृष्ण-विवहार और वृन्दावन-उत्थान बड़ी भावपूर्ण और बलित्वपूर्ण शैली में हुआ है।

( ७ )

जल चकई तेहि भर जिने जहें नहि रंन-विद्रोह ।

रहत एक रस दिवस ही, मुहुर हंग मंदोह ॥

मुहुर हंग-संदोह कोह और दोह न जायो ।

भोगन मुख संबोह, मोह दुल होय न ताचो ॥

बरन दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई ।  
पिय मिलाय नित रहै, ताहि तर चल तू चकई ॥

(दीनदयाल)

दीनदयाल जी बड़े भावुक, विद्वान् और कलाप्रिय कवि थे । इनकी भाषा विनोदः सुन्दर, पण्डित्य और मुनजो हुई रहती थी । इनकी प्रसिद्धि अन्योक्तिों के कारण अधिक है ।

( ८ )

तजि तोरय, हरि-रायिका-तन-कुनि करि धनुराय ।  
जिहि वज्र-बेलि-निहुँज-मग, पग पग होत प्रयाग ॥  
मोहत ओड़े पीत पट, स्वाम सलीने गान ।  
मनो मोलमनि-सँल पर, धातप परधो प्रमात ॥

(बिहारी)

राजद्वारों की स्वार्थपणा में लग आकर जब बिहारी विरक्त हुए तो उन्होंने भगवन्-मन्त्री अत्यन्त भय और डर की कविता की । वे साम्प्रदायिक मन महात्मा नहीं थे, पर इन्द्रिय-मोक्ष केवल शृंगारी कवि भी नहीं थे । बिहारी के दोहे हिन्दी साहित्य के रत्न हैं ।

भक्ति में शृंगारिका का नमूना भी देखिये —

( ९ )

आई जो बलि गुपाल धरं बजबान विशाल मुनाल सो बाहीं ।  
त्यों परमाकर मूरति में रति छू न सकें कितहूँ परधारी ॥  
शोभित शम्भु मनी उर ऊपर मीन मनोमव की मन माहीं ।  
साज बिराज रही अविद्यन में प्रान में बाहू जबान में नाहीं ॥

(पद्माकर)

वह ब्रज सौ शोभन धंग गुपाल की सोऊ सब पुनि जानती हो ।  
बलि नेक दलाई धरे कुम्हलत इतीऊ नहीं पहिचानती हो ॥  
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इनने पं बन नहि मानती हो ।  
दुग जान ये भोह बमान कहो अब जान सौ कौन पं तानती हो ॥

(ठाकुर)

साम्प्रदाय में ये कवि शृंगार-रस का ही वर्णन करते थे । अन्य नायक-यिकाओं में वृष्ण और राधा का उल्लेख भी कर जात थे । इनमें धार्मिकता सेनमान भाव नहीं है ।

काव्य-सौंदर्य आदि गुण मिलते हैं। इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदुराज का नहीं। इनके वर्णन में नख-शिर, अष्टयाम, छप्पलीला आदि प्रसंग बहुत सुन्दर हैं। वैराग्य और सिद्धान्त-मन्वन्धी पद भी मनुठे हैं।

( ५ )

कोऊ उमाराज, रमाराज, जमाराज कोऊ,  
कोऊ रामचंद, सुखचंद नाम नाथे में ।  
कोऊ ध्यावें गनपति, फनपति सुरपति, कोऊ,  
देवन ध्याय कस संत पत आधे में ॥  
'हठी' को आघार निराघार को आघार तू ही ।  
जय तप जोग जग्य कछुबै न साथे में ।  
कटे कोटि बाधे मुनि घरत समाधे ऐंसे,  
राधे, पद रावरे भदाही धवराये में ॥

(हठी—राधा मुपाशतक)

हठी जी भगवद्भक्त होने के नाथ साहित्य-मर्मज्ञ भी थे। इनकी रचना का कलापक्ष भी समृद्ध है। इस में उपासकों और अनुप्रासों का अच्छा प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा भी मधुर और सुन्दर है। राधा का प्राधान्य मानने हुए इन्होंने अन्य देवी-देवताओं को हीन दिखाया है।

( ६ )

मुकलित पत्नय फूल सुगंध परागहि झारत ।  
जुग मुख निरखि बिपिन जनु राई सोन जतारत ॥  
फूल फलन के भार डार शुकि धौं छवि छार्ज ।  
मनु पतारि रह भुजा बेत कल पविजन काने ॥  
मधु मकरंद पराग-सुख्य छलि मुदित मल मन ।  
बिरह पढ़त जनु राज भुपति के मनु धंदोजन ॥

(रतिक गोविंद)

इनकी रीना-छंद में लिखी 'सुमन-रग-माधुरी' बड़ी गरम और प्रगल्भ रचना है जिसमें राधाकृष्ण-विहार और वृन्दावन-जगन बड़ी भावपूर्ण और कविरसपूर्ण रीती में हुआ है।

( ७ )

अल चरई तेंहि सर विषं जहं नहि रैन-विद्रोह ।  
रहग एक रत दिगग ही, गृह्व हंग संरोह ॥  
गृह्व हंग-संरोह कोह धीर द्रोह न जानो ।  
भोगन मून धंकोह, मोह दुख होय न ताको ॥

बरनं दोनदयाल भाग बिन जाय न सकई ।

पिय मिलाय नित रहै, ताहि सर चत तू चरई ॥

(दोनदयाल)

दोनदयाल जी वडे भावुक, विद्वान् और कलाप्रिय कवि थे । इनकी भाषा विशेषतः सुन्दर, पारंगत और सुलझी हुई रहती थी । इनकी प्रसिद्धि अन्योक्तियों के कारण अधिक है ।

( ८ )

तजि तोरथ, हरि-राधिका-तन-भुलि करि अनुराग ।

जिहि ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होत प्रयाग ॥

सोहत छोड़े पीत पट, स्याम सलौनै गात ।

मनौ नीलमनि-सैल पर, आतष परपो प्रभात ॥

(बिहारी)

राजदरबारों की स्वार्थपरता से तग आकर जब बिहारी विरक्त हुए तो उन्होंने भगवन्-मन्त्री अत्यन्त भव्य और ऊँची कविता की । ये साम्प्रदायिक सत् महात्मा नहीं थे, पर इद्रिय-सोमूष केवल शृंगारी कवि भी नहीं थे । बिहारी के दोहे हिन्दी साहित्य के रत्न हैं ।

भक्ति में शृंगारिक्ता का नमूना भी देखिये —

( ९ )

भाई जो बलि गुपाल धरै ब्रजबाल विनाल मुपाल सो बाहीं ।

र्यों पदमाकर मूरति में रति छू न सकै कितहूँ परदाहीं ॥

शोभन शम्भु मनो उर ऊपर मीन मनोभव को मन माहीं ।

साज बिराज रही झेलियन में प्रान में कान्हू जवान में नाहीं ॥

(पदाकर)

वह ब्रज सो कोमल भ्रम गुपाल को सोऊ सवै बुनि जानती हो ।

बलि नेक दसाई धरे कुम्हलरत इतौऊ नहीं पहिचानती हो ॥

कवि ठाकुर या कर जोरि बह्यो इतने पै बर्न नहि मानती हो ।

बुग बान ये भौह कमान कहो छब कान सौ कौन पै तानती हो ॥

(ठाकुर)

वास्तव में ये कवि शृंगार-रस का ही वर्णन करते थे । अन्य नायक-नायिकाओं में कृष्ण और राधा का उल्लेख भी कर जान थे । इनमें धार्मिकता का तत्त्वमान भाव नहीं है ।

### आधुनिक काल की कृष्ण-कविताएँ

मुगलकाल के उत्तरार्ध से ही धार्मिक भावना का हास हो चला था। पश्चिमी जातियों के घागमन के बाद उनकी सस्कृति के सम्पर्क से भारतीयों में भी धीरे-धीरे भौतिकता का विवास होने लगा। धर्म को ढोंग और धर्म-प्रमुख रक्षकएँ परायण व्यक्ति को उल्लू, बगुला या बैल कहा जाने लगा। प्राचीनता को दुर्गुणयुक्त पिछड़ापन बताया जाने लगा। रोटी-कपड़े, घर-द्वार, जगत् और दारीर की समस्याएँ सामने आईं और हमारा साहित्य भी इन समस्याओं की पेचीदगियों में भरने लगा। कृष्णवाक्य की पुरानी तानें भलापन बाने इने-गिने ही रह गये।

आधुनिक काल का भक्ति-साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

महाराज रघुराजमह—'रघुराजविलास', 'भ्रमरगीत', 'रुक्मिणीपरिणय'।

गाह कुन्दनलाल 'सलिल किशोरी'—विविध पद।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—'मक्त मर्बत्त', 'प्रेम फुलबारी', 'प्रेम मानिका', 'प्रेमाशु-वर्णन', 'प्रेम-प्रताप', 'रागमगह', 'मधुमुकुल', 'वितय-प्रेम-पधामा', इत्यादि।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—'उदय-दानक'।

सत्यनारायण कविराज—'भ्रमर दूत'।

विष्णोमी हरि—फुटकर पद।

अयोध्यागिह उगाध्याय—'प्रियप्रवास'।

मैथिलिनारण गुप्त—'जयद्रथ-वध', 'ढापर', आदि।

यह बात उल्लेखनीय है कि एक-दो कवियों की छोड़कर किसी में भक्ति या धार्मिकता दिखाई नहीं देती। वास्तव में इस स्वच्छन्द युग में धन्य वीरियों विषयों के ध्वनन 'कृष्ण' भी घा जाने हैं। और तो और रामभक्त कवि मैथिलीनारण गुप्त भी ढापर चिगन पड़े। इनके अनिश्चित धनेक गेमे कवि हैं जिनके विविध-विषय वाक्य में कृष्ण-चरित्र का उल्लेख मिल जाता है। इनमें रामभक्त महाराज रघुराजमह के दो ग्रंथ और रामानुजी बाबा रघुनाथदास मनेही का 'विधाम गागर' (दूगरा माग) उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक कृष्ण-वाक्य में मौलिकता बहुत कम है। यही विष्टपेयन प्रायः सब में पाया जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के एक ही कवि वाक्यशास्त्री हैं जिन में वैष्णव वाक्य का गीति-तरव स्वाभाविक और सुन्दर रूप में पाया जाता है। इन्होंने लगभग डेढ़ हजार पद लिखे हैं जिन

में विनय, बात-सौला और गोपियों के खेलों का वखन है। ऐसा जान पड़ता है कि इस युग की राजनीतिकता और अज्ञाति में भक्ति-भावना दब गई। बीसवीं शताब्दी में आकर भक्ति का नितान्त ह्रास हो गया है। आज की जनता देवता में नहीं मनुष्य में विश्वास रखती है। 'प्रियप्रवाम' के कवि ने कृष्ण के देवत्व को मनुष्यत्व में परिणत करके दिखाया है। कवि ने स्वयं भूमिका में लिखा है कि मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को इस ग्राम में महापुरुष की भाँति भक्ति किया है, प्रहस्य करके नहीं। 'प्रिय-प्रवाम' की महत्ता इसी आदर्श मानव-चरित्र-चित्रण में है। मैथिली-शरण गुप्त के 'जयप्रिय-वध' में आधुनिक बुद्धिवाद का प्रभाव कम है—उन्होंने राम की तो ईश्वर माना है, परन्तु कृष्ण के अतिमानुषिक और अलौकिक चरित्र का चित्रण नहीं किया।

रत्नाकर और कविरत्न के काव्य में रमणीयता स्पष्ट लक्षित होती है। उन्होंने उडब और गोपियों के पिष्टपेयित मवाद को लेकर अपने भ्रमर-गीतों में उच्च कविता की मृष्टि की है। सत्यनारायण कविरत्न की कविताओं में आधुनिक सुधारवाद का निर्देश भी मिलता है। वियोगी हरि के आत्मनिवेदन में शांत-रम गीत होकर बीर-रम प्रधान हो गया है। उनकी विनय में बीरवाणी है।

इस युग के शुरु के कवियों में शृंगारी काल की प्रवृत्ति रही है, परन्तु भार्गव-संग्रह के बाद फिर वही प्राचीन भास्विकता लाने का प्रयत्न होता रहा है। शृंगार रम के साथ ही शांत, हास्य और बीर रम की मृष्टि की गई है।

यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि काव्य के विषय, स्वरूप, रम और भाषा की परंपरा का जितना लगातार पालन कृष्ण-साहित्य में हुआ है उतना हिन्दी-साहित्य की किसी काव्यधारा में नहीं हुआ। सत्यनारायण सन् १९७५ तक उमी ढंग में कविता करते रहे हैं जैसे नन्ददाम १९२५ के लगभग। वियोगी हरि उमी रूप में पद-रचना करने आये हैं जिस में उनमें ४०० वर्ष पहले अष्टछाप के कवि करते रहे हैं। रत्नाकर तक मूर के भ्रमरगीत की भाँति बराबर गुंजती रही है। कृष्ण-काव्य की गीति-परम्परा अशुद्ध रही है।

कृष्ण-काव्य की भाषा वज्रभाषा ही रही है। सभी कुछ छोड़े ही वर्ष हुए अयोध्यामह उवाच्य और मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में लट्टी बोनी का प्रयोग शुरु किया है। इस काल के कवियों की वज्रभाषा में

**प्रक्रिया** प्रातीय शब्द और प्रयोग पढ़ने में अधिक मिलने हैं। कारण यह

है कि भारतेन्दु से पहले के कवि अधिकतर भक्त थे और वज्र-भूमि में घपवा उसके निवट ही रहते थे। आधुनिक कवियों पर संस्कृत, उर्दू, अंगरेजी भाषाओं का प्रभाव भी पड़ा है। शुद्ध और घनली वज्रभाषा इनमें बहुत कम मिलती है। रत्नाकर और कविरत्न की कृतियों में अश्लेषों के अनेक ह्पान्तर



प्राप्त होते हैं। यह होते हुए भी इनकी भाषा में सरमला और कोमलता अवश्य है। प्रवाह में बड़ी बमो नही आने पाई। महाराज रघुगजसिंह और ललित-विशोरी को भी भाषा पर पूर्ण अधिकार रहा है। भारतेन्दु की ब्रजभाषा भी मुख्यस्थित और सुगठित है।

इस काल की प्रवृत्ति में एक और विशेषता है चलकार का धीरे-धीरे त्याग। भाषा को अनवृत्त करने का विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। रीतिपद्धति का प्रभाव थोड़ा बहुत अवश्य बना रहा है परन्तु गद्दी बोली के कवियों ने उस पद्धति की उपेक्षा करके भाषा में स्वच्छन्दतावाद का उपयोग किया है।

छन्दों की दृष्टि से साधुनिक कृष्ण-काव्य में पहले से भी अधिक विविधता पाई जाती है। दोहा, बरिस्त, मय्या इत्यादि बराबर चलने रहे हैं। रत्नाकर और कविरत्न ने सोला छन्द का भी प्रयोग किया है। गीतिका, हरिगीतिका, बरवै, सोरठा, छप्पय, ताटव, गार राधिका, चौपाई और रूपमाता का प्रयोग महाराज रघुराजसिंह, ललितविशोरी और वियोगी हरि ने किया है। वियोगी हरि के पद अत्यन्त सुन्दर और मधुर हैं। वर्णिक छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। 'प्रियप्रवाम' केवल वर्णिक छन्दों में ही लिया गया है।

अनेक कविताएँ उर्दू बहरो में लिखी गई हैं। ललितकिशोरी ने गजलो में कृष्ण-सीला का वर्णन किया है।

मस्रुत वृत्तों में मस्रुत-मयित भाषा, हिन्दी छन्दों में तज्जुब सवद और उर्दू बहरो में उर्दू-फारसी के प्रयोग मिलने हैं।

उदाहरण—

( १ )

सैभारहु सपने कीं गिरपारो ।

भोर-भुलुट निर-पाक पेंच बसि, रागहु छलक सैबारी ॥

हिय हलकति बनमाल उठावटू, मुरली धरहु उतारी ।

बकाबिन तान है रासी, बंजन-बंजन निवारो ॥

मुपुर लेंहु बड़ाई बिंकनी, लोचहु बरहु तयारी ।

पियरो पट परिचर बट बमिकें, बांधो हो बनबारी ॥

हम माहीं उनयें मिनकों मुम, सहजहि बीनों तारी ।

बानो जगथी मोकें छब की, हरिबंद की बारी ॥

(हरिचन्द्र भारतेन्दु)

बाबू हरिचन्द्र बन्धुमित्र के वैष्णव थे। भक्त होने के कारण इनकी कविता में सरमला और प्रवाह है। ब्रजभाषा में इन्होंने काव्य प्रेम था। इन्होंने गद्दीबोली में भी अनेक छन्द लिखे, परन्तु ये गद्दी बोली की काव्य उपयुक्त नहीं मानते थे।

( २ )

स्यामरूप में तेज, अघर-रस जर्ताह मिलाऊँ ।

मुरति अकास मिलाय, प्राण में प्राणिन छाऊँ ॥

मुख-मंडित गोधूलि, अली टुक देखन पाऊँ ।

पृथिवी-अंस मिलाय, तामु में प्रियतम ध्याऊँ ॥

(ललितकिशोरी)

श्रीकृन्दावन-बास दीजिये यही हमारी आशा है ।

जमुना-तीर सुजाय मापुरी, जहाँ रमिको का वासा है ॥

सेवाकुंज मनोहर सुन्दर, इकरम भारीमासा है ।

'ललितकिशोरी' के दिल बेकल जुगल-रस-व्यासा है ॥

(ललितकिशोरी)

आपने भक्ति और प्रेम सबन्धी सैंकड़ो पद और गजले लिखी हैं जिनमें राम-विलास, समयप्रबंध, अष्टधाम, नल-सिख का अनूठा वर्णन मिलता है । छत्रनीला लिखने में तो आप ने कमात ही कर दिया है । आप की भाषा में ब्रजभाषा, मारवाडी, उर्दू और खड़ी बोली का सम्मिश्रण है । आप की रचना-शैली बड़ी लोकप्रिय है और रामधारियों में बहुत प्रचलित है ।

( ३ )

जब से बिलोषयी बात लाल बन-कुंजनि में,

तब तँ अनंग की तरंग उमरति है ।

कहू रतनाकर न जागति न सोवति है,

जागति भी सोवति मैं सोवति जगति है ।

इन्ही दिन-रत रहूँ कान्हू-ध्यान-वारिधि में,

तो हूँ बिरहाग्नि की साह सौ दगति है ।

धूरि परी परी इहि नेह दई-भारे पर,

जाकि लाम पा आप बानी में समति है ॥

(रत्नाकर)

इस बीसवीं शताब्दी में पुरानी परम्परा का अवलम्बन करने वालों में रत्नाकर जी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है । आप की भाषा शुद्ध, धार्मिक-वैधानिक संयत और वन्यापूर्ण, प्रवृत्ति-विषय स्वाभाविक और भाव-व्यञ्जना स्वच्छ और सकल हुई है । आप की भक्ति में श्रृंगारिता का पुट अधिक है । आप की कविता का विशेष गुण है भोज और लालित्य जो 'उद्भवजनक' के एक-एक कवित्त में समित होना है ।

( ४ )

भाष्य, अब न अधिक तरसै।

जसो करत सदा सों धायें, युही दया दरसै।  
 मानि खेज, हम कर, कुंडगी कपटी, कुटील, गँवार।  
 कंभे घसरन सरन बहो सुम जन के तारनहार ॥  
 तुम्हरे अछूत तीन-तेरह यह, देश-बसा दरसाव ॥  
 पै तुमको यहि जनम-धरे की, तनकहु साज न धाव ॥  
 भारत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न शिबुवन राई।  
 भंगुरी डारि कान में बेंडे, धरि ऐसी निदुराई ॥

(सत्यनारायण)

धाय का 'अभयदूत' अपनी शैली का अनूठा नमूना है। श्रीकृष्ण-भक्ति के माध-गाय उगमें स्वदेश प्रेम का अत्यन्त सुन्दर गभावेश हुआ है। इस दुनियाँदारी के युग में सत्यनारायण कविरत्न की भक्ति प्रगमनीय है। धाय श्रजभूमि धीर श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। धायजी श्रजभाषा ठेठ भाषा है जिस पर धाय का पूरा पूरा अधिकार था।

( ५ )

ऐसा धाया इक दिवस जो मर्मभेरी महर था।  
 घाता ने हो दुस्तिन भव के बिजिनों की बिलोका।  
 धीरे धीरे तरावि निजला कपिता दण्य होता।  
 बाला बाला बज अरुनि में शोक का मेघ छापा ॥  
 मोके होवे दिवस जितना आत्मसर्वस्व कोई।  
 होनी है ली स्वमनि जिननी तप की बेदनायें।  
 दोनों प्यारे बूँदर तनिके धाम में धाज घाने।  
 पीडा होनी अधिक उगते गोरुसापीड को पी ॥  
 लज्जा से वे प्रवित-वच में बाँध भी येत देने।  
 जो होता था व्यथित हरि का धुड़ने हो सदेता।  
 बुझों से हो विषय बन्ध के धार धाम पे ये।  
 ज्यों ज्यों घाते निबट गृह के भूमि जाने गढ़े ये ॥

(अयोध्यानिह उपासक—त्रिप्रवाण)

हृषीकेश जी ने श्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार ग्रहण हुए भी कृष्ण-नाम में गड़ी बोली का प्रयोग करते एक नवीन शैली का आविर्भाव किया है। 'त्रिप्रवाण' में आत्मन्य, गृहार धीर अवि-रग के सुन्दर लक्ष विरने हैं। परन्तु हममें धामिपना का धन बिन्दुन छोड़ा है। समय की छान गहरी है।

( ६ )

“जैसा किया होगा प्रथम वंसा हुआ परिणाम है,  
माधव! विदा दो बस मुझे, अब बार बार प्रणाम है ।  
इस भांति भरने के लिए यद्यपि नहीं तय्यार हूँ,  
पर धर्म-बन्धन-बद्ध हूँ मैं क्या करूँ ताचार हूँ ।”

इस भांति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण ये सब सुन रहे,  
हँसकर जयद्रथ ने सभी ये विष-वचन उनमें कहे ।  
शोचिन्दा! अब क्या देर है ? प्रण का समय जाता टला,  
शुभकामें जितना शीघ्र हो है नित्य उसना ही भला ॥

सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसो कुछ आ गई,  
गम्भीर-श्यामल-मेघ में विद्युच्छटा सी छा गई ।  
बहुते हुए धों—बह न उनका भूल सकता वेश है,  
“हे पार्थ ! प्रण-पालन करो, देखो अभी दिन शेष है ।”

(मंचिसीशरण गुप्त—जयद्रथवचन)

गुप्त जी के कृष्ण मोता के कृष्ण हैं । ‘जयद्रथ-वचन’ में वीर तथा वरुण रम  
का प्रणद्धा परिपाक हुआ है । आप ने वैष्णव होते हुए भी उदारता का परिचय  
दिया है और अपने काव्य में समय का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व किया है ।

उपसंहार

कृष्ण-काव्य हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सम्पत्ति है । मूरदास, नंददाम,  
हितहरिवंश, मीराबाई, रसखान, ध्रुवदाम, घनातन्द, नागरीदाम, हितवृन्दावनदास  
भगवत्प्रसन्न, रघुराजमिह, भारतेंदु, रत्नाकर, सत्यनारायण, अयोध्यामिह  
उपाध्याय आदि बीसियों कवियों ने हमारे साहित्य में सरसता, माधुर्य, तल्लीनता  
और काव्य-सुधा की जो धारा बहाई है उसका प्रभाव आरम्भ से लेकर आज तक  
बना रहा है । परन्तु अन्ध को अन्ध ही हिन्दी का आदि-जबि मान लिया जाय,  
न तो उसकी भाषा और न ही उसके भाव हिन्दी-साहित्य के विकास में सहायक  
बने हैं । कृष्ण कवियों पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है ।

एक बात अवश्य है । कृष्ण-जबि कृष्ण-सीला को ही तमाम अपनी भावनाओं  
का केन्द्र बना कर चसते रहे हैं । इससे आगे चसकर न केवल धार्मिक प्रतिष्ठा  
की राति हुई है, बल्कि साहित्यिक आदर्शों को भी टेम लगी है । कृष्ण-भक्ति की  
शृंगारिता ने रीति-पद्धति को प्रोत्साहित किया । विषय-वर्णन में नवीनता न  
दिला सके के कारण कविगण काव्य के आह्लांगों के चित्रण में अपने कमल

लगे। रामभक्ति-काव्य में तो प्रबन्धों, मुक्तकों और गीतों द्वारा कई प्रकार की रचना-शैलियों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, ऐसा कृष्ण-काव्य में नहीं हो सका। रामभक्तों में सौन्दर्यप्रह का भाव भी न था। इनकी रचनाओं में विश्वजनीन भावों का अभाव है। सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं ने बेग़बर और लापरवाह होकर इन्होंने धार्मिक काव्य की मूर्ष्टि की और यह धार्मिकता भी धीमे धीमे बिलकरी बन गयी न व्यापक। कृष्ण-काव्य की धार्मिकता शृंगारिकता का पर्याय बनकर रह गई। इनकी आलोचना हम अगले अध्याय में करने चले हैं।

कृष्ण-काव्य का बनेबर किसी समय भी निश्चिन्त नहीं रह सका। कृष्ण-चरित्र पर लिखे गये प्रबन्ध-काव्य बहुत कम हैं। अधिवक्त्र पद और गीत है जो भक्त के हृदय के मुक्तक उद्गार हैं। किसी भक्त ने एक बनेबर मात्र पद लिख डाले तो किसी ने भी दो गीत और किसी-किसी ने पाँच-दस पदों में ही अपनी रचना का भीमन रखा है।

हम यह बता ही चुके हैं कि पदों के स्वरूप में भी कृष्ण-काव्य में विविधता और अनेकानता पाई जाती है। कविता, मय्या, दोहा, चौपाई, पद, गीत, गीति, गद्य प्रकार की कविताएँ कृष्ण-काव्य में मिलती हैं।

### सामान्य भक्ति

हिन्दी में बहुत से ऐसे कवि हुए हैं जो न तो मात्र राम के भक्त थे और न ही मात्र कृष्ण के। वे तो रामकवियों ने कृष्ण-भक्ति के और कृष्णकवियों ने रामभक्ति के पद लिखे, लेकिन इनके अनिरिक्त वे कवि हैं जिन के उपास्य 'भगवान्', 'प्रभु', 'ईश' थे, जिन्होंने अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ और उनके स्तोत्र लिखे और उनमें विनय-प्रार्थना भी की। सरस्वती, शक्ति, भवानी, गौरी, दुर्गा, काली, लीला, आदि देवियों और इन्द्र, यम आदि के लेकर गर-गुरी तब की पूजा और स्तुति एवं विष्णु के अनेक अवतारों, शिव के विभिन्न रूपों, हनुमान आदि अनेक दृष्ट देवताओं की भक्ति का वर्णन मिलता है। नीचैयताओं का साहाय्य भी बलिष्ठ हुआ है। इस प्रकार का बहुत-सा साहित्य प्रत्येक काल में लिखा गया है। किन्तु इसमें एक तो साहित्यिकता की कमी है और दूसरे शैलियों की दृष्टि में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ऐसा अधिकांश साहित्य साँझ-साँझ की कानि में भी धाता है और साँझ-प्रथमिन शैलियों, धूनो, आवा-प्रसंगों तथा प्रकृतियों के अध्ययन के लिए मोक्ष भी है और मन्त्रमूर्त भी।

## शृंगारिक काव्य

भाषायों और कवियों ने बड़े आग्रह के साथ शृंगार को 'रसरस' घोषित किया है। यह कोई नई बात नहीं थी। शताब्दियों पूर्व शृंगार की महत्ता संस्कृत साहित्य में स्वीकार हो चुकी थी। प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य में कर्ण, वीर, शान्त आदि अनेक रसों के साथ इस का मेल उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इस में सन्देह नहीं कि हिन्दी के आरम्भिक युग से अब तक प्रेम-सम्बन्धी प्रबन्ध-काव्य का प्राधान्य क्रमशः घटता गया है और मुक्तक काव्य का प्रयोग बढ़ता गया है, तो भी ऐतिहासिक दृष्टि से और कलेवर में प्रबन्ध (प्रेमादयानक) काव्य अधिक महत्वपूर्ण है।

### प्रेमाख्यान

हिन्दी में रासो ग्रन्थों से प्रेमाख्यानों की परम्परा का आरम्भ माना जा सकता है। पृथ्वीराज रासो में शृंगार ही की अन्तर्भावना व्याप्त है—शौर्य, राजस्तुति और युद्ध-वर्णन यत्र-तत्र मिलते हैं। हम्मीर रासो और बोंसलदेव रासो में प्रोषित-भर्तृ का नायिकाधर्म की प्रेमकथा वर्णित है। इन में प्रेम-सन्देश, पदश्रुति-वर्णन, विरहवेदना, प्रिय के शौर्य की प्रशंसा आदि की रुचिगत शैली ही मिलती है। चारण काल के अन्तिम चरण में मुल्ता दाऊद की 'नूरकचन्दा' की कहानी उपलब्ध होती है।

भक्तिवाद में सूफी कवियों ने अपने गिद्दान्तों की व्याख्या के लिए प्रेमाख्यानक शैली ही को चुना और एक ऐसी परम्परा को बलाया जो आज तक अशुद्ध धनी रही है। उन के काव्यों पर एक बहुत हीना परदा धार्मिकता का है। लौकिक भृंगार का अंगुन ही प्रमुख है। 'सूयावनी', 'मधुमालती', 'पदमावत', 'ज्ञान-दीप', 'इन्द्रावनी' आदि सूफी काव्यों का परिचय पीछे दिया जा चुका है। ये सब प्रेमाख्यान हैं। इन की कथा ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक-प्रचलित अथवा कल्पना-प्रयुक्त नहीं हैं। सूफी कवियों के समानान्तर और प्रायः उन्हीं की शैली में लौकिक प्रेमाख्यान भी लिखे गये हैं जिन में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं—

दाना मामरा दुहा

मदामगनेन-पद्मावनी की कथा दामोदर कवि

मन्यवर्नी की कथा देवदत्तदास

माधवानन्द कामरुद्रनाथ बालम

" " गणपति

" " दामोदर

बिरह वारीन बांधा

रमरतन पुद्गल

द्विनाई पार्थ नारायणदास

प्रेमविनायक प्रेमलता कथा जटमन नाहूर

बभ्रुबुंदरि री बाग हन

ऊरा की कथा रामदास

उषा हृण जीवननाथ नागर

ऊरा-चालि मुरलीदास

नन्दमयवर्नी कथा

प्रेमसंगीतार्थि गुणेश

इन काव्यों की परम्परा सन् १६१२ तक बराबर मिलती है। इन में प्रायः राजाधों के अन्तर्गत के विनायों का उल्लेख है। कुछ में प्रेम विवाह के पक्ष में प्रवृत्ति होती है, कुछ में विवाह के उपरान्त। प्रेम का पारिवारिक पक्ष प्रमाण है। ये काव्य संगीत, कथानिधि और रीति-कवियों के भोग-विनायक में प्रभावित हैं। दामोदर गुण का विशेष अंगन करना इन का एक उद्देश्य है। इन का प्रेम सामाजिक है जो कुछ मानवीय भावनाओं में आधारित है। प्रिया के मिलन का वर्णन गुण का विनायक है। सामान्य प्रेम की एक निष्ठा नहीं दिखाई नहीं देती, मगर विनायक और कविता का अंग है। रीति, विनीत रीति, कविता आदि के वर्णन अन्तर्गत का में लिखे गये हैं। बीच-बीच में अथवा प्रेम के दृष्टान्त भी

मिलते हैं। प्रेम-प्रसुप्तन, संयोग, वियोग आदि के वर्णन में मुसलमानों के सूफी काव्य और हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों में बहुत कुछ साम्य है जिसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। अधिकतर आख्यानों की रचना रीतिकाल में हुई है इस लिए तत्कालीन सोवहचि की छाया उसी प्रकार मिलती है। उस युग के सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विश्वासों, रीति-रिवाजों और स्तरों का वास्तविक चित्रण मिलता है। एक बात विशेषतः उल्लेखनीय है कि शृङ्गारिकता की अधिकता रहते हुए भी इन आख्यानों में गार्हस्थ्य जीवन की महत्ता और सामाजिक नियमों की रक्षा का ध्यान रखा गया है। यही नहीं, हिन्दू-मुसलिम एकता और सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न भी किया गया है। कई आख्यानों में बड़े सुन्दर नीति पद मिलते हैं। श्लील और अश्लील का प्रश्न उठाना उचित न होगा, क्योंकि ये काव्य हैं ही प्रेम-काव्य—इस दृष्टि से कहीं-कहीं अवश्य नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन हो गया है। समता है कि उस युग में रति के अनादृत वर्णों अश्लील नहीं समझे जाते थे। अनेक कथाओं का पर्यवसान सन्यास अथवा आध्यात्मिक जीवन में होता है। जिन में समाप्ति पर मिलन होता है, उन में भी आध्यात्मिक मकान मिल जाते हैं।

रीतिवादी आख्यानों में नायक-नायिका के वर्णन में एव भावानुभावों के मयोजन में रीतिबद्ध संस्कारों की छाया मिलती है।

बीररस शृङ्गार का सहायक होकर रहता है। अलंकारों में वही पिटे पिटाये उपमान हैं—कोई विशेष मौलिकता नहीं है। छन्दों के अन्तर्गत दोहा, चौपाई (छाठ अठ्ठाली के बाद एक दोहा), छप्पय, ब्रोटक पदरि, भुजङ्गी, घटन, मारदूल, गाथा, तोमर, कवित्त, कुण्डलिया, सर्वैया और सोरठा प्रयुक्त हुए हैं।

प्रेमाख्यान हिन्दी प्रदेश की कई बोलियों में उपलब्ध है—संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी, शुद्ध अपभ्रंश, साहित्यिक द्विगल, राजस्थानी, अवधी, ब्रज एवं अवधी-ब्रज मिश्रित खड़ी बोली में। भाषा की इस विविधता के कारण इन आख्यातिक काव्यों का महत्त्व अमंदिग्य है।

### मुक्त प्रेम-काव्य

प्राचीन परम्परा की मुक्तक कविता पर विचार करने वालों का कहना है कि भारम्भ में शृङ्गारिक रचनाएँ प्राकृत में लिखी गई थी, और बाद में संस्कृत में भी लिखी जाने लगी। पहले भी संस्कृत-साहित्य में इनकी मात्रा कम न थी, पर अब इन्हें प्रमुख स्थान मिलने लगा। सब से पुराना शृङ्गारिक काव्य हाल-कवि की 'गाथा सतसई' है जो सन् ईसवी के प्रथम शतक के आस-पास लिखी



गई थी और जिस में नित्य प्रति के ऐहिक जीवन के छोटे-छोटे चित्र संकित हैं। हाल ने प्रेमिका की रसमयी शीड़ाओं, झहीर और झहीरियों की प्रेम-गाथाओं, ग्रामवपुटियों की बाम-चेष्टाओं, सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी भावों और हृदय की उछल-फूट का सरस वर्णन किया है। दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में इसी विषय का विस्तरेषणात्मक अध्ययन उपस्थित किया था।

'मत्तमई' के आधार पर रचिन मस्वृत के दो शृंगारी मुक्तक प्रथम प्रसिद्ध हैं—'अमरक का 'अमर दातक' और गोवर्धन की 'भार्या सप्तमनी'। परन्तु इन में भारतीय ग्राह्य जीवन का वह सहज गौन्दर्य नहीं है। इन में कृत्रिमता और अलंकरण की प्रधानता है। मस्वृत के 'शृंगार तिलक', 'घटकपर्', 'शृंगार दातक' को कुछ-कुछ उगी परम्परा में गिना जा सकता है। मस्वृत में अनेक स्तोत्र मिलते हैं जिन में रचिन के साथ शृंगार श्रोत-श्रोत मिलता है। जयदेव के 'गीतगोविंद' में यही बात कुछ उभर कर आती है।

चन्द के समय तक मस्वृत और प्राकृत में शृंगारिक ग्राह्य प्रीतिता की प्राप्ति हो चुका था। अथधन में भी झहीरो की प्रेम-कथाओं की धारा चल पड़ी थी। हिन्दी ने इन भाषाओं की तत्कालीन पद्धति को अपनाया। इन पर फारसी का प्रभाव भी पड़ा। तुगरो ने अपनी रचनाओं में उगी नग्नता का प्रदर्शन किया जो फारसी-ग्राह्य का विशेष गुण है। रीति-परिपाटी भी बहुत पहले से छा रही है। हिन्दी में विद्यापती ने जयदेव का अनुसरण करने हुए नायर-नायिकाभेद, नगनिग, ऋतु-वर्णन, दूती-विज्ञा, अभिचार आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। मवत् १५६८ में रम-निरूपण सम्बन्धी 'हितनरिणी' नामक प्रथम शृंगार-रम का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी समय के लगभग मोहनदास मिश्र का 'शृंगार सागर' मिलता है। मवत् १६३० के लगभग अथधन मिश्र ने 'नगनिग' प्रथ की रचना की जिसमें नायिका के चर्चों का वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार किया गया है। हम यह कह सकते हैं कि तुगरो और मूर तथा उनके परवर्ती वैष्णव कवियों ने भी शृंगार-रम के भावानुभावों पर स्वतन्त्र रचना की है। ग्रीष्म और नन्ददास ने भी नायिका-भेद पर स्वतन्त्र रचना की है। केवल इस समय के सर्व-प्रसिद्ध शृंगार कवि हैं। परन्तु इनका चरमोत्थ प्रयास है, हृदयस्थ वदन्, शीघ्र है। 'रमिक-प्रिया' तथा 'वरि-प्रिया' दोनों में रीति का समन्वय बहुत अधिक है। हिन्दी-ग्राह्य में शृंगारिका का प्रकट रूप उनके १० वर्ष बाद बना—पिर भी रहीम, मुबारक, मेनारत और पुरखर कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा यह प्रणाली बना ली थी जिस पर अनवरत अनवरत, अनिराम, धामम, देव, दास,

पचाकर, ठाकुर और आपुनिक काल में रत्नाकर ने हिन्दी-साहित्य को इतना ऊँचा किया।

### रीति कालीन शृङ्गारिकता

मवत् १७०० से १८०० तक जितना हिन्दी-साहित्य लिखा गया, उसमें शृङ्गार का साम्राज्य था, चाहे वह साहित्य वैष्णव-पद्धति पर लिखा गया और चाहे वीरगाथा-पद्धति पर। नीतिवारों की रचनाओं में भी शृङ्गारिकता का समावेश पाया जाता है। अफवाह बहुत कम है। इस युग के साहित्य में शृङ्गार की प्रतिशयता के अनेक कारण थे। यह युग विलास का युग था। मुगल साम्राज्य मुहम्मद शाह रंगीला जैसे बादशाहों के सुखभोगानिवार के कारण जर्जर हो गया था। हिन्दू जीवन राजनैतिक परामर्श के कारण जर्जर था। आध्यात्मिक विश्वास शिथिल हो गया था। जीवन की समस्त प्रवृत्तियाँ घर की चहार-दीवारी में घिर गईं और नारी उन प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गई। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। हमारी साहित्यिक परम्परा भी इसी प्रकार का प्रभाव लेकर बड़ रही थी। संस्कृत और प्राकृत की मुक्त काव्य-परम्परा तो थी ही, प्रारम्भी संस्कृति और साहित्य की शृङ्गारिकता भी अब तो सामने थी। भक्तिकाल की माधुर्य भावना ने हमें लोक-लाज से मुक्त कर दिया था। इस समय तब देश-दशा में परिवर्तन हो गया था। विदेशी आक्रमणों का अन्त हो गया था। शांति और समृद्धि के वातावरण में विलासिता बढ़ने लगी थी। जहाँगीर और शाहजहाँ के आधिपत्य में व्यवस्थित शासन का प्रारम्भ हो गया था। शांति और समृद्धि के वातावरण में विलासिता बढ़ने लगी थी। 'राधा-कृष्ण' ने रतिवर्णन की प्रचुर सामग्री जुटा दी थी। ज्ञान और भक्ति ने मनुष्य की एक महत्वपूर्ण भावना को दबा रखा था—ममय पाकर वह भावना उमड़ पड़ी। धार्मिकता में बहुत विश्वास न रह गया था। आध्यात्मिक प्रेम का स्थान भौतिक प्रेम ने ले लिया था। इसके साथ ही कला का व्यापक विकास हो रहा था। चित्रकला, संगीतकला, वास्तुकला और काव्य-कला का सब दिशाओं में प्रोत्साहन हुआ। रस और अलंकार पर पाण्डित्यपूर्ण विवेचना होने लगी। रस और अलंकार के निरूपण में रसराज शृङ्गार का स्थान निश्चित था। इस काल के अधिकतर कविसंस्कृत के पंडित थे—उन्होंने संस्कृत शैलियों का पूरी तरह अनुसरण किया। संस्कृत का उत्कृष्ट और सरस साहित्य तथा काव्यशास्त्र शृङ्गार-रस-प्रधान था ही, हिन्दी में रीति के साथ-साथ शृङ्गारिकता का पुनर्जीवित होना स्वाभाविक था। इस युग के अधिकांश कवि किसी न किसी राजा या नवाब के दरबार में आश्रित थे। इन राजा-नवाबों का दृष्टिकोण सीमित था। उन्हें अपने दरम और

गई थी और जिस में जिस प्रति के ऐहिक जीवन के छोटे-छोटे चित्र अंकित हैं। हान ने प्रेमिका की रमयों श्रीदासों, अहीर और यहीरियों की प्रेम-गाथाओं, ग्रामवधूटियों की काम-चेष्टाओं, सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी भावों और हृदय की उध्वन-कूद का सरम वर्णन किया है। दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में इसी विषय का विदलेषणात्मक अध्ययन उपस्थित किया था।

'मत्तमई' के आधार पर रचित मस्कृत के दो शृंगारी भुक्तक प्रथम प्रसिद्ध हैं—प्रथमक का 'अमरु शतक' और गोवर्धन की 'आर्या मन्थनी'। परन्तु इन में भारतीय गाहंस्थ जीवन का वह सहज मौन्द्य नहीं है। इन में कृत्रिमता और झलकण की प्रधानता है। मस्कृत के 'शृंगार तिलक', 'घटवर्ण', 'शृंगार शतक' को कुछ-कुछ उन्नीसवीं शताब्दी में गिना जा सकता है। मस्कृत में अनेक स्तोत्र मिलते हैं जिन में मन्थन के साथ शृंगार धोन-धोत मिलता है। जयदेव के 'गीतगोविन्द' में यही बात कुछ उमर कर आती है।

चन्द के समय तक मस्कृत और प्राकृत में शृंगारिक साहित्य प्रौढता को प्राप्त हो चुका था। अपभ्रंस में भी अहीरों की प्रेम-कथाओं की धारा चल पड़ी थी। हिन्दी ने इन गाथाओं की तत्कालीन यदति को अपनाया। इन पर फारसी का प्रभाव भी पड़ा। तुसरो ने अपनी रचनाओं में उसी तमना का प्रदर्शन किया जो फारसी-साहित्य का विशेष गुण है। रीति-परिपाटी भी बहुत पहले से आ रही है। हिन्दी में विद्यापती ने जयदेव का अनुसरण करते हुए नायक-नायिकाभेद, मन्थन, शृंगार-वर्णन, दूती-दिक्षा, अभिमार आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। सन् १५६८ में रस-निरूपण मन्त्राली 'हितहरिणी' नामक ग्रंथ द्वारा रस का ही विस्तार में वर्णन किया गया है। इसी समय के मगध मोहनदास मिश्र का 'शृंगार मागध' मिलता है। संवत् १६३० के जयभग बलभद्र मिश्र ने 'मन्थन' ग्रंथ की रचना की जिसमें नायिका के शरीर का वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार किया गया है। हम यह कह सकते हैं कि तुसरी और मूर तथा उनके परवर्ती वैष्णव कवियों ने भी शृंगार-रस के भावानुभावों पर स्वतन्त्र रचना की है। शहीम और नन्ददास ने भी नायिका-भेद पर स्वतन्त्र ग्रंथ लिखे हैं। वेशव इस समय के सर्व-प्रसिद्ध शृंगारी कवि हैं। परन्तु इनका कलापत्र प्रधान है, हृदयपत्र बहुत हीन है। 'रंगक-प्रिया' तथा 'कवि-प्रिया' दोनों में रीति का चमत्कार बहुत अधिक है। हिन्दी-साहित्य में शृंगारिता का अटूट तम उनके ५० वर्ष बाद बना—फिर भी रहीम, मुबारक, मेनारिन और पुहकर कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा वह प्रणाली बना ली थी जिस पर चलकर धनानन्द, अनिराम, आनन्द, देव, दास,

पदाकर, टाकुर और आधुनिक काल में रत्नाकर ने हिन्दी-साहित्य को इतना ऊँचा किया ।

### रीति कालीन शृङ्गारिकता

संवत् १७०० में १८०० तक जिनका हिन्दी-साहित्य लिखा गया, उनमें शृंगार का साम्राज्य था, चाहे वह साहित्य वैष्णव-मदनि पर लिखा गया और चाहे बीरगाथा-मदनि पर । नीतिकारों की रचनाओं में भी शृंगारिकता का समावेश पाया जाता है । भ्रष्टाचार बहुत कम है । इस युग के साहित्य में शृंगार की अतिमयता के अनेक कारण थे । यह युग बिलास का युग था । मुगल साम्राज्य मुहम्मद शाह रंगोला जैसे बादशाहों के सुखभोगानिचार के कारण जर्जर हो गया था । हिन्दू जीवन राजनैतिक पराभव के कारण जर्जर था । आध्यात्मिक विश्वास शिथिल हो गया था । जीवन की समस्त प्रवृत्तियाँ घर की बहार-दीवारी में पिर गई और नारी उन प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गई । इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ता अनिवार्य था । हमारी साहित्यिक परम्परा भी इसी प्रकार का प्रभाव लेकर श्रद्धा खो गई थी । संस्कृत और प्राकृत की मुख्य काव्य-परम्परा तो थी ही, प्रारम्भी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता भी अब तो सामने थी । भक्तिकाल की माधुर्य भावना ने हमें मोह-लाज से मुक्त कर दिया था । इस समय तक देव-दशा में परिवर्तन हो गया था । विदेशी आक्रमणों का अंत हो गया था । जहाँगीर और शाहजहाँ के आधिपत्य में व्यवस्थित शासन का प्रारम्भ हो गया था । शांति और समृद्धि के वातावरण में बिलामिता बढ़ने लगी थी । 'राधा-कृष्ण' ने रतिवर्णन की प्रचुर सामग्री जुटा दी थी । ज्ञान और भक्ति ने मनुष्य की एक महत्त्वपूर्ण भावना को दबा रखा था—ममय पाकर वह भावना उमड़ पड़ी । धार्मिकता में बहुत विश्वास न रह गया था । आध्यात्मिक प्रेम का स्थान भौतिक प्रेम ने ले लिया था ।

इसके साथ ही कला का व्यापक विकास हो रहा था । चित्रकला, संगीतकला, वास्तुकला और काव्य-कला का सब विकास हो रहा था । रस और अलंकार पर पाण्डित्यपूर्ण विवेचना होने लगी । रस और अलंकार के निरूपण में रसराज शृंगार का स्थान निश्चित था । इस काल के अधिकांश कवि संस्कृत के पंडित थे—उन्होंने संस्कृत शैलियों का पूरी तरह अनुकरण किया । संस्कृत का अन्वृष्ट और सरस साहित्य तथा वाक्यशास्त्र शृंगार-रस-प्रधान था ही, हिन्दी में रीति के माध्यम-साथ शृंगारिकता का पुनर्जाँवित होना स्वाभाविक था ।

इस युग के अधिकांश कवि किसी न किसी राजा या नवाब के दरबार में आश्रित थे । इन राजा-नवाबों का दृष्टिकोण नैमित्तिक था । उन्हें अपने हरेम और

दरबार के बाहर किसी बात की चिन्ता न थी—भ्रतएव उनकी संरक्षता में रहने वाले कवियों में विलासिता का होना आवश्यक था। कविगण धन और यश के भ्रजन में अधिक लीन थे। धन-बुबेरो को प्रसन्न करना उनका ध्येय था। उनमें साहित्यिक स्वतन्त्रता कहाँ ?

इस समय की साहित्यिक भाषा वज्रभाषा थी। भाषा का इतना परिमार्जन हो गया था कि उसमें कलाचातुर्य का प्रदर्शन करना ही कवि का एक मात्र कर्तव्य समझा गया। कविता जीवन की संदेश-वाहिनী न होकर भाषा-सौंदर्य, श्लोक-योजना और मनोरंजन की परिधि में बन्द होकर रह गई।

इस युग की शृंगारिक रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है। हम केवल प्रतिनिधि और प्रसिद्ध-काव्यों का ही उल्लेख कर सकेंगे।

प्रतिनिधि      भासम—‘भासम-कैलि’।

रचनाएँ      धनानन्द—‘सुजान-सागर’, ‘विरह-लीला’, ‘रसकैलिबल्ली’ इत्यादि।

बिहारी—‘बिहारी-सतसई’।

मतिराम—‘ललितलताम’, ‘रसरज’, ‘मतिराम सतसई’।

शभुनाथ—‘नायिका-भेद’, ‘नखशिख’।

रसनिधि—‘रसनहजारा’।

सुखदेव मिश्र—‘फाजिल-अली-प्रकाश’, ‘रसार्णव’।

कालिदास त्रिवेदी—‘धर-वधू-विनोद’।

राम—‘शृंगार-सौरभ’।

देव—‘भाव-बिलास’, ‘अष्टयाम’, ‘प्रेम-तरंग’, ‘प्रेमचन्द्रिका’, ‘नख-सिख’, ‘प्रेमदर्शन’, ‘जातिविलास’, ‘राधिका-विनास’ इत्यादि।

श्रीपति—‘काव्य-सरोज’ इत्यादि।

उदयनाथ बलीन्द्र—‘रस-चन्द्रोदय’।

गजन—‘कमरुद्दीनता ह्रसास’।

दाम—‘रससारास’, ‘शृंगारनिर्णय’।

बोधा—‘विरह-वारीश’, ‘इरकनामा’।

राजा मुरदत्तसिंह ‘भूपति’—‘सतसई’।

सोपनिधि—‘मुमानिधि’, ‘नयशिख’।

रंगलोन—‘अमरपण’।

रघुनाथ—‘काव्य-कलापर’।

दूनह—‘कविकुल-कंठाभरण’।

देवकीनन्दन—‘शृंगार-चरित्र’, ‘नखशिख’।

- बेनी प्रवीन—'नवरस-तरंग' ।  
 यशोदानन्दन—'वरवै नायिका-भेद' ।  
 पद्माकर—'जगद्गिनोद' ।  
 ठाकुर—'ठाकुर-शतक' ।  
 प्रतापसिंह—'शृंगार-मञ्जरी', 'शृंगार-शिरोमणि' ।  
 रामसहायदास—'राम-सतसई' ।  
 पञ्चनेस—'पञ्चनेस-प्रकाश' ।  
 द्विजदेव—'शृंगार-वत्सीसी', 'शृंगार-लतिका' ।

इनके प्रतिरिक्त बेनी और नैवाज के फुटकर बरिक्त प्रसिद्ध हैं । कुलपति मिथ, मूरति मिथ, ग्वाल, चन्द्रशेखर और पञ्चनेस के 'नखशिखर' भी अर्द्धे काव्य-ग्रन्थ हैं । रीति-काव्य के जिन कृष्ण-कवियों का उल्लेख हमने पिछले प्रकरण में किया है उनकी कविताओं में भी शृंगार-रस प्रधान है—परन्तु शृंगारिकता भक्ति की प्रेरणा से प्रगट हुई है ।

१—हिन्दी कविता का सर्वप्रथम अलौकिक विषय रहा है श्रीकृष्ण और उसकी विभूति । इसी प्रकार प्रथम लौकिक विषय है पुरुष और प्रकृति । एक विषय का प्रतिपादन भक्त-कवियों ने किया है और दूसरे का शृंगारी कवियों ने । राधाकृष्ण का वह रूप जो प्रकृति और पुरुष का प्रतीक है और जो लौकिक सौंदर्य तथा प्रेम का आदर्श है, वैष्णव-कवियों ने उपस्थित कर दिया था । भौतिकवाद के विकास के साथ-साथ कृष्ण की जगह साधारण नायको, राधा के स्थान पर अनेक प्रकार की नायिकाओं और अभिसारिकामों, और गोपियों की जगह दूतियों का समावेश होने लगा । संवत् १७०० से १६०० तक की रचनाओं में राधा और बृन्हाई तथा सामान्य नायिका और नायक के भौतिक प्रेम का समान रूप से वर्णन होने लगा । शृंगारिकता पराकाष्ठा तक पहुँच गई ।

वैसे तो इस युग के कवियों ने लक्षण-ग्रंथों का निर्माण करते हुए सब रसों पर काव्य-रचना की है, परन्तु सबने शृंगार की रसरत्न मानकर और इसकी व्यापक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर शृंगार-रस का ही विस्तार से वर्णन किया है । हाँ, गिनने के लिए दूसरे रसों का एकाग्र उदाहरण देकर बरिक्त-वर्म को पूरा कर लिया है ।

शृंगार की सब दशाओं पर साहित्य लिखा गया है । देव, विहारी, मतिराम, पद्माकर, नैवाज, ग्वाल, बोधा आदि सभी कवियों ने संयोग-शृंगार का वर्णन किया है । देव का संयोग-वर्णन अनूठा और सजीव है । परन्तु केशव से लेकर द्विजदेव तक किसी बरिक्त में भी संयोग नहीं है । सब ने रति-प्रीति का मुँह सन्नों

में चित्रण किया है। इन कवियों की कृतियों में सैकड़ों पद्य उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें अदलीलता नग्न रूप में नाच रही है। सभोग-शृंगार का जैसा 'साहित्यिक' वर्णन हिन्दी में हुआ है वैसा आस्य किसी अन्य भाषा में न मिल सकेगा।

विमोघ-शृंगार का वर्णन बिहारी और घनानन्द में सर्वश्रेष्ठ है। बिहारी का विरह-ताप और विरह-लीनता का वर्णन अत्यंत मार्मिक है, इसमें वह सहृदयता और अनुभूति है जो बहुत कम कवियों में पाई जाती है। परन्तु बिहारी में बाहरी व्यापार अधिक हैं—घनानन्द में गूढ़ अंतर्दशा का चित्रण मिलता है। बिहारी की अतिशयोक्ति का पाठक पर प्रभाव नहीं पड़ता। सच्चाई और भाव-स्पष्टता में भतिराम, देव और पद्माकर भले ही बिहारी से अधिक सफल हुए हों परन्तु वियोग अनुभूति, कल्पना और भावगंभीरता की दृष्टि से बिहारी सर्वश्रेष्ठ है।

२. शृंगारिकता के प्रचार का मुख्य साधन या हिन्दी-साहित्य में परकीया नायिका के स्वरूप का आविर्भाव। स्वकीया-निष्ठ प्रेम की पावन प्रणाली 'राम-चरित-मानस', 'पद्मावत' इत्यादि प्रबन्ध-काव्यों तक ही चल पाई थी। परकीया नायिका पर शृंगार को आधारित करना आचार्यों ने एक दोष माना था, परन्तु कृष्ण-कवियों ने गोपी-कृष्ण के प्रेम में किसी दोष की कल्पना नहीं की। आगे चल कर शृंगारी कवि सब नर-नारियों को नायक-नायिका के रूप में देखने लगे। उनके लिए कृष्ण से लेकर नटयू-कल्लू तक सब नायक थे और राधा से लेकर रधिया-जगिया तक सब स्त्रियाँ नायिका थीं। देव ने 'जातिविलास' में नाइन-घोबिन को भालंबन बनाया है। बिहारी ने परकीया के जितने रूप और उपादान थे सबके उदाहरण दिये हैं। कालीदाम त्रिवेदी, राम बीर, सिवसहाय, महाराज रामसिंह, बेनी प्रवीण, यद्योदानन्द, प्रतापसिंह, दास, भतिराम, पद्माकर सब ने नायिकाओं और भूमिसारिकाओं के भेदों और कृत्यों पर काव्य-रचना की है। इनके साथ नायिकाओं के अयज (भाव, हाव, हेमा), अत्यज (सोमा, कान्ति, माधुर्य, दीप्ति, प्रगल्भता, ओदार्य, धैर्य), तथा स्वभावज (मीला, विलास, विच्छिन्ति, विभ्रम आदि) अलंकारों तथा विविध संचार्यादि भावों का आश्रय लेकर कवियों ने बहुत कुछ लिखा है।

दूतियों पर भी पर्याप्त साहित्य मिलता है।

नायक की अवस्थाओं में इतनी विविधता नहीं दिखाई गई है जितनी नायिका की। अधिकतर नायक व्याधिग्रस्त ही हैं—कोई इधर पड़ा तड़प रहा है, कोई अवनत हो रहा है, कोई निर्जीव सा ग्याट पर पड़ा है। ऐसे नायकों ने पाठक

उज्ज में जाते हैं। नायिकाओं में विचित्रता अवश्य है, परन्तु साहित्य में बार-बार उन्हीं जानी पहचानी नायिकाओं को पाकर उस आनन्द, रमणीयता अथवा सहृदयता का अनुभव नहीं हो पाता जो नवीनता और मौनिकता का अपना लक्षण है और जिसके कारण ही साहित्य सफल कहला सकता है। समूचा नायिकाभेद का साहित्य 'नाट्यशास्त्र' के एक सामान्य अंग का भाग बनकर रह गया है।

शृंगारी कवियों ने नायक-नायिकाओं का अनर्शालन अत्यन्त द्रुपित और मञ्जुचित दृष्टिकोण से किया है। उनको प्रायः सभी नायिकाएँ व्यभिचारिणी हैं। उनके लिए "जैसा ब्रता घर रहे तैसे गये बिदेस"। वे तो मर्यादा और शोक-लज्जा को भाङ्ग में शोककर अपने प्रेमी से मिलने जाती हैं। प्रायः वे कुठजो से या नालो के लोहों में रातें बिताती हैं। वे किसी छलिया से आँखें सझाने को उत्सुक हैं। वे तरह-तरह के इशारे करने में प्रवीण हैं। नायक भी परसे दत्रों के लुच्चे हैं। वे गन्ने की चोरी का अभियोग लगा कर तलाशी लेने के बहाने परकीया स्त्रियों के सरोज टटोल लेते हैं, घाँस-मिचौनी का खेल करते-कहते उनके कपोल पर धुटकी दे जाते हैं, साबरी गली से गुजरते हुए उन्हें धक्का दे देते हैं। होली में गुलाल लगाने के बहाने अपनी बहुत-सी मनोकामनाएँ पूरी कर लेते हैं, इत्यादि। यह ही सकता है कि तत्कालीन समाज ऐसा ही हो।

३. नायिका शृङ्गार-रस का आलम्बन है। इस आलम्बन के अंगों का वर्णन मय शृंगारी कवियों ने किया है। बेनी, मुलपति, कालीदस विवेदी, मूर्तिमित्र तोरनिधि, चरन, श्याम, देवकीनन्दन, चन्द्रशेखर, पञ्चनेम आदि अनेक कवियों ने नल-विश्व पर स्वतन्त्र अंगों की रचना कर डाली है। एक कवि ने 'अलव-शतक' लिख कर इस प्रकृति का कमाल दिखा दिया है—केवल अलकों पर मो पद लिखे हैं। हिन्दी-साहित्य नल-विश्व वर्णन के लिए प्रसिद्ध है।

हिन्दी कवि जीवन काल में प्रविष्ट नारी की सौन्दर्य-अभा का वर्णन करते-करते थकते ही नहीं। उन्होंने प्रेमिका के अंग-अंग की नज़ाबत दिखाने में अपनी कलम तोड़ दी है।

नयनों का शृङ्गारिक प्रभाव माना हुआ है। नीच, उत्साह, हृष्य, घृणा आदि भाव नयनों द्वारा व्यक्त होते हैं। नयनों की भाषा जानना प्रेमी के लिए आवश्यक है। नयनों के द्वारा हृदय के मामो को व्यक्त करने की परिपाटी का कवियों के जगन में बहुत पुराने समय से व्यवहार होता आया है। सञ्जय-नयन कोनूत-पूर्ण विलास का भावप्रगट करने हैं, शफरी-नयन अस्थिरता का, हरिष-नयन सरन माधुर्य का और वसन-नयन धैर्य और शांति का। स्त्रियों के नयनों में जो



चञ्चलता है वह मीन से उपमा देकर प्रगट की गई है। इस प्रकार उपमाओं का अन्त नहीं। नेत्रों के कटाक्ष की उत्तम से उत्तम उपमाएँ हिन्दी-साहित्य में मिलती हैं।

भीहें कामदेव के घनुग, कामदेव के सङ्ग के म्यान और भीरे के पंख के समान बताया गई है। पुरपो के झूयुगल का आकार निम्बपत्र के समान बताया गया है।

बान के विषय में बहुत ने कवि चुप है। उन्होंने कणंकूल और कणंभूपण की प्रशंसा अवश्य की है। कानों की राग के रमणपत्र, शोभा के भवन, लाज के नेत्र और मन के मन्त्री कहा गया है।

नाक की उपमा तिन के फूल से अथवा सुवे की जोच से दी गई है।

अधर प्रवृत्ति में शिम्बकम के समान सरस और रक्तवर्ण हैं, कोमलता में पल्लव के समान और वर्ण में प्रवाल के समान।

कर और पद के लिए पल्लव और कमल उपमान माने गये हैं। अगुली शिखीफल के तुल्य होती है। कठ सप्त के ऊर्ध्व भाग सा है। कमर को मुदरी-तुल्य, मिथार-समान, मृणाल के तार-सी, बाल से भी बारीक, ४ के घंफ के समान कृश और क्षीण बताया गया है। बिहारी ने कमर का लोच ही मान लिया है। कमर की कोमलता यहाँ तक बढ़ गई है कि वह यात्रों के भार से अथवा कुचों के बोस से बल जाती है। कमर शृंगारिक भावनाओं को जागृत करने का साधन मानी गई है।

इसी प्रकार चिबुक, तिल, कंधे, कुच, एड़ी, वक्षस्थल, सब घगो पर स्वाभाविक और अस्वाभाविक हर तरह की उपमाएँ कल्पित की गई हैं।

नायिका का बाह्य रूप अंकित करने में कवि को इतनी कठिनाई नहीं होती जितनी मनोविकारों के कारण रूप की अचञ्चलता को अंकित करने में। हमारे शृङ्गारी कवियों-द्वारा उपस्थित किया हुआ मनोविकारों का अनुसूचित मनोवैज्ञानिकों के विदलेपन में भी न मिलेगा। अनुभाव की योजना में जितनी गूढ़मत्ता इन कवियों ने दिखाई है उतनी कहीं नहीं मिलती। उदाहरण के लिए शोध के प्रभाव को देते। अगरेजी कवियों ने शोध की दशा में प्रायः मुख का लाल रंग तथा उग्र वचन कहने आदि का ही वर्णन किया है। किन्तु हिन्दी के कवियों में नेत्रों के लाल होने, मूकियों के मियने, नयनों के फूल जाने, ओठों के फटने, माथे पर सिक्कुडन पड़ने, पैर पटकने, श्वास मलने और शरीर कापने इत्यादि अनेक अनुभावों का विस्तृत विवरण दिया है। शृंगारी कवियों का निरीक्षण और कौशल प्रशंसनीय है।

४. बाह्य मौर्दव्य में शृंगारी कवियों का अनुवर्णन भी एक प्रधान विषय

है। प्राचीन हिन्दी-काव्य में प्रकृति का उपयोग तीन रूपों में हुआ है अर्थात् आलम्बन, उद्दीपन और उपमान या अपस्तुत। आलम्बन के रूप में प्रकृति-वर्णन बहुत थोड़ा हुआ है। सेनापति और पद्माकर में एकाध कविता ऐसा अवश्य मिल सकता है जिस को स्वतंत्र रूप से पढ़ने पर उद्दीपन-विभाव को झलक नहीं पड़ती। प्रायः सभी कवियों ने प्रकृति का वही रूप उपस्थित किया है जिससे चासनामय प्रेम-वृत्ति के उद्दीपन में सहायता मिल सके। शिशिर हो ग्रथवा ग्रीष्म, वर्षा हो ग्रथवा वसंत, विरह-वेदना को बढ़ाने में सब में साधन पाये जाते हैं। सभी थोष्ट कवियों ने प्रकृति और मानव-हृदय के बीच में आत्मीयता का अनुभव किया है। वर्षा-काल में वादलों की गरज प्रवासी प्रेमी को अपनी विरहिणी प्रेमिका का सन्देश देती हुई उसे घर लौट जाने को प्रेरित करती है। मैघों के उठते ही विरहिणी के हृदय में एक अनिर्वचनीय वेदना होने लगती है। शरद् ऋतु में कमल खिलते हैं तो प्रेमियों के हृदय में आशा के फूल खिलने लगते हैं। वसन्त के आते ही प्रेमी-प्रेमिकाओं को महोत्सव मनाने का चाव उठता है। तब कोयल की कूक भाधुरी का संचार करती है, वसन्त की कोमलता कोमल भावों का उद्गार करती है। पद्मस्तुतियों में सयुक्ता-वियुक्ता की जो विभिन्न दशा होती है उसका विशद वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है।

विप्रलम्भ-सम्बन्धी 'वारहमासे' भी कुछ कवियों ने लिखे हैं।

पेड़-पौधों, अनेक प्रकार के फूलों तथा पशु-पक्षियों का वर्णन नायक-नायिका के मीठे-वर्णन में उपमान रूप में भी हुआ है। इससे शृंगारी कवियों के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है। थोष्ट कवियों में वही-वही ऐसी सुन्दर उपमाएँ पाई जाती हैं कि मन आप ही आप 'वाह-वाह' करता हुआ उछलने लगता है।

यह मानना पड़ेगा कि केशव, देव, गतिराम, पद्माकर आदि ने मानुषी प्रकृति का जितना विशद और सफल वर्णन किया है, उतना सांसारिक प्रकृति का नहीं। कारण यह है कि इस युग के अधिकांश कवि राजदरबारों में ही रहते थे। भारत की पार्वत्य उपत्यकाओं, निर्झरगिरियों, सरिताओं आदि का स्वच्छन्द सौंदर्य उन्हें कहीं दिखाई देता। उन्होंने जहाँ कहीं वन, उपवन, नदी, तड़ाग आदि का वर्णन किया है, सफलता कम मिली है। प्रकृति की अनेकरूपता तथा उसके गूढ़ रहस्यों के प्रति अधिकतर शृंगारी कवि उदासीन रहे हैं। कवि-कर्म तो सबने किया है और घर बैठे स्वाभाविक-अस्वाभाविक प्रथा-पालन करने के लिए वस्तु-परिगणन अवश्य किया है। ये लोग प्रकृति का जीवित-जामृत तथा स्फुटित रूप उपस्थित न कर सके। इनके हाथों में पड़ कर प्रकृति निर्जीव बन कर रह गई।

५. इस युग की शृंगारी रचनाएँ दो प्रकार की हैं—भुक्तक और प्रबंधात्मक। प्रबंध कथात्मक नहीं है, वर्णनात्मक है। मोमनाथ और चंदन ने अच्छे प्रबंध लिखे

हैं। दरबारी कवियों ने प्रवृत्ति नहीं छोड़ा। दरबारी में मुक्तक ही चल सकते थे। उधर उर्फी, नजरी के फारसी-गो शिष्य घेर पढ़ते थे, इधर केशव विहारी की परम्परा से आये हुए हिन्दी-कवि अपना कवित्त, सर्वथा या दोहा पढ़ देते थे। यह युग मुक्तक-काव्य की रचना के लिए बहुत उपयुक्त था।

मुक्तक काव्य में दो प्रकार की शैलियाँ मिलती हैं—एक वह जो रुढ़ि के अनुसार नायिका-भेद और नल-शिशु की परिपाटी का अनुसरण करती रही—केशव, सेनापति, विहारी, मतिराम, देव, श्रीपति, दास, दूबह, पद्माकर आदि की रचना इसी रीति पर अभी है। दूसरी शैली रीति के प्रतिबन्धों से मुक्त और अनुभूति-योजित थी। आलम, रसनिधि, घनानन्द, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव आदि ने स्वतन्त्र रचना की है। इन कवियों में मार्मिकता, वेदना और विचित्रता अधिक है।

रीतिकाल के श्रृंगारिक काव्य की प्रकृति के विस्मरण करने पर हमें ये निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

(क) उस में वासना की अधिकता है।

(ख) उस में नारी का कोई सामाजिक अस्तित्व नहीं है। वह उपभोग्य वस्तु मात्र है।

(ग) प्रेम का आदर्श हीन कीट का है जिस में रसिकता और ऐन्द्रिय भाकपण तो है, पर त्यागमय हृदयपरक भावना नहीं है। इस प्रेम में तरलता है, आत्मा की पुकार कम।

(घ) इस की विषयवस्तु अत्यन्त सीमित और परिबद्ध है। भाष्यारमिक भावना तो लपट हो ही गई थी, इस काव्य में भौतिक जीवन की भी अत्यन्त अष्ट शाकी रह गई। सामाजिक चेतना है ही नहीं।

१. हिन्दी-साहित्य का यह युग जनकार-शास्त्रियों और रसाचार्यों का युग था। इन पर संस्कृत के रीति-ग्रन्थों का प्रभाव रहा। कविता बहुत कुछ रीति-साध

ही गई और उसकी उत्तमता इसी बात में थी कि उनमें छंद और

कलात्मक अलंकारों का समावेश हो। कविता समझने-समझाने के लिए रीति-

ग्रन्थों का विशेषज्ञ होना अत्यन्त आवश्यक था। विहारी, प्रतापसिंह,

मतिराम, देव आदि में अनेक स्थल ऐसे हैं जो रीति की महाप्रता के बिना समझ में नहीं आ सकते। 'नीर भरी गगरी डरकावे' का अर्थ समझने के लिए नायिका-

भेद और ध्वनि-व्यंजना के ज्ञान की आवश्यकता है। प्रिया के पदपात से मसूर का पुष्पित हो जाना,

बग्ननभरे नैनों के बटाख से नीलकण्ठ की पीत विद्य जाना, भापाड़ के प्रथम

दिवस पर मेघ-वर्जन से हग का उत्पटित होना, वषोन्देश की पत्थानी, घाघ्रमंजरी,

मनपानिध, बकवा-बकवो का विरह, चातक पक्षी की कर्पा-किन्दु की उत्सुकता,

चांदनी में चकोर का खरना, हंस का नीर-धीर झलम-झलम करना इत्यादि सैकड़ों रुद्रिप्रस्त कवि-ममयों की योजना कर देने में कवित्व ममज्ञा गया है। ऐसे काव्य में कलापक्ष का प्राधान्य और हृदयपक्ष की न्यूनता होना स्वाभाविक है।

बहुत से शृङ्गारी कवियों ने अपने काव्य की मृष्टि लक्षण-ग्रन्थ लिख कर की है। वे पहले किसी रस अथवा अलंकार का लक्षण दोहरा में कर देने हैं और फिर कवित्व अथवा मयैया में उदाहरण बनाते हैं। परन्तु उनका उद्देश्य लक्षण-शास्त्र लिखने का कभी नहीं था। शास्त्रीय विवेचना बहुत कम कवियों को इष्ट थी। वे तो सस्रणों को कवित्व-प्रदर्शन का बहाना भर ममज्ञने थे। उनके ग्रन्थों ने उनकी कवित्व-शक्ति का ही परिचय मिलता है, आचार्य्यत्व का नहीं। उनके रस और अलंकार के लक्षण प्रायः भ्रामक, अपर्याप्त और अधुद्ध हैं। कई विषय छुड़ तक नहीं गये। रस और काव्य के क्या सम्बन्ध हैं, विभाव, अनुभाव और संचारियों का रस-निष्पत्ति में कहाँ तक सम्बन्ध है, भावाभास, रसाभास इत्यादि क्या हैं, इन विषयों का विवेचन नहीं किया गया। कवियों ने अपनी सारी प्रतिभा और काव्य-शक्ति उदाहरण देने में लगा दी है—कुछ कवियों ने उदाहरण मात्र देकर ही मनोप कर लिया है। बनाया जाता है कि इस युग में बड़े-बड़े काव्यशास्त्री और प्रकाण्ड पंडित हुए हैं, परन्तु उन में एक भी ऐसा नहीं दिखाई देता जिमने काव्य-शास्त्र में कोई मौलिक देन दी हो। केवल और देव जैसे विद्वानों की चिन्ताधारा भी स्पष्ट नहीं है। अतः हमें यह कहने में रती भर सकोच नहीं है कि रीतिवाक्य कहनाते हुए भी रीतिशास्त्र की दृष्टि से इस युग के ममस्त साहित्य का कोई महत्त्व नहीं है। अलवस्तः शृङ्गार का इतना विस्तृत, मनोवैज्ञानिक और गहरा वर्णन न इस में पहले हृषा न बाद में। अतः इतिहासकारों और समीक्षकों को इस साहित्य के 'लक्षण'-पक्ष की उपेक्षा करके भी 'उदाहरणों' का संकलन करना चाहिये और उनमें के कवित्व की प्रकाश में लाने की चेष्टा करनी चाहिये।

२. शृङ्गारी काव्य की भाषा अजभाषा ही रही है। यह याद रहे कि इस युग के बहुत से कवि अजभूमि में पूर्व के शालों के रहने वाले थे। उनकी मानुभाषा अवधी थी। अवधी का प्रभाव बहुत सी रचनाओं में मिलता है और यह प्रभाव अष्ट-कोट तक ही सीमित नहीं, जियाघों के रूप और वाक्य-योजना तक इसमें प्रभावित हुए हैं। फारसी के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। नेवाज, खान और गमनिय ने अत्यधिक फारसी शब्द प्रयुक्त किये हैं। बिहारों के अनेक दोहों में भी उर्दू-प्रयोग मिलते हैं। भाषा के सम्बन्ध में अधिकतर कवि उदार दिवार्द देते हैं। उनका विश्वास है कि " भाव अनुठा चाहिये भाषा कैसिह होय "। शब्दों को मोड़-तोड़ कर लगाने की प्रवृत्ति प्रायः सब में पाई जाती है। पंजाबी और गढ़ी बोली का सम्मिश्रण भी होता रहा है।

भाषा की यह अस्थिरता और अव्यवस्था मतिराम, पद्माकर, दास, बेनीप्रवीण आदि कुछ कवियों की रचना में नहीं है। उनकी भाषा चलती, सरस, साहित्यिक और शुद्ध ब्रजभाषा है। कवीन्द्र, श्रीपति और कृष्ण कवि की भाषा भी मधुर, प्रसादपूर्ण और आदम्बर-रहित है।

विलासपूर्ण जीवन की परिचायक कविता के प्रतीक और उपमान भी विलास के उद्दीपन अथवा उपकरण हैं। उनमें नागरिक जीवन की संकुचित दृष्टि है, प्राकृत जीवन का विस्तार नहीं है। वे रुढ़िबद्ध और निर्जीव से लगते हैं। उनमें न तो मरकृत काव्य के उपमानों की सी विविधता है और न ही ध्यायावादी काव्य का सा सौन्दर्य-बोध है।

इस काल में भाषा की भाव-व्यंजना का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया है। शब्दों का प्रयोग भावानुसार हुआ है शब्दों के संवलन और सुष्ठु प्रयोग में ये कवि विशेष रूप से सावधान रहे हैं। इनके काव्य में कहीं कोई ऐसा शब्द नहीं जो भाष्य गुण के अनुबल न हो। ग्राम्य अथवा समझ प्रयोगों का प्रायः अभाव है। एक ही भाव को अनेक प्रकार से अथवा अनेक भावों को अनेक प्रकार से कहने में ये कवि कुशल थे। उनमें गभीरता, रागात्मकता और चमत्कारिता अधिक है।

३. अलंकारों के प्रयोग में जितनी विविधता शृङ्गारी कवियों ने दिखाई है, इतनी कहीं नहीं मिलती। उनका मन्तव्य है कि 'कविता यनिता रस-भरी, सुन्दर होइ सु लास, बिन भूपन नहि भूपही, यही जगत की माय।' प्रायः कवियों ने प्रयासपूर्वक और सज्जत होकर अपनी भाषा को अलंकृत किया है। सब प्रकार के अलंकार इनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं। बिहारी के एक-एक दोहे में कई अलंकार हैं। अनुप्रास, समक और श्लेष का प्रयोग बहुतों ने किया है। इससे अर्थ में कई जगह बाधा पड़ती है। अत्युक्ति को तो पराकाष्ठा तक पहुँचाया गया है। व्याजन्तुति, व्याजनिदा, उक्तियों के प्रकार, अपह्नुति, भ्रम, उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक, दृष्टान्त और उदाहरण प्रायः सब में देखने को मिलते हैं। हिन्दी में विविध अलंकारों के उदाहरण इन्हीं कवियों की कृतियों से बूढ़-बूढ़ कर लाने पड़ते हैं। इसके बाद अलंकार-योजना नष्ट-प्राय हो गई।

४. छंदों में कवित्त, गर्बया और दोहा का अधिक प्रयोग होता है। घनाक्षरी, छप्पय, तोटक, रोना, बरवे भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं। दोहे में सब से अधिक सफलता बिहारी को प्राप्त हुई है। भूपति, रमनीन, महाराज राममिह, रमनिधि और राममहाय के शृङ्गारी दोहे भी प्रसिद्ध हैं। कवित्त और गर्बया में मतिराम अधिक सफल रहे हैं। इनके अतिरिक्त बेनी, नवाज, कालिदास त्रिवेदी, देव, मूरतिमित्र, कवीन्द्र, रघुनाथ, पद्माकर और ग्वाल ने भी सुन्दर कवित्त और गर्बया किये हैं।

शृङ्गारिक कविता के गुण-दोषों पर निष्पक्ष हो कर विचार किया जाये तो स्वीकार करना पड़ेगा कि यह शास्त्रीय काव्य नहीं है । इसमें अदलीलता भी नहीं-कही खटकती है । कही-कही अस्वाभाविकता भी आ उपसंहार गई है । कवियों ने एक दूसरे के भावों की चोरी भी की है । मोक्षिकता और व्यक्तिगत विशेषता कम है । भाषा में भी कलाबाजी का प्रदर्शन है । यह साहित्य लोक-साहित्य बनने का अधिकार भी शायद नहीं रखता । परन्तु इस साहित्य को तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि पर रखकर पढ़ने से लाभ अवश्य हो सकता है । शृङ्गारी कवियों की रचनाओं को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखना सर्वथा अनुचित है । हम उन आलोचकों को हृदयहीन और हला समझते हैं जो यह कहते हैं कि यह साहित्य गदगी की नाली में बहा देने योग्य है । इन कवियों की सी ईमानदारी, तल्लीनता, मनोवैज्ञानिकता और सहृदयता कही और दुर्लभ है । प्रेम के ऐसे मार्मिक उद्गार और स्त्री-पुरुष के भङ्गुर सन्ध के ऐसे रमणीक प्रसंग किसी और साहित्य में नहीं मिलेंगे । विविध अलंकारों से सुसज्जित उनकी सुन्दर कृतियों पर हिन्दी-साहित्य की गर्व है । जो लोग योरोप के साहित्य पर सट्टा होने की कल-स्वरूप भारतीय कविता को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें हम केवल बिहारी के विषय में डा० ग्रिमर्सन के शब्दों में मुना देना चाहते हैं—

‘बिहारी भारत के चाम्पूसन बहे गये हैं । परन्तु मेरा विचार है कि बिहारी प्रथवा उनके साथ के किसी भारतीय कवि से कोई भी प्रतीच्य कवि तुलना नहीं कर सकता । मुझे तो बिहारी की भी रचना योरोप की किसी भाषा में भी नहीं मिली ।’<sup>१</sup>

इस युग की शृङ्गारिक कविता के कुछ नमूने—  
उदाहरण

( १ )

प्रति मूषो सनेह को मारग है जहाँ नेको सयानप धाँक नहीं ।  
तहाँ साँचे चलें तजि आपनपी सिसकें कपटी जो निसाँक नहीं ॥  
धन धानंद प्यारे सुजान सुनो इत एक तँ दूसरों आँक नहीं ।  
सुम फौन घों पाटी पड़े हो सला मन सेहु पें देहु छटाँक नहीं ॥

(धनानन्द)

इनकी कविता में अनुभूति और कल्पना दोनों हैं । इन्होंने प्रेम और विरह का वर्णन बड़ा मनोहर किया है । इनका भावपथ प्रबल है । कोरे विभावपद का

चित्रण कम हुआ है। प्रेम की गढ़ अन्तर्देशा की व्यञ्जना इनकी विशेषता है। भाषा इनकी व्यञ्जना-शक्ति से पूर्ण है।

( २ )

साज सगाम ॥ मानहि, नेना मो बस नाहि ।  
मे मुंहजोर सुरंग सौ, ऐसन हूँ चलि जाहि ॥  
भौघाई सीसी सुलसि, बिरह बरति बिलसत ।  
बोचहि भुजि गुलाब मो, छोटो छुयो न गात ॥  
तप्यो घाँच अति बिरह की, रह्यो प्रेमरस भीजि ।  
ननन के मय जल बहै, हियो पसीजि पसीजि ॥  
भूपन भार सेभारहि, क्यों यह तनु सुकुमार ।  
सुथो पाँव न घरत सहि, सोमा हो के भार ॥

(बिहारी—सतसई)

बिहारी-मनमई जिसमें ७१६ दोहे हैं शृंगार रस के ग्रन्थों में सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें अवतकाल की दोहा-पद्धति का उपयोग हुआ है। यह कलापूर्ण काव्य है जिस में कवि की अनुपम प्रतिभा और कल्पना का परिष्पट मिलता है। इसकी भाव-व्यञ्जना उत्कृष्ट है परन्तु वस्तु-व्यञ्जना में बही-बही औचित्य का ध्यान नहीं गया गया, कुछ स्थानों की भाषा भी दुल्ह है। अलंकार-योजना रमानुकूल और सुन्दर है।

( ३ )

आपने हाथ मोँ देत महावर आपहि बार शृंगारत नीके ।  
आप नहीं पहिरावन आनि के हार सेंवार के मोलसरो के ॥  
हौं सलि साजन जात गड़ी भतिराम स्वभाव कहत कही पीके ।  
मोग मिले घर घेरे कहै अबही ते मे घेरे भये दुलही के ॥  
केलि की राति आपने नहीं दिन ही में लता धुनि घात लगाई ।  
प्याम सगी कौज पानी दे जाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई ॥  
जेटि पठाई गई दुलही हंसो हेरे हरं भतिराम भुलाई ।  
कान्ह के मोल पे कान न दोहों सु गेह को देहरि पे घरि भाई ॥

(भतिराम)

भतिराम बड़े सरल और विद्वान् कवि थे। आप की कविता का विशेष गुण है जीवन की भाव-भावनाओं का सर्वांगीण चित्रण। स्वाभाविकता और मौलिकता भी आप में पाई जाती है। आप की भाषा प्रौढ़ और गम्य है, अमरार उपयुक्त और उगमनायक मकर है। साधारणतया आप के कविता-समूहों में रहे हैं—  
दोहे भी निम्ने हैं, पर वे बिहारी के कौशल की नहीं पहुँच पाते।

( ४ )

सूरजमुखी सों चन्द्रमुखी को विरामै  
मुख कंदकलीदंतनासा किङ्करी सुषारी सी ।  
मधुप से तोयन मधूक इत ऐसे आँठ  
श्रोफल से कुच कच बेलि तिमारारी सी ॥  
मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषण  
सुखीर गुलचाँदनी सों बंधक की डारी सी ।  
केलि के महल फूलि रही फुलबारी 'देव'  
ताही में उग्यारी प्यारी भूली फुलबारी सी ॥

(देव)

देव की शैली में कोई नवीनता तो नहीं, पर भाषा की उक्तिया और उपमायें अर्वाचा मौलिक हैं। इनमें मूढमदगिता ललित होनी हैं। इन्होंने शुद्ध प्रेम की व्यञ्जना की हैं। स्वकीया नायिका को ये उत्तम कहते हैं। शृङ्गार रस सम्बन्धी नखामित, नायक-नायिका-भेद पटुक्तु-वर्णन आदि इन्होंने अच्छे लिखे हैं। इनकी व्रजभाषा कीमल और सरस है। यह भाषाचमत्कृत और अनहत भी है।

( ५ )

नैनन को तरसंये कहीं सों हिये बिदहनि में तंये ।  
एक घरी न कहूँ कल पंये कहीं सयि प्रानन को कलपंये ॥  
आर्ष यही भव जो में विचार सली क्षतु सीतिहुँ के घर जंये ।  
मान घटे ते कहा घटि है जूँ प्रानपियारे को देखन पंये ॥

(दास)

दास आचार्य थे। इनकी भाषा शुद्ध, साहित्यिक और परिमार्जित है, लब्धा-  
-ढम्बर नहीं है। इनकी कविता कलापक्ष में संयत और अधिकारपूर्ण है और भाव-  
-पक्ष में मनाहर, सरस और रजनकारिणी है।

( ६ )

सोक की साज भी सोक प्रलोक को धारिये प्रीति के ऊपर दोऊ ।  
गाँव को गेह को देह को नानो सनेह में हाँतो करं पुनि सोऊ ॥  
बोधा सुनोति निबाह करं घर ऊपर जाके नहीं मिर होऊ ।  
सोक की भीत डरात जो भीत तों प्रीति के पंडे परे जनि होऊ ॥

(बोधा)

बोधा उन कवियों में थे जिन्होंने रीतिग्रंथ न लिख कर स्वतंत्र रूप से शृङ्गा-  
-रिक कविता लिखी है। प्रेम की व्यञ्जना इन्होंने बड़ी सुन्दर और मानिक रीति  
में की है। भाषा इनकी खलती हुई और भृङ्गवेदार है। कही-कहीं फारसी के



पद भी इसमें मिलते हैं, और कहीं-कहीं पूर्वी प्रयोग भी पाये जाते हैं। इनका वाक्य-विन्यास सरस, सुव्यवस्थित तथा ललित है।

( ७ )

सौतिन-मुख नितिकमल भो, पिय-चल भये चकोर ।  
गुहजन-मन सागर भये, लखि, दुलहिनि मुख और ॥  
खल चलि खवन मिल्यो चहत, कच बड़ि छवन छवानि ।  
कटि निज दरय धरयो चहत, यसस्यस . मे जानि ॥

(रसलीन)

रसलीन के दोहे में चमत्कार और उक्तिवैचित्र्य की प्रचुरता है। रसलान के बाद राजभाषा में कविता करने वाले मूलमानों में रसलीन प्रसिद्ध है। इनका मूल-शिक्ष-वर्णन सुन्दर और शिष्ट है, अश्लील नहीं।

( ८ )

कैसे रतिरानी के सिपारे कवि 'श्रीपति' जू जैसे कलघौत के सरोवरु संवारे हैं ।  
कैसे कलघौत के सरोवरु संवारे कहि जैसे रूपनट के बटा से छवि डारे हैं ॥  
कैसे रूप नट के बटा से छवि डारे कहु जैसे काम भूपति के उलटें नगारे हैं ।  
कैसे काम भूपति के उलटें नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी जैसे उरज तिहारे हैं ॥

(श्रीपति)

श्रीपति की कविता में व्यर्थ का शब्दाडम्बर और वाग्जाल नहीं है। अनुप्रास आये तो है परन्तु इनसे अर्थ में बाधा नहीं पड़ती। वाक्य-विन्यास मधुर, भोजपूर्ण और प्रसादमय-सम्पन्न है। राजभाषा भी सुन्दर और साधारण है—हाँ, कहीं-कहीं व्याकरण की अनुद्धिया अवश्य हैं। रचना में कोमलता और स्वाभाविकता है।

( ९ )

करि की चुराई ब्याल सिंह की चुरायो संक  
शनि की चुरायो मुख नासा धोरी कीर की ।  
पिकु की चुरायो बेंन भुग की चुरायो नैन  
दसन अनार हाँसी बीजरी गम्भीर की ॥  
कहं कवि बेनी बेनी ध्यात की चुराई सोनी  
रती रती शोभा सब रति के शरीर की ।  
अब तो कहेंया जू की चितहू चुराई लीन्हो  
छोरटी है मोरटी या चोरटी मोहीर की ॥

(बेनी)

यह नगशिक्ष-वर्णन उस शैली का नमूना है जिसमें अधिकतर कवियों ने

कविताएँ लिखी हैं। लगभग ऐसी ही सानुप्रास भाषा, ऐमा ही वर्णन और ऐसे ही छंद इन काल के कवियों में मिलते हैं।

( १० )

जाहिर आगत सो जमुना जब बूड़ें वह उमह वह बेनी ।  
 स्पर्श पदमाकर हीरा के हारन गंग तरंगन सो सुखदेनी ॥  
 पावन के रंग सों रंगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी ।  
 परे जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेनी ॥

(पद्माकर)

परवर्ती शृङ्गारी कवियों में पद्माकर सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं—इन्हें 'कविराज गिरोमणि' की पदवी प्राप्त थी। भाषा इनकी बड़ी ही सरस, शुद्ध और सुगठित है। इनकी रचना-शैली अपने ढंग की एक है। इनके से कवित्त-सवैया बहुत कम कवियों ने लिखे हैं। प्रनाशरी छंद के तो ये विशेषज्ञ थे। शृङ्गार रस के प्रतिरिक्त वीर और शांत रस में भी इन्होंने सफलता पाई है और भाषा रसभावादि के अनुकूल रही है। कही-कही आपने सानुप्रासिक शैली को प्रधानता दी है और कहीं-कहीं व्यर्थ के शब्द भी रस दिये हैं, परन्तु ऐसे स्थल अरचिकर नहीं होने पाये। इनकी कल्पना प्रौढ़ और सुन्दर है।

( ११ )

रूप अनूप रह्य दियो तोहि तो मान किए न सयान कहावें ।  
 और सुनी यह रूप जवाहिर, भाग बड़े बिरल कोउ पावें ॥  
 ठाकुर भूम के जात न कोऊ, उदार सुने सब ही उठि पावें ।  
 दीजिए ताहि देलाय दया करि, जो बलि दूरि से देखन आवें ॥

(ठाकुर)

इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी-कभी लोग इनके पदों को कहावतों के रूप में कहते सुने जाते हैं। राजभाषा की शृङ्गारी कविताएँ प्रायः नायिकाओं के मनोद्गारों के रूप में होती हैं—इस लिए इन्हें उनमें कहावतों के समावेश का प्रचड़ा अवसर मिला है। ठाकुर प्रधानतः शृङ्गारी कवि थे, परन्तु इन्होंने नीति, वीरता आदि पर भी कवित्त लिखे हैं।

( १२ )

मिलि भाषयो आदिक पूल के व्याज विनोद-सवा बरसायो करे ।  
 रचि नाच सतागन तानि बितान सबे विधि चित्त चुरायो करे ॥  
 द्विज देवजू देखि अनोसी प्रभा अलि-चारन कीरति गायो करे ।  
 चिरंजीवी, वसंत । सदा द्विजदेव प्रमूनन की शरि लायो करे ॥

(द्विजदेव)

कृतुवर्णन इन का अत्यंत मनोहर है। इसमें इनके हृदय की सच्ची उमंग प्रल-  
कती है। अनुभूति के साथ-साथ कल्पना और मौलिकता भी मिलती है। इनकी  
भाषा शुद्ध और प्रौढ़ है। अनुप्रासादि का प्रयोग जहां हुआ है वहां अस्वाभाविक  
नहीं होने पाया।

### सक्रांति काल की शृङ्गारिक कविता

मगधेजी राज्य के विस्तार के साथ-साथ कवियों के आश्रयदाता कम होते  
गये। समय की परिस्थितियों ने कवियों का ध्यान अपनी तरफ खींचा और उनकी  
कविता का विषय भारत की दुर्दशा और दरिद्रता हो चला। फिर भी रीवा,  
अयोध्या, रामपुर (जिन्ना मधुरा), काशी, हरिहरपुर आदि रियासतों में और  
काशी, मधुरा, प्रयाग आदि साहित्यिक केन्द्रों में पुरानी परंपरा की काव्य-रचना  
बराबर चलती रही। समस्त भारतेन्दु-काल के कवि पिछले युग की रीति का  
अवलम्बन करते रहे। यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ इसी काल में  
हुआ, तो भी प्रेम के क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारतेन्दु-युग की शृङ्गारिक  
कविता प्राचीन परिपाटी की अंतिम प्रसक्त है। द्विवेदी-युग में इसके विरोध का  
प्रारम्भ हुआ। परन्तु प्रेम का जादू तब भी कवियों के सिर पर चढ़ कर बोलता  
रहा। बहुत से कवि प्रेम के आदर्श की व्याख्या और प्रशंसा करते रहे। आज का  
प्रेमकाव्य बिल्कुल भिन्न दिमा में नृत रहा है। प्रेम का स्वच्छन्द और सर्वांगीण  
अनुशीलन किया जा रहा है, परन्तु अस्वीलता का अभाव आज की कविता का  
विशेष गुण है।

सक्रांति काल के शृङ्गारिक काव्य के दो भेद किये जा सकते हैं। (क) शास्त्रीय  
रङ्ग का काव्य, और (ख) अनुभूति-दीपित शिष्ट रङ्ग का प्रेम-  
अमूल रचनाएँ काव्य। निम्नलिखित इन प्राचीन प्रकार के काव्यों की प्रतिनिधि  
रचनाएँ हैं—

मेवक—‘वार्ताविलास’, ‘नय-निल’।

म० रघुराजसिंह—‘आनन्दानु-निधि’ इत्यादि।

सरदार—‘साहित्य-सरस्ती’, ‘व्यस्य-विलास’, ‘शृङ्गार-संग्रह’, ‘पद्म-  
प्रवाह’ इत्यादि।

भारतेन्दु—‘सुन्दरी-निलक’, ‘पावम-कवित्त-संग्रह’, ‘प्रेम-भाषुटी’, ‘प्रेम-  
तरंग’, ‘प्रेम-प्रताप’ इत्यादि।

हफीजुल्लाहा—‘हजार’, ‘नवीन-मण्डह’, ‘पद्म-श्रुत-काव्य-संग्रह’, ‘प्रेम-  
तराविणी’।

गोविन्द-गिन्नामार्द—'शृंगार-मरोजिनी', 'पद्-श्रुतु', 'पावमप्योनिधि',  
'वन्दोक्ति-विनोद', 'स्तेपचंद्रिका' ।

द्वित्रकवि मन्नालाल—'पञ्चगतक', 'शृंगार-मुधार', 'प्रेम-तरंग',  
'शृंगार-मरोज', 'सुन्दरी-मर्वस्व' ।

प्रविवादस्त व्यास—'विहारो-विलास' ।

प्रगमोहनसिंह—'श्यामा-म्बल', 'प्रेमसंपत्ति-लता' ।

रत्नाकर—'शृङ्गार-सहरो', 'उद्धव गतक' इत्यादि ।

इनके प्रतिरिक्त हनुमान, रामचरण वर्मा, सङ्गवहादुरमल्ल, नक्षेत्री  
तिवारी, गदाधर कवि, राधाकृष्णदास, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, हरिऔध,  
राय देवीप्रसाद आदि की फुटकर रचनाएँ इसी ढंग की हैं ।

शृङ्गारिक कविता में पिछले कवियों ने मस्तीलता का समावेश करने, नामक-  
नायिका-भेद और नल-सिंह के वर्णन में अपना कमाल दिखाकर और समस्या-  
पूर्ति का बीजारोपण करके जिस परिपाटी की पुष्टि की थी, वह  
काव्यशैली थोड़ी-बहुत चलती रही । इस युग के कवि पुराने ही उपादानों का  
पिष्टपेषण करते रहे । पहले बताया जा चुका है कि एक और  
कृष्ण-कवि राधाकृष्ण की रीति-कैलि और शानसीला, मानसीला, घोबिन-सीला,  
कुंजकिनसीला, छप्पवेष सीला आदि सीलाओं और उपनीलाओं का वर्णन करके  
शृङ्गारिष्ठा और विलासिता का मंचार करते रहे, दूसरी ओर वे और अन्य  
शृङ्गारी कवि नल-सिंह, रूप, मुकुमारता, चुम्बन, परिस्मरण आदि और नायिका  
के सौंदर्य का वर्णन करके कवि-वर्म करते रहे । परन्तु भारतेन्दु और रत्नाकर को  
छोड़ कर किसी में विशेष कलाकौशल दिखाई नहीं देता । इस युग में आकर शृङ्गार-  
रिक साहित्य अपने प्राचीन गौरव में गिर कर हीन-सीध हो गया ।

प्राचीन ढंग का समस्त शृङ्गारिक काव्य प्राचीन हिन्दी अर्थात् व्रजभाषा में  
ही लिखा गया है । इस व्रजभाषा को प्राचीनता बहुत सदरनी है । इन कवियों का  
व्रजभाषा-ज्ञान केवल साहित्यिक था । इनकी भाषा चलती बोली  
'प्रथिया' में बहुत दूर रह गई थी । अचिन्तन कवि पूरब के रत्न बताते थे ।  
इसलिए व्रजभाषा पर पूर्वी हिन्दी का स्पष्ट प्रभाव भी दृष्टि-  
गोचर होता है । खड़ी बोली का प्रचार बढ़ जाने से उग्रा प्रभाव भी प्रतिबल्य  
था । बहुत से कवि व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करते थे । इस  
लिए इन भाषाओं के प्रयोगों का सम्मिश्रण स्वाभाविक था । अरबी-फारसी शब्दों  
का प्रयोग भी पहले से अधिक दिखाई देता है । व्रजभाषा अपनी स्वच्छता, कोमलता  
और भावोत्पादकता में गिर गई । भारतेन्दु ने भाषा में सुधार करने की चेष्टा  
की, परन्तु उनका प्रभाव व्यापक न हुआ । रत्नाकर की भाषा गंभीर है और

गठन में बिहारी की भाषा से टक्कर लेती है, परन्तु रत्नाकर में लम्बे-लम्बे समासों और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भाषा के प्रवाह में बाधा डालता है। उसमें भोज तो है पर भाषुर्प नहीं है।

अलंकारों के प्रयोग में भी वही गिरावट लक्षित होती है। शताब्दियों से जिस विषय में बड़े-बड़े कवियों ने अलंकार-योजना की थी, उसमें अब नवीनता, रमणीयता अथवा विचित्रता दिखाने की मुञ्जाइश कहाँ रह गई थी? अलंकार ठूस-ठूस कर भरने के कारण काव्य में कृत्रिमता और अस्वाभाविकता बढ़ती ही गई है और मुख्य विषय दब गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, भ्रम, सन्देह, यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि का प्रयोग अधिक हुआ है, परन्तु कुछ एक रचनाओं को छोड़ कर किसी में कला-कौशल प्रगट नहीं होता। अधिकतर कविताओं में अलंकारों का अत्यन्त बड़ा रूप मिलता है।

इस युग में छंदों का प्रयोग भी प्रायः परम्परा के अनुसार रहा है। वही कवित्त, सवैया, दोहा, धनादारी, छप्पय, रोजा, बरवै आदि बसते रहे। कुछ नये छन्द भी प्रमुक्त हुए हैं जैसे बिरहा, मतार (बारहमासा), रेखता, मञ्जल और कजली। रेखता और मञ्जल भारतेन्दु और ललित किशोरी के प्रसिद्ध हैं। रामकृष्ण ने बिरहा लिखा है। कजली का प्रचार सर्वप्रिय रहा है और लङ्गवहादुरमल्ल आदि की कजलियाँ उत्तम मानी जाती हैं।

कुछ उदाहरण आगे उद्धृत किये जाते हैं—

उदाहरण—

( १ )

मनि मंदिर छंदमुरी धितवै हित मंजुल मोद मयामिन को,  
कमनीय करोरिन काम कला करि धाम रही पिय वासिन को।  
सरदार चहुँ दिसि छाये रहे सब छंद छटा रस रासिन को,  
मन मन्द उतासन लेन लगी मुल देखि उदास लयासिन को॥

(सरदार)

सरदार बड़े रसिक कवि थे। यह बात इनकी टीकाओं से विदित होती है। इनके भाव और भाषा दोनों उच्च कोटि के हैं। मौलिक कल्पना तो इनमें कम थी, पर इनकी रचना में मीढता अवश्य है। वज्रभाषा पर इनका बहुत प्रबुद्ध अधिकार था।

( २ )

जिम पे खु होइ अधिकार तो विचार कीजं

भोक्तान्न भसो मुरो भसो निरपारिये।

मेन थीन कर पग सबे परबत भये

उतं घलि जात इन्हें कंसे के सम्हारिये ॥  
 'हरिवन्द' भई सब भाँति सों पराई हम  
 इन्हें जान कहि कहौ कंसे के निवारिये ।  
 मन में रहे जो ताहि दीजिये बिसारि मन  
 आपं उसे जानें ताहि कंसे के बिसारिये ॥

(हरिवन्द)

भारतेन्दु साक्षात् प्रेममूर्ति थे । वियोग-शृङ्गार पर इनकी रचनाएँ बनूठी हैं । मानव-स्वभाव और चरित्र के चित्रण में इनकी प्रतिभा अप्रतिम थी । हाँ, इनकी कल्पना में वैसा ही अभाव पाया जाता है जैसा पूर्ववर्ती शृङ्गारी कवियों में—गंगा-वर्णन में भी इनकी कामिनियों की बदनसुषा और कुच-छवि की याद आती है । इनकी भाषा परिष्कृत और चसती हुई है । प्राकृत तथा पपभ्रष्ट के धर्मा का इन्होंने हठपूर्वक बहिष्कार किया है ।

( ३ )

बंभी की बिलोकि व्याल पेट की घिसत सदा,  
 मुल की बिलोकि इन्दु हीन कता करि है ।  
 कामा की बिलोकि कलपीत पर पावक में,  
 खीन की निराल सीप सागर में परि है ॥  
 बसन की कुति देति दारिम बरार सात,  
 'गोविंद' गयंद गति देलि धूरि धरि है ।  
 ताहि ते कहत सो कों पेट तेरो डाँप प्यारी,  
 पेट न दिग्याव कोऊ पेट मार मरि है ॥

(गोविन्द गिल्लाभाई)

गुजरात के हिन्दी कवियों में आप बहुत प्रसिद्ध हुए हैं । हिन्दी में आपके ३२-३३ ग्रंथ मिलते हैं । आप की कविता पदमाकर की कविता से टक्कर लेती है । आपकी समस्या-पूतियाँ प्रसिद्ध हैं ।

( ४ )

'इन कुलिमा धंलिपान कों, मुल तिरजोई नाहि ।  
 देखे बन न देखते, धनदेखे अनुताहि ॥  
 धनदेखे अनुताहि हाय धाँसू बरसावत ।  
 नेह भरेह क्लेश हँ अति जिय तरसावत ॥  
 'मुर्खा' सततह पतक कसप सत सरिस मुहाद न ।  
 धान जाद जो लोऊ दोऊ दुग बरे कुल जाद न ॥

(अग्निवकादत व्यास)

जा प्रेमासूत बिहारी ने दोहों के रूप में दिया है, वही व्यास जी ने कुण्डलियों में छानका कर लाने का प्रयत्न किया है; अर्थात् इनमें मौलिकता कही लक्षित नहीं होती। इनकी भाषा भी बिहारी की भाषा में क्षिप्त है।

( ५ )

कहु रे काया, परमप्रिय, प्रिय आथन की बात ।  
तिन आये हों देखेगी, तोहि द्वय अरु भात ॥  
आवो, बंठी, हँसो, प्रिय, जातें बहं उछाह ।  
हम पायल प्रेमीनु को, और चाहिये काह ॥  
गई रंनि, आये न पिय, सखि भम जीवनप्रान ।  
बिरह आगि में चहक कै, प्रान करत प्रस्थान ॥

(सत्यनारायण)

सत्यनारायण कविरत्न में महाकवि की प्रतिमा थी। इनकी राष्ट्रीय तथा भक्ति-भावना पर हम अपने विचार प्रगट कर आये हैं। वे शृंगार-रस पर भी सुन्दर कविता कह गये हैं। इसमें वेदना और करुणा का पुट स्पष्ट है।

### सखीन प्रेमकाव्य

मैथिलीशरण गुप्त—'साकेत', 'यशोधर', 'क्षंकार', 'प्रणय की महिमा' इत्यादि।

लोचनप्रसाद—'मानसोदगार' इत्यादि।

प्रतिनिधि रामनरेश त्रिपाठी—'मिलन', 'पथिक'।

रघुनाथ जयसकरप्रसाद—'प्रेम-पथिक', 'सहर', 'आँसू', नाटकों के पद्य।

सुमित्रानन्दन पन्त—'पल्लव', 'गुरुजन', 'युगात', 'प्रस्थि' आदि में कुटकर पद्य।

गोपालशरणसिंह—'मानवी', 'प्रेम' आदि के कुटकर गीत।

भूपंकान्त त्रिपाठी 'निराला'—'जूही की कनौ', 'शोफानिका', 'परिमल', 'गीतिका' इत्यादि में कुटकर कविताएँ।

महादेवी वर्मा—'रश्मि', 'नीहार', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत' इत्यादि की कविताएँ।

रामचुमार वर्मा—'निशीथ', 'अभिज्ञान', 'चित्ररेखा', 'दृष्टा' इत्यादि के गीत।

भगवतीचरण वर्मा—'प्रेम-गगीत'।

हरिवंशराय 'वच्चन'—'तेरा हार', 'मधुवाला', 'निशा-निमग्न',  
'प्रणयपत्रिका', 'मिलनयामिनी', 'एकान्त संगीत' इत्यादि ।

मुमद्राकुमारी चौहान—'मुकुल' में 'पारितोषिक का मूल्य', 'चलते  
समय', 'ठुकरा दो या प्यार करो' इत्यादि ।

नरेन्द्र शर्मा—'प्रमान फेरी', 'प्रवामी के गीन', 'पलाश-वन',  
'कामिनी', इत्यादि ।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'कुंकुम', 'श्यामी', 'अपलक', में अनेक  
कविताएँ ।

गणेश्वर शुक्ल 'अञ्चन'—'मधूलिका', 'अपराजिता', 'वर्षान्त के  
बादल' आदि ।

मन्विदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन—'चिता', 'दावरा ग्रहेरी', 'हरी घाम  
पर शणभर' ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'—'रूपदर्शन' ।

जानकीवल्लभ शास्त्री—'रूप और मरूप', 'मिश्रा' ।

हंसकुमार त्रिवारी—'घनागत' ।

गम्भीरासिंह—'दिबानोक' ।

शिवमंगलसिंह 'सुमन'—'जीवन के गान', 'हिलोत' ।

धर्मवीर भारती—'ठंडा लोहा' ।

नीरज—'विमायरी' ।

( इन संप्रदायों में अनेक शृङ्गारिक कविताएँ संगृहीत हैं । )

इनके प्रतिरिक्त मास्तरनाल चतुर्वेदी, सियारामसरण गुप्त, उदयचंकर भट्ट,  
भारतीप्रसादसिंह, सोहनलाल द्विवेदी, सुधीन्द्र, इत्यादि अनेक कवियों ने प्रेम-  
मयीन लिखे हैं और अनेक नम्रयुक्त कवि इसी शैली की कविता कर रहे हैं ।

द्विवेदी-युग के कवियों को शृङ्गारी कविता की विलासिता से घृणा थी ।  
उच्छृङ्खलता की पराकाष्ठा के विरुद्ध प्रतिवर्तन स्वाभाविक था । उन कवियों  
ने संयम से काम लिया । उन्होंने प्रेम-कविताएँ नहीं लिखी, तथापि  
काव्य-शैली प्रेम की प्रेरणा उनमें अवश्य थी । उन्होंने प्रेम की महत्ता को  
स्वीकार किया है । मुक्त जो 'प्रणय की महिमा' गाते हैं, लोचन-  
प्रसाद प्रेम के प्रभाव की व्याख्या करते हैं, गोपालचरणसिंह प्रेम की राह में  
"तन-पन-जीवन" अर्पण करने को उद्यत हैं, रामनरेश त्रिपाठी और प्रसाद  
अपनी भारभिक कृतियों में प्रेम की नीति की व्याख्या करने देखे जाते हैं ।  
चाहे दम प्रकार की कविताओं में प्रेम-भाव की व्यंजना नहीं मिलती, तो भी  
इनमें नये धाराओं की सूचना अवश्य मिलती है ।



आज का प्रेम चर्मचक्षुषों का ही विषय नहीं, आन्तरिक चक्षुषों का भी विषय है। वर्तमान कवि प्रेयसी के बहिरंग और अन्तरंग सौंदर्य को सर्वव्यापक रस में घोल कर पान करता है। इस रसपान में विषयवशता नहीं है। उसके सामने स्त्री अब वासना-तृप्ति का साधनमात्र नहीं है—वह तो ह उदात्त भावनाओं को जगाने वाली, प्रिया, सजनी, सहचरी, प्राण, देवी, रानी। स्त्री के प्रति ऐसी उदार मनोभावना और सहानुभूति पहले के कवियों में नहीं थी। स्त्री के प्रति आदर, थड़ा और भक्ति के कारण नवीन कविता में सपन और मौलिक का ध्यान रहता है। उसमें वह अदलोलता नहीं है जो पिछले युग की कविताओं का बड़ा भारी लक्षण है।

वर्तमान कवि का प्रेम वासना से ऊपर उठा हुआ है। यह प्रेम जीवनसर्वस्व, ईश्वर का रूप और आनन्द का स्रोत है। इस प्रेम के दो स्वरूप हैं—एक वह जो विवाहिता स्त्री के प्रति फूटता है और निरंतर बढ़ता हुआ विश्व-प्रेम बन जाता है। रामनरेश त्रिपाठी के प्रेम का यही स्वरूप है। अधिकतर कवियों ने उस प्रेम की कल्पना की है जो प्रेमिका के प्रथम दर्शन से उत्पन्न होता है, विरहाग्नि में जलाता है, रलाता है, पर स्थिर रहता है। प्रेम के प्रथम प्रभाव की व्यञ्जना प्रसाद, पल, महादेवी आदि सब बड़े-बड़े कवियों ने की है।

आज का कवि नख-शिखर का वर्णन तो नहीं करता, पर वह प्रेयसी के सौंदर्य से अभिभूत है। अनेक कवियों ने अंग-सौंदर्य के सुन्दर चित्र दिये हैं जिनसे लगता है कि लगभग वही रीतिकानीन पद्धति फिर अपनाई जा रही है। रूप भिन्न है, पर बात वही है।

उदाहरण—

क्यों नयनों से रूप बह रहा—सुनो हमारी बात।

हिलती झलक कि कैसे उठती तम के मंचों की राह।

बेनी खुली कि घोफाली की नत डाली की छाह।

साँसें जातीं भीग कि लाती गुरवाई भरसात।

देह सहराती या कि सहर को बैठा पवन झकोर।

अविरल मौल कि जल में वर्षा की बूंदों का शोर।

अरमोले से गात कि अँसे छुई छुई के पात।

सुनो हमारी बात।

(जयदीश गुप्त)

पल, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण, निगना, सब अपनी प्रेमिका के भौतिक जीवन पर मुग्ध हैं। इन कवियों ने अपनी 'रानी' के जो चित्र उपस्थित किये हैं उनकी मौम्यता और मध्यमा रीतिकानीन कवियों की भावनाओं

के प्रतिपक्ष में रखने पर निखरती है। वर्तमान कवियों में बाह्य मीर्य का वर्णन है तो, पर बहुत कम।

वर्तमान कवि स्वकीया नायिका की प्रतिष्ठा चाहते हैं—इसलिए नायक-नायिका भेद के झमेले में वे नहीं पड़े।

इन कवियों के संयोग और वियोग-शृङ्गार में वही आह्लास है जो प्रेम-मार्गी सुफियों के इश्क में। इन्हें मिलन में तो आनन्द होता ही है, विरह की अनंत वेदना भी गुदगुदी पैदा करती रहती है। हास ही में वियोग-शृङ्गार की प्रधानता बढ़ने लगी है। बहुत से कवियों को रोने, तड़पने, कलपने, मीसने का मर्ज-सा हो गया है। इनमें विकलता अधिक है और उत्सास कम। “कौन” से प्यार करने वालों में सुख का अनुभव होना भी कठिन है। उनके शृङ्गार में करण रस का उद्रेक अधिक होता है। कवण रस में ही उनके विरह-तप्त हृदय को शान्ति मिल सकती है।

आज का कवि रसदोष में विश्वास नहीं रखता। किन्ती एक भाव की शणिक ध्वंजना तो वह कर देता है, पर कोई रस दूर तक नहीं खे जा सकता। वह प्रेम का आदर्श सफनतापूर्वक चित्रण कर सकता है, पर पूर्ण रस-परिपाक आज की कविता में नहीं मिलता।

वर्तमान युग के कवि और कवयित्रियों को प्रेम की अभिव्यक्ति में वही मकोच नहीं होता। वे साज और मर्यादा की सीमाओं को लाघ कर प्रेमी में मिल जाना चाहते हैं। उनके स्वच्छन्द प्रेम में ईमानदारी, सचाई और मजीवना है।

आज की शृंगारी कविता अनुभूति-शोषित है। भावों का आदान-प्रदान भिन्न-भिन्न कवियों में अवश्य पाया जाता है—परन्तु व्यक्तिगत अनुभव अस्पष्ट है। परम्परा-गत भावों और प्रतीकों का पिष्टपेषण नहीं है। अलवतः भगवतीचरण धर्मा और बन्धन ने उर्दू के प्रेमकाव्य की परम्परा का समावेश किया है। परन्तु उनका माकी, प्याना, अफगाना और मस्ती हिन्दी-साहित्य में ऐसे ही न्यारे-न्यारे लगते हैं जैसे किसी देश में परदेसी। कई कवियों में घालबन की अस्पष्टता बहुत अटकनी है। बादो की अंधपरंपरा में पड़कर वे कल्पना-जगत में विवरणा अपना कर्तव्य समझते हैं और यह नहीं देखते कि उनके भाव रितने दुर्बोध्य हो गये हैं। विस्तार के लिए देखिए अगले अध्यायों में ‘प्रक्रिया’।

वर्तमान प्रेम-काव्य का मुख्य लक्षण है निराशावाद। यह निराशा देश की आधुनिक अवस्था का ही प्रतिबिम्ब है—इसका उल्लेख हम किसी अगले प्रकरण में करेंगे। बहुत से कवि वास्तविक जीवन में कहीं दूर एक प्रेम-नगर बनाया

चाहते हैं। आशा है देश में रातनीतिक उन्नति होने पर उन्हें स्वाधीन स्थानीय प्रेम-राज्य की स्थापना करने का अधिकार भी मिल जायगा।

वर्तमान काव्य की भाषा-शैलियों का हम आगे चलकर विस्तार से वर्णन करेंगे। यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक है कि आधुनिक काव्य में न केवल प्राचीन विषयों और भावों को त्याग दिया गया है बल्कि प्राचीन प्रक्रिया भाषा, प्राचीन अलंकार-योजना और प्राचीन छंद-विधान भी छोड़ दिये गये हैं। वर्तमान युग की भाषा है खड़ी बोली, प्रौढ़, भावसम्पन्न, स्पष्ट और प्रभाव-शालिनी। वर्तमान समय के अलंकार हैं लय और गीत; और वर्तमान कविता के छंद हैं स्वच्छन्द और विविध, छोटें-छोटे और संगीतमय।

वर्तमान काव्य की भाषा-शैलियों की सख्या इतनी ही है जितनी कवियों की। यह युग व्यक्तिप्रधान शैलियों का है। आज के कवि मनोनुकूल अभिव्यक्ति में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। उन्हें अपने-अपने ढंग के रूपविधानों से प्रेम है—वे भाषा, छंद, लय आदि की शैलियों के भाए दिन नये-नये प्रयोग कर रहे हैं। उनके ढंग एक-दूसरे से उतने ही असंग हैं जितने उनके विचार।

नवीन भावनों की कुछ प्रेम-कविताएँ नीचे दी जाती हैं—

अराहरण

( १ )

दूध-हृदय में प्रेम-जलद-माता कब फिर फिर आवेगी ?  
 क्या इन आँखों से होगी, कब हरियाली आवेगी ?  
 रिक्त हो रहा मधु से सौरभ, छून रहा है घातप से,  
 मुमन-कली तितकर कब अपनी पैलुझिपा बिखरावेगी ?  
 लम्बी विश्वकथा में मुल-निद्रा समान इन आँखों में,  
 सरस मधुर छवि शांत सुन्हारी कब आकर बस जावेगी ?  
 मनमयूर कब नाच उठेगा, कादम्बिनी-छटा सलकर,  
 शीतल आतिथ्य करने को सुरभि-लहरियाँ आवेंगी।

(प्रसाद—भरना)

भरे वहीं देला है तुमने  
 मुझे प्यार करने वाले को ?  
 मेरी आँखों में आकर फिर  
 भाँसु बन करने वाले को ?

सूने नभ में आग जताकर  
 यह सुवर्ण-सा हृदय गला कर

जीवन सन्ध्या को नहला कर  
रिक्त जलधि भरने वाले को?

.....

निष्ठुर खेतों पर जो अपने  
रहा देखता सुख के सपने  
आज सगा है क्या वह कँपने  
देख भीन भरने वाले को?

(प्रसाद—सहर)

प्रसाद जो मानव-हृदय के कवि हुए हैं। खड़ी बोली में आधुनिक शैली के गीतों द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम आप ही ने की है। आप की कविता में संगीत और श्रोज दोनों हैं—इसमें अनुभूति और कल्पना का मधुर सम्मिश्रण हुआ है। इसी कारण प्रसाद जी के पदों में स्वभाविकता भी है और युग की प्रतिध्वनि भी। भाषा वहीं-वही कठिन और दुरूह हो गई है—एक तो संस्कृत के पदों का बाहुल्य हो गया है, दूसरे प्रतीकात्मक शब्द आ गये हैं। आप की काव्य-शैली का आधुनिक कविता पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है।

( २ )

स्नेहमयि सुन्दरतामयि।

तुम्हारे रोम-रोम से भारि मुझे है स्नेह अपार।

तुम्हारा मूड उर ही मुझुमारि, मुझे है स्वर्गागार।

तुम्हीं इच्छाओं की अवसान, तुम्हीं स्वर्गिक आभास।

तुम्हारी सेवा में अनजान, हृदय है मेरा अंतर्धान।

देवि! माँ! सहचरि! प्राण

(पस्त—पस्तव—नारीरूप)

सरलपन ही था उनका मन,

निरालापन था, आभूषण,

बान से मिले अज्ञान नयन,

सहज था सजा सजीला तन।

(पस्त)

स्त्री के प्रति ऐसी उदार भावना पहली बार पत में दिखाई पड़ी है। पत जो सौंदर्योपासक, शिष्ट और संयत कवि है। उनकी कविता की विशेषता है प्रकृति में प्रेमानुभूति। इसमें

कीड़ा, कौतूहल, कोमलता

मोद, भयरिमा, हाम, विलास,

लोला, विस्मय, अस्फुटता, भय,

स्नेह, झलक, मुख, सरस हुलास

आदि सभी गुण हैं। भाषा इनकी मधुर और रस-भावानुकूल है। इन्होंने सिद्ध कर दिया है कि खड़ी बोली भी ब्रजभाषा के समान कोमल और मधुर है। कोमलकांत-मदावली पन्त जी की अपनी चीज है। ये तुकान्त, अनुकान्त, मुक्तक सभी कुछ निपटते हैं।

( ३ )

निर्वय उस नायक ने निपट निठुराई की  
कि शोंकों झाड़ियों से  
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,  
मसल दिए गोरे कपोल गोल;  
चोंक पड़ी धुवती—  
चकित चितवन को चारों ओर फिर  
हैर प्यारे की सेज पास  
नझमुली हँसी-बिली  
खेल रंग प्यारे संग।

प्राणधन को स्मरण करते

नयन झरते-नयन झरते!

(निराला)

निराला जी मौदगोपासक कवि हैं। उन्होंने श्रुतिगत भावना का स्वच्छंदता में और मुक्त छन्दों में चित्रण किया है। यह चित्र कहीं-कहीं रंगा तो हो गया है पर अश्लील नहीं होने पाया। इनके गीतों में शब्दचित्र बड़े स्पष्ट हैं। निराला जी की शैली अपने ही ढंग की निराली है। उनकी रचनाओं में कल्पना, अनुभूति और संगीत का मधुर सम्मिश्रण है। हा, जिस स्वस पर वे दार्शनिक धन गये हैं वहा जटिलता के साथ वृद्धिमत्ता भी छा गई है। निराला जी भोगेजी और भगता के विद्वान् हैं। हमीलिए दोनों भाषाओं की बला का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

( ४ )

जो सुम आ जाते एक बार।

कितनी करुणा कितने संदेश  
मध में बिछ जाते बन परान,  
गाती प्राणों का तार-तार  
अनुराग भरा उन्माद राग,

आँसू लेते थे पग पतार !  
होस उठते पल में आँसू नयन  
धुल जाता ओठों से विपाद,  
धा जाता जीवन में वसन्त  
सुट जाता चिर-प्रसन्न विराग,  
आँखें बेटों सर्वस्व वार !

(महादेवी वर्मा)

महादेवी वर्मा के गीतों में विरह-वेदना और करुणा अत्यंत तीव्र और व्यापक हैं। दुःख और निराशा जितनी उनकी कविताओं में प्रगट हुई हैं उतनी और हिन्दी के किसी कवि में नहीं पाई जाती। उनका शृंगार आध्यात्मिक है। वे एक सफल चित्रकार भी हैं—उनके काव्य में चित्रमयता है। उनके गीतों में माधुरी और संगीत है। शब्दों का चयन सुन्दर और भाव सरल है। उनके गीतों में संस्कृत शब्दों का आहुत्य होते हुए भी प्रसाद-गुण बहुत है। उनकी आत्मकारिक भाषा-शैली और भावधारा का नवीन कवियों पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

( ५ )

फूल सी हो फूल वाली !

कित सुमन की साँस सुमने आज मनजाने घुरा सी ?  
जब प्रभा की रेल दिनकर ने गगन के बीच खींची,  
किन्तु वो दिन के सुमन से कौन सी यह प्रीत पाली ?  
क्या तुम्हारे रूप में जग-शांति आकर है छिपी सी ;  
शीघ्रि जग सौंदर्य की क्या नेत्र में आकर दिपी सी ?  
कर रही स्वागत कलौ से रूप की अनुराग लाली ।  
सुम सजोली हो, सजाती हो सुहासिनी ये सताएँ  
क्यों न कोकिल कण्ठ मधु-श्रुति में तुम्हारे गीत गाएँ,  
आज मने वह दृढ़ अपने हृदय के बीच पा सी ।

फूल सी हो फूल वाली !

(रामकुमार वर्मा)

डाक्टर वर्मा की कविता कल्पना-प्रधान है। न उसमें दार्शनिकता की गहराई है और न ही प्रेमविरह की करुणा। भावना इनकी भी रहस्यात्मक है। इनकी भावधारा सदा अस्पष्टता की ओर बहती रहती है। इनके भावों में निराशा और दुःख की कल्पना बनी रहती है। ये बार-बार इस भाव को दुहराते नजर आते हैं कि सौंदर्य क्षणिक है और विनाश अचल। इनका प्रकृति-चित्रण बहुत असफल नहीं हो पाया—अनुभूति की कमी लक्षित होती है।

( ६ )

भरे हुए मूनेपन के तम में विद्युत् की रेखा सी ।  
 अलपलता के घट पर संकित तुम आशा की लेता सी ॥  
 धाज हृदय में लिख आई हो तुम असीम उन्माद लिए ।  
 जब कि मिट रहा था मैं तिल-तिल सीमा का अववाद लिए ॥  
 है हमें बहाने को आई यह रस की एक हिलोर प्रिये ।  
 सादरत असीम में चलता है, निज सीमा के उस ओर प्रिये ।  
 उस ओर, जहाँ उन्मत्त प्रणय है लोक-साज को छोड़ चुका ;  
 उस ओर, जहाँ स्वर्यन्द समय सुध-घुघ को बंधन तोड़ चुका ॥

( भगवतीचरण वर्मा )

वर्मा जी की कविनाओं में नौकिक प्रेम का उत्कट प्रवाह बहता है । इनके गीतों की विशेषता है प्रेम के व्यापारों की सरल अभिव्यक्ति । इनके प्रेम में एक बेचैनी सी है । ये प्रेम को आनन्दोत्साह और तन्मयता का स्रोत मानते हैं । उर्दू-कविता का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है । इनकी भावना में सुकुमारता, गीतों में गति, कवित्व में प्रभावोत्पादकता, और कल्पना में आशा और अनुमति है । इनकी भाषा सरल और सुन्दर है, एवं सौली स्पष्ट और मंगीनात्मक है ।

( ७ )

चाँद तितारे मिल कर बोले,  
 कितनी बार गगन के नीचे  
 प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,  
 कितनी बार घरा घर प्रेयसि-  
 प्रियतम का अभितार हुआ है ।  
 चाँद तितारे मिलकर बोले ।

चाँद तितारे मिल कर बोले ।  
 कितनी बार गगन के नीचे  
 अटल प्रणय के बन्धन टूटे,  
 कितनी बार घरा के ऊपर  
 प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे ।  
 चाँद तितारे मिलकर बोले !

( बन्धन )

बन्धन की कविना में उत्कट निराशा है । उगमे आह भी है, प्रवाह भी है ;  
 नात्राभिव्यक्ति भी है और मरमना भी । आप की कविताओं पर फारसी के कवि  
 उमर खय्याम की स्पष्ट छाया है, कुछ-कुछ अपनी अनुमति भी यह या कनो है ।

( ८ )

घोमुख दिवला बार—

घरुंगी घोघारे-पर आज

सखी री, घोमुख दिवला बार।

जाने कौन दिशा से आएँ मेरे राजकुमार ?

जब जब पवन सन्देश लावे,

दीपे की लौ ली मल लावे,

झाला दे-दे पास झुलावे,

इसे देल मैं जानूँ मेरे आए राजकुमार।

देखूँ जंगल में पट-विजना,

गगन धोष तारों का लिलना,

मैं जानूँ यह केवल धूतना,

कौन बहे सधमुख आवेगें मेरे राजकुमार !

सखीरी घोमुख दिवला बार।

(नरेन्द्र शर्मा)

धर्मा जी ने भौतिक प्रेम के अनेक गीत लिखे हैं। इनकी शृङ्गारिक भावना में सयोग शृङ्गार का अधिकार है। सयोग में वियोग की धंका और लौकिक प्रेम में धलौकिक का संकेत इनकी कविता की विशेष प्रवृत्ति है। ये प्रगतिशील कवि हैं। कहीं-कहीं नग्न भाव भी प्रगट कर दिये हैं।

( ९ )

दीपक जलता रहा रात भर—

तन का दिमा, प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रात भर,

दुल की धनी बनी भ्रमिपारी, सुल के टिमटिम दूर सितारे,

उझी रही पीर की बदली, मन के धँझी उड़ उड़ सारे,

बची रही प्रिय की आँखों से मेरी कुटिया एक किनारे,

मितता रहा स्नेह-रस धोड़ा

दीपक जलता रहा रात भर।

हुनिया देखी थी अन्धदेखी, नगर न जाना, डगर न जानी,

रंग न देखा, रूप न देखा, केवल बोली ही पहिचानी,

कोई भी ली साथ नहीं था, साथी था नयनों का पानी,

सूनी डगर, सितारे टिमटिम

धन्यी धलता रहा रात भर।

(गोपातसिंह नेपाणी)



नेपाली जी के गीत मौलिक है। इनमें भाषा की सरसता, कल्पना की विचित्रता और अनुभूति की विविधता है। यह कविता उन गीतों में से है जिनका अर्थ प्रेमिका और ईश्वर दोनों के प्रति सग्न सकता है।

( १० )

सुनो जब तक सुनाऊँ मैं  
तुम्हें उस रूप की बातें  
लज्जिली है बड़ी वह किन्तु है सावण्य की रानी  
गुंथी झलझपने की मोतियों से मंजरी घानी  
समकती बामिनी सी मुक्त उसकी ज्योति का पानी  
तिता करती जहाँ आकाश-गंगा सी हँसी मानी  
कपूरी रसवती दो झलझियों की सुरमई पातें ।  
सुवासित गात है कौमार्य के मधुसिक्त परिमल से  
तरंगित प्रक है निर्माल्य के गहले हुए जल से  
उमड़ता स्रोत शैशव का घुला उध्व-वास चंचल से  
जवानी धूम लेती है खपल मुख जब कभी छल से  
अमक उठती गुप्तानी चांदनी में ज्यों कुमुद पातें  
(रामेश्वर शुल्क 'चंचल')

इस गीत में रीतिकाल के कवियों के से भाव है। चंचल जी की प्रेमभावना ठसेजना-पूर्ण है। ये नेत्र-प्रेम के उपासक मालूम होते हैं। नारी के स्वरूप की कल्पना इनकी वासनामय हो गई है। यह नवीनतम प्रवृत्ति की द्योतक है। जिस प्रकार शुद्ध कृष्ण-भक्ति से विचलित होकर राधाकृष्ण-काव्य में प्रवर्तितता आ गई थी, इसी प्रकार प्रगति की प्रेरणा में आज का कवि मर्यादा की कड़ियों को तोड़ कर जीवन का नग्न रूप उपस्थित करने में भी अग्रसर हुआ है।

( ११ )

कितनी बार तुम्हें देखा पर झालें नहीं भरीं ।  
सोमित उर में चिर-असौम सौन्दर्य समान सका ;  
बोन-मुग्ध बेसुध कुरंग मन रोके नहीं दका,  
मैं तो कई बार पी पी कर जो भर गया, दका  
एक झूठ थी किन्तु जिसकी लूणा नहीं मरी,  
कितनी बार तुम्हें देखा पर झालें नहीं भरीं ।

(शिवमंगलसिंह 'सुमन')

सुमन जी की कविता में भोज के साथ अनुभूति की गहराई रहती है।

( १२ )

तेरी बड़ी याद आती है !

कजरारे घन-नयन पसारे

इन्द्रधनुष की भीह सँवारे

शनसुन रिमझिम की पग-पायल

पी-पी प्राण पपीहा टेरे

विद्युत् बिजुल कदाक्ष शून्य सागर में जब लहरें भर जाती

तेरे मलिन-विलोचन की मुक्ता की झड़ी याद आती है !

(हंसकुमार तिवारी)

बिहार प्रदेश ने हिन्दी को बहुत से कवि दिये हैं । हंसकुमार तिवारी गम्भीर और प्रतिभा-सम्पन्न साधक हैं ।

( १३ )

सौ सुन्दर, सुरभित सुकुमार

सुमनों से गुम्फित कर हार,

पहनाया था सखि, प्रियतम ने

पुनर्कित होकर पहली बार ।

उसको सौ सुमनों में आज

सुरभित है बस केवल एक, केवल एक ।

तन्मय होकर सौ-सौ बार

सजनि, किया प्रियतम ने प्यार,

केन्द्रित कर मेरे अक्षरों की

सीमा में अपना संसार ।

उन सौ सौ मादक स्पर्शों में

अंकित अब तक है केवल एक, केवल एक ।

(बालकृष्ण राव)

राव साहब की कविता का विशेष गुण है संयम । आपको अनुभूति में मत्पता भरपूर रहती है ।

( १४ )

टेर रही पिया तुम कहीं ?

किसकी यह छाँह और किस के ये गीत रे ?

बरगद की छाँह और चंता के गीत रे !

सिहर रहा जिया, तुम कहीं ?

.....

किसकी ये आँखें हैं, किसकी यह रात रे ?  
 बिरहिन की आँखें हैं, मावस की रात रे !  
 बस रहा दिया, तुम कहाँ ?

(शम्भूनाथसिंह)

लोकसाहित्य के छंदों को खड़ी बोली के सजित साहित्य में सफलतापूर्वक प्रयोग करने वाले कवियों में डाक्टर शम्भूनाथ सिंह का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। आपकी कविता का प्रमुख लक्षण है उसकी मंगीतात्मकता।

## स्वच्छंद कविता

शृङ्गारी कविता अधिकतर राजदरबारों में लिखी गई थी । परन्तु मंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ देशी राज्य उलझने लगे । कवियों को आश्रय देने वाले कम रह गये । हिन्दी के कवियों को स्वावलम्बन का अवसर मिला । इन्हें विनासी राजाओं की प्रसन्नता की अपेक्षा न रह कर जनता से प्रसंसा और यश पाने की आकांक्षा होने लगी । जनता के विचारों को ग्रहण करने के लिए कवियों ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली । प्रजातन्त्रात्मक उत्तरदायित्व की भावना जागृत हुई और कवियों में यथार्थवादिता, भावानुभूति और सच्चाई आने लगी ।

आपेक्षाने ने भी कविमो और सर्वमाधारण में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में बड़ी महायत्ना की । पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने और पुस्तकें सन्ती हो जाने से साहित्यिकों के विचार जनता तक पहुँचने लगे और जनता की भावना साहित्यिकों पर प्रगट होने लगी । उन्होंने मानव-जीवन को समझना शुरू किया और उसकी भावपूर्ण व्यंजना करना भी अपना कर्तव्य मान लिया । उन्हें विश्वास होने लगा कि पुरुष और स्त्री केवल मायक-नायिका नहीं हैं; वे आत्मा भी हैं, प्राणी भी हैं, संसारी भी हैं, और भी बहुत कुछ हैं; प्रकृति केवल रतिभाव का उदीपन ही नहीं करती उसकी अपनी भी कोई सत्ता है, इत्यादि ।

मंग्रेजी विचार-पद्धति और साहित्य के अध्ययन ने भी हिन्दी-कवियों को

दृष्टि में विस्तार सा दिया। आधुनिक शिक्षा से उन्हें वैज्ञानिक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। इसने पहिले प्राचीन अंधविश्वासों, रुढ़ियों और परंपराओं का विरोध और फिर जीवन-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। यही नया बुद्धिवाद आगे चलकर स्वच्छंदतावाद में परिणत हुआ। अंग्रेजी साहित्य से इसे नये विषय, नये आदर्श, और नये रूप प्राप्त हुए।

मनु सत्तावन का विद्रोह हमारे इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। इससे एक नये जीवन का संचार हुआ और देश में राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक सुधारों की मांग तथा परिवर्तन की सहर बढने लगी। अंग्रेजी शिक्षा ने जिस परिवर्तन-भावना को प्रेरित किया, वह मूर्तरूप में सामने आ खड़ी हुई। काव्यी का शासन बदला, अंग्रेजों की नीति भी बदली और समाज में एक नई आशा जागृत हुई।

ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज के प्रचार का प्रभाव भी तीव्र रूप से पड़ा। सम्भवतः इसी के कलस्वरूप राजनैतिक मनोदृष्टि में भी परिवर्तन हुआ। सुधार, जागृति, स्वतंत्रता और न्याय की सहर अपने आप जीवन के सभी पक्षों पर छा गई। हिन्दी-साहित्य पर इन सहर का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसी से काव्य में आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ।

यह कहना कठिन है कि आधुनिक अथवा स्वच्छंद काव्य का विकास कब हुआ। प्रायः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आधुनिकता का आरंभ माना गया है;

परन्तु जिन उपादानों, विषयों, भावनाओं, शैलियों, प्रविधाओं स्वच्छंदता का और रीतियों को हम आज की कविता में देख रहे हैं उनमें से

**आरंभ** कोई भारतेन्दु युग में भी इसका हमें संदेह है। यह तो माना जा सकता है कि भारतेन्दु-युग में कुछ नये आदर्शन आने लगे थे और पुरानी काव्य-शैली के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो चला था; परन्तु आधुनिकता का पूरा-पूरा चित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इस समय भी प्रधानता रही शृंगारी कविताओं की ही। भारतेन्दु और उनके समसामयिक पक्के रुढ़िवादी थे—कविता में विसंग परिवर्तन करने को तय्यार न थे। इस काल में शृंगारिक कविता की परंपरा जिन रंग में चलती रही उसका उल्लेख हम विद्युत् प्रारण में कर चुके हैं।

इन कवियों को प्राचीन के प्रति जितनी निष्ठा थी, उतनी ही उत्तुकता नवों के प्रति भी थी। इन्होंने पृथ्वी धार साहित्यिक बंधनों से मुक्त हो कर नये नये विषयों की ओर ध्यान दिया। हिन्दी-कविता नई दिशा में मुड़ चली। भतीत-गौरव, वर्तमान-दरिद्रता, देश-दशा, सामाजिक कुरीतियाँ, समाज-मुषार आदि अनेक राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर कविताएँ लिखी जाने लगीं।

कविगण कल्पनालोक से उतरकर वास्तविक लोक में विचरने लगे। पहने के कवि देव, गंधर्व, किन्नर, यक्ष इत्यादि को अधिक महत्त्व देते थे; अब के कवि मनुष्यों को ही ध्येष्ठ समझने लगे। ये लोग रंग-महलो और राजदरबारों को छोड़ शोषड़ियों और गलियों में आये। जीवन से इनका साक्षात्कार हुआ। कृत्रिमता के स्थान पर स्वाभाविकता, बंधन के स्थान पर स्वच्छन्दता, शृंगार के साथ-साथ खोर-रस और नायिका-प्रेम के साथ-साथ देश-प्रेम भी हिन्दी कविता में लक्षित होने लगा।

इस युग में राजनीति और समाज-सुधार का स्वर सब से ऊँचा था। देश-भक्ति की जो भावनाएँ इस समय प्रमुख थी, उनका संकेत हमने दूसरे अध्याय में कर दिया है। इन कवियों की देश-भक्ति पर किसी को सदेह नहीं हो सकता। परन्तु इनका यह रहे कि ये लोग अधिकतर उच्चवर्ग और मध्यवर्ग की उच्च श्रेणी से थे। ये उस समय के शासन से सतुष्ट थे और अंग्रेज बहादुर का गुण-गान करने में अपनी भलाई समझते थे। इन्होंने देख लिया था कि सन् १८५७ की क्रांति में अंग्रेज के विरोध का क्या परिणाम हुआ था। इन्हें अंग्रेजों से अधिक लाभ भी था। बहुत से कवियों ने अंग्रेजी शिक्षा, सार, रेल, डाक आदि पर आनन्द प्रगट करते हुए अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी अफसरों की प्रशंस्तियाँ लिखीं। जुबिली, राजकुमार-जन्मोत्सव, राजकुमारगमन, मिस्त्र में सेना की विजय आदि अवसरों पर कविताएँ लिखी गईं। ये कवि देश-भक्ति और राज-भक्ति में कोई विरोध नहीं समझते थे। तत्कालीन भावना भी इनकी कविताओं में पूरी तरह प्रतिबिम्बित है।

इन कवियों की आधुनिकता और स्वच्छन्द वृत्ति का प्रदर्शन इनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और व्यापक भावनाओं की अभिव्यक्ति से होता है। ये भारत की दरिद्रता और अंग्रेजों द्वारा किये गये आर्थिक लोपण पर बराबर दुःख प्रगट करते रहे हैं, जनता से सगठित होने को कहते रहे हैं और सरकार से सामन्यवर्गी सुधारों की मांग भी जोर से करते रहे हैं।

समाज-सुधार की भावना इस युग के प्रायः सभी कवियों में मिलती है। पश्चिमी विचार-पद्धति ने भी सुधारवादियों को प्रोत्साहन दिया। हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द, प्रतापनारायण आदि कवि उदात्त थे। उन्होंने स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए, पुमाछून के विरुद्ध और विधवा-विवाह के पक्ष में अनेक कविताएँ लिखीं। राधाचरण गोस्वामी और अम्बिवादत व्यास जैसे अपरिवर्तनवादियों ने इनके विरोध में व्यापक कविताएँ भी लिखीं—परन्तु इन्हें समाज का कल्याण ही धर्मोष्ठ था। वे सब के सब समाज के हित में प्रयत्नशील थे। उनकी स्पष्टवादिता सराहनीय है। सामाजिक सुधार के अन्य विषयों में वर्णाश्रम-धर्म का पालन,

बालविवाह, समुद्र-यात्रा, मोरधा, भारतीय संस्कृति की रसा आदि प्रमुख रहे हैं।

इस युग की धार्मिक कविता में प्राचीन परम्परा का पालन किया गया है। अन्य धर्मों के प्रति उदार भावना इसकी एक विशेषता है। ये कवि झगड़ों से दूर रहना चाहते हैं। ये ईश्वर से धार्मिक विवाद मिटाने की प्रार्थना करते हैं और लोगों को विचार-स्वातन्त्र्य तथा आतृत्व का उपदेश देते हैं।

प्रकृति-वर्णन भी इन कवियों ने स्वतन्त्र रूप से किया है। हरिश्चन्द्र मानव-प्रकृति के कवि थे, परन्तु उनमें नवीन प्रकृति-वर्णन-शैली के दर्शन भी होते हैं। प्रायः वे प्रकृति-चित्रण आलंकारिक शैली में करते हैं, अर्थात् प्रकृति के कुछ उपादानों के नाम गिना कर उन पर उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का विधान करते हैं। परन्तु प्रकृति को आलंबन मान कर भी कुछ वर्णन किये गये हैं—अलवत्तः ऐसे वर्णनों में कविवर बहुत कम है। पहले-पहल श्रीधर पाठक ने प्रकृति के स्वभाविक रूप “गुनवत् हेमत”, “काश्मीर-मुपमा” आदि कविताओं में प्रस्तुत किये हैं। हरिश्चन्द्र के रूप किताबी और रुढ़िवादी हैं, परन्तु पाठक के रूप आँखों देखे हैं। यही से प्रकृति-चित्रण में आधुनिकता का आरम्भ होता है।

नवीन काव्यधारा में वर्णनात्मक शक्ति का अछड़ा परिचय मिलता है। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण विशेष करके भाविक हुआ है। हरिश्चन्द्र-युग से पहले प्रकृति उद्दीपन के रूप में काव्य में आती रही। कुछ वस्तुओं के नाममात्र गिनाये जाते रहे—दृश्यों का चित्रण नहीं हुआ। प्राकृतिक उपादानों की उपमान के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है। हरिश्चन्द्र स्वयं नरप्रकृति के कवि थे, बाह्य प्रकृति की अनन्तरूपता पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। उनके गंगा-वर्णन, यमुना-वर्णन आदि परंपरा-पालन के रूप में हैं। अलवत्तः ठाकुर जयमोहनसिंह ने प्रकृति का सजीव चित्र खींचा है। कवि ने अपनी जन्म-भूमि, विघ्नाटवी, दहकारण्य, पहाड़, नदी-नालों का सरस और साहित्यिक वर्णन किया है। प्रतापसिंह जू देव और बालमुकुन्द गुप्त को स्मृत कविताओं में भी प्रकृति के प्रति स्वच्छंद और क्षिण्य भावना प्रगट होती है।

हिन्दी के पद्य में भी नई कविताएँ मिलती हैं।

जनता की आवाज तो इस काव्य में है ही, जो दूसरी प्रवृत्तियाँ इस समय चली उनी तो सरोप में वर्णन कर देना आवश्यक था।

काव्य में अन्य मनोरंजक, उपदेशात्मक, विचारात्मक तथा प्रगतिशील विषय भी चल पड़े थे। ‘विज्ञापन’, ‘बुद्धापा’, ‘मम्य बीबी की बिट्टी’, ‘पिता’, ‘पुत्र’, ‘बालक’ आदि छीपकों ने विदित होता है कि उस समय सब प्रकार के विषयों तक काव्य की पहुँच हो रही थी।

इस संक्रांति-युग की कविता में नवित्व-व्यक्ति और काव्यानुभूति का परिचय

नहीं मिलता। जो रुढ़ि-बद्ध शृंगारो यथवा धार्मिक कविता है उसमें कुछ भी नवीनता नहीं है, और जिसमें कुछ नवयुग का संदेश है उसमें न गुण-दोष तो काव्योचित मधुरता है न सरसता। ऐसा जान पड़ता है कि यद्य को तुकबंद करके रख दिया गया है। भावों में सामयिकता भी है और प्रचारात्मकता भी। अधिकांश कविता माहित्यिकता से कोनो दूर है। प्रायः समीपक द्विवेदी-युग की कविता को इतिवृत्तात्मक कहने है। हमारा विचार है कि भारतेन्दु-युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता और रूढ़ता उसमें कहीं अधिक है।

परन्तु इससे इस काल की कविता का ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं हो जाता। यह कविता जीवन के अत्यधिक निकट है। इसमें नवयुग की झलक और समय की छाया है। इसमें अगले युग के साहित्य का बीजांकुर है। यद्यपि ब्रजभाषा-काव्य की रीतियाँ इस समय प्रचलित थीं, तो भी जन-संपर्क की उत्कंठा जैसी इन कवियों में मिलनी है वैसी आज भी बहुत कम है। इस समय काव्य और राजनीति, काव्य और समाज तथा कवि और जनमाधारण एक दूसरे के बहुत निकट हो कर रहे हैं। इनकी स्वतंत्र भावना से कविता जीवन की आलोचना करने के योग्य बन गयी है, इनके प्रयोगों से ही कविताशैली इतनी विकसित हुई है और इनकी रखी हुई नींव पर आधुनिक काव्य-मंदिर का निर्माण हुआ है। ये कवि भारतीयों के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अघःपतन से क्षुब्ध हैं—यही क्षुब्धता आगे चलकर निराशावाद के रूप में हमारे सामने आई है और निराशावाद ध्यायावाद तथा प्रगतिवाद में प्रसफुटित हो गया है। इस काल की स्वतंत्रता, वास्तविकता, ईमानदारी, आत्मसम्मान, समार्थवादिता और प्रगतिशीलता काव्य में नई बात है—यहीं से आधुनिकता का प्रारम्भ होता है।

इस काल में तीन प्रकार की भाषा-रीतियाँ मिलनी हैं—१. प्राचीन परंपरा-नुसार ब्रजभाषा २. शुद्ध सड़ी बोली और ३. सड़ीबोली, तथा ब्रजभाषा का मिश्रित रूप। समादृत-भाषा रीतिकालीन ब्रजभाषा ही थी।

अधिया इसका परिमाणन भी हुआ और शब्द-सोपन भी। इस युग के कवि गर्वप्रचक्षित और परिचित शब्दों का प्रयोग ही अश्रद्धा मानने थे। ब्रजभाषा का जैसा शुद्ध रूप इस काल में प्राप्त होता है वैसा किसी और काल में नहीं मका। इस भाषा-शैली की स्वच्छता और प्रभावत्मकता को सभी समीक्षकों ने स्वीकार किया है। बाबू हरिश्चन्द्र ब्रजभाषा को ही काव्योपयुक्त भाषा मानने थे। वे सड़ी बोली में केवल यद्य लिखने के पक्ष में थे; परन्तु उन्होंने स्वयं भी यही बोली में कुछ कविताएँ की और उनके समयकालीन कवियों ने भी वही-वही यही बोली का प्रयोग अवश्य किया। भाषा के चुनाव में विषय और व्यक्तिगत



पमंद का भी हाथ था। प्रायः नवीन विषयों पर खड़ी बोली में कविता की जाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के पुराने विषय छूटते गये और नये विषय काव्योपयुक्त बनते गये, र्यों-र्यों ब्रजभाषा का मोह भी हटता गया और खड़ी बोली का व्यवहार बढ़ा। खड़ी बोली में पद्य-रचना कोई एकदम नई बात नहीं थी। नामदेव, कबीर, नागरी-दाम इत्यादि जनता के कवियों ने भी इसका प्रयोग किया था। अंतर यह है कि अब यह स्यासी रूप में काव्य-क्षेत्र में आ चली।

हरिश्चन्द्र-युग के कवि प्रायः दोनों भाषाओं में कविता करने थे, परन्तु इनमें कोई भी खड़ी बोली में रचना करने के लिए प्रसिद्ध नहीं हुआ। द्विवेदी जी के समय से पहले के ये कवि खड़ी बोली के इतिहास में वीरे ही हैं जैसे प्रादि-युग की हिन्दी-कविता के इतिहास में चंद के समय के चारण कवि।

तत्कालीन भाषा में प्रांतीय बोलियों के प्रयोगों के अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेजी के शब्द और अनुदित मुहावरे भी मिलते हैं। व्यत्य के लिए प्रायः उर्दू शब्दों और अंग्रेजी शब्दों का ही प्रयोग किया जाता रहा है। इस युग की खड़ी बोली भौंडी और अव्यवस्थित है। इस समय की स्वच्छदता काव्य की नये-नये विषयों और शैलियों में मोड़ने में प्रवृत्त रही, भाषा की ओर इसका अधिक ध्यान नहीं रहा।

यही बात खदो के विषय में भी कही जा सकती है। पुराने छंदों का प्रयोग वैसे ही होता रहा जैसे रीतिकाल में था। अधिकतर कविताएँ रोसा, सबैया, फवित, छप्पय, दोहा आदि हिन्दी-छंदों में होती रही। चकि खड़ी बोली की क्रियाएँ कवित्त, सबैया आदि के ढाँचे में विशेष बाधा उपस्थित करती थी, इस लिए उर्दू षग के छंदों, लाबनिशों और खमानों का उपयोग शुरू हुआ। झूलना, रोसा, लाबनी और कजली इस समय के सर्वप्रिय छंद थे। अधिकतर कवि भावनी के प्रेमी थे, परन्तु सफलता उन्हीं को प्राप्त हुई जिन्होंने इसका प्रयोग वर्णिक कृतों में किया। भारतेन्दु और प्रेमचंद ने नये विषयों के लिए रोसा छंद लिया। इनके अतिरिक्त उर्दू गजल और रेगता तथा संस्कृत के द्रुतविभक्तित और निम्बरीणी भी मिलते हैं। नये छंदों का उपयोग बहुत थोड़ा हुआ।

अलंकारों का प्रयोग भी रुढ़ि-बद्ध रीति में किया गया है और अधिकतर कवि अपनी भावनाओं की प्राचीन वेपमुषा में मगते रहे हैं। खड़ी बोली प्रायः-कार-शून्य रही।

इस प्रकरण में हम ब्रजभाषा-काव्य का अधिक उल्लेख नहीं करेंगे। उसकी शैली की विवेचना हम पिछले प्रकरणों में कर आये हैं। खड़ी बोली प्रतिनिधि और नवीन काव्य-शैली के इतिहास में इस युग की निम्नलिखित रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—‘भारतदुर्दशा’, ‘नीलदेवी’, ‘बालवीधनी’, ‘जैन-कुतूहल’, ‘प्रबोधिनी’, ‘वर्णा-विनोद’, ‘प्रातः समीरन’ आदि ।

अबिकादत्त व्यास ‘सुकवि’—‘मन की उमंग’, ‘देव-पुरुष-दृश्य’, ‘भारत-मौमय’, ‘कसवध’ आदि ।

राधाकृष्ण दास—‘राधाकृष्ण-ग्रंथावली’ में ‘स्वर्ग की सैर’, ‘धर्मताप’, ‘प्रताप-विसर्जन’ आदि कविताएँ ।

प्रतापनारायण मिश्र—‘मन की सहूर’, ‘प्रेम-पुष्पावली’, ‘भारत-दुर्दशा’, ‘तृप्यन्ताम्’, ‘मानस विनोद’ आदि ।

बदरीनारायण ‘प्रेमघन’—‘मानद-धरणोदय’, ‘हादिक हर्षादस’, ‘आर्घ्याभिनन्दन’, ‘कजनी कादम्बिनी’, ‘स्वागत’, ‘मानद वधाई’ इत्यादि ।

ठाकुर जगमोहनसिंह—‘क्षामा-स्वप्न’, ‘क्षामा-सरोजिनी’ ।

बालमुकुन्द गुप्त—‘स्फुट कविता’ में ‘स्वदेशी आंदोलन’, ‘जातीय गीत’, ‘श्रीराम-स्तोत्र’, ‘रामभरोमा’, ‘विधवा-विवाह’, ‘सम्य बीवी की चिट्ठी’, ‘वसन्तोत्सव’ आदि कविताएँ ।

गयाधरण गोस्वामी—‘हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका’ तथा ‘मोहन-चन्द्रिका’ ।

किशोरीलाल गोस्वामी—‘प्रेम-पुष्पाजलि’, ‘आकाश कुसुम’, ‘प्रेमयोषहार’, ‘वनिता-विनोद’, इत्यादि ।

इनके अतिरिक्त ‘ब्राह्मण’, ‘नागरी गीरद’, ‘सुभचिन्तक’ आदि तत्कालिक पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कविताएँ हैं जिनके संग्रह प्रकाश में नहीं आये ।

नये-नये विषयों का प्रतिपादन जिस ढंग से इस युग के काव्य में हुआ है उसके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं । इनसे हम काव्य की विशेषताओं

जवाहरण का ज्ञान भली प्रकार हो सकेगा ।

( १ )

नये नये बहु साठ आठ के भारत भारत भारत,  
लैंकदिनैट अरु भवर्नरादि परजा-काज संवारत ।  
जंगल काटि काटि के कोते नगर बजार बनाए,  
नहर निकारि नवी अथ नद पै भारी सेतु बेंचाए ।  
गोबि गोबि विद्यालय करिकें बहुत विवेक बढ़ायो;  
पान छलाइ रेत को तापें मानो नगर उड़ायो ।

(अबिकादत्त व्यास-मन की उमंग)

आप प्रायः प्राचीन ढंग की कविताएँ ही लिखा करते थे, परन्तु उनके साथ-साथ नये विषयों का स्वर भी मिला रहना था । शृंगार, ईशविनय, देश-भक्ति

के अतिरिक्त आपने राजभक्ति पर भी लिखा है। हरिश्चन्द्र, प्रेमघन आदि ने भी ब्रिटिश राज्य की सुविधाओं से मोहित होकर गुण-मान किया है। इन उद्गारों में जनता की भावना का सच्चा प्रतिबिम्ब है।

( २ )

पहिरि फोट पतलून बूट अरु हंट घारि सिर,  
भालू चरघी चरचि सर्वेडर को लगाइ फिर।  
निज भाइन के रचे वसन भूपन नहि भावत,  
मैनचेस्टर अरु लिवरपूल से सादि मंगावत।

(भंडिकादस व्यास-भारतधर्म)

इस युग के कवि आपत्तुस नहीं थे। देश की दरिद्रता से वे दुःखी थे। उनकी सहानुभूति व्यापक और उदार थी। सभी कवि उन लोगों की कड़ी भालोचना करते थे जो स्वदेशी वस्तुओं से घृणा करते हैं। इस पद्य में व्यास जी व्यंग्यपूर्वक नवयुवकों को मैनचेस्टर और लिवरपूल के सामान मगाने और विदेशी फैशन में रहने पर डांटते हैं। अपनी सस्कृति की रक्षा की भावना उनमें कितनी उत्कट है।

( ३ )

अंगरेज-राज मुल-भाज सजे सब भारी,  
ध धन विदेस चलि जात इहे अति हवारी।  
साहू पर महंगी काल रोग विस्तारी,  
बिन दिन बूने दुःख देत ईस हा हारी।  
सब के ऊपर टिक्कत की आफत आई,  
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

(भारतेन्दु-भारतेन्दु नाटकावली)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सरकार के दुर्व्यवहार और भ्रविचार के विरुद्ध जनता का असंतोष जागृत करने में बड़ा काम किया। राजभक्ति से सतुष्ट न रहकर वे सरकार की कटु भालोचना करने लगे थे। देश की आर्थिक दुर्दशा से सभी कवि शुष्य हो गये। वे महंगी, अकाल और कर की आपत्ति के सामने सरकार की दी हुई सुविधाओं का कुछ मूल्य नहीं समझते थे।

( ४ )

हे धनिमो, क्या बीन जनो की नहि सुनते हो हाहाकार,  
जितका भरे पड़ोसो भूला उसके भोजन को पिकार।  
हे बाबा, जो यह बेचारे भूतों प्राण भँवावेंगे,  
तब कहिये क्या धनो यत्ताकर अक्षरफिया पी जावेंगे।

हे धनवानो, हा थिक किसने हर ली बुद्धि तुम्हारी है,  
निर्धन उजड़ जायेंगे तब फिर कहिये किसकी बारी है।

(बालमुकुन्द गुप्त—जातीय गीत)

जब बालमुकुन्द गुप्त जैसे हास्यप्रिय कवि भी देश की आर्थिक दशा से प्रसंतुष्ट हो गये तो हम समझ सकते हैं कि काव्य जनता के कितना निकट आ गया था। इस पद्य में समाजवाद का बीजाकुर मिलता है। यही भावना भागे चलकर प्रगतिवाद के रूप में प्रगट हुई है। गुप्त जी की रचनाओं में राजमर्कित नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि उनके समय तक ब्रिटिश सरकार की प्रतिज्ञाओं का सुन-स्वप्न टूट चुका था।

( ५ )

बहु दिन बीते राम प्रभु सोचो अपना देस।  
सोचत हूं अब बंठ के भाषा भोजन वेस ॥  
बया करो यह दास पुजाओ हमरे मन की।  
सुप न बिसारें बबहुं तुम्हारे श्रीचरन की ॥  
सदा रहूं दुइ हिय महें निज सांचो हिन्दूपन।  
घोर विपत हूं परे डिगं नहिं आन और मन ॥

(बालमुकुन्द गुप्त—रामविमर्ष)

गुप्त जी उन कवियों में शुभ्र हैं जिन्हें हिन्दू-मस्तिष्क से प्यार है। इस पद्य में वे भाषा, भोजन, वेप और हिन्दूपन की सुरक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। उन्हें सरकार से कोई आशा नहीं। मगर 'राम' ही इस राजनैतिक और सांस्कृतिक दासता से छुदायेंगे। धर्मतोष और निराशा की हद्द हो गई है। राष्ट्राध्यक्ष के "प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए, अपने या पयारे भारत के पुनि दुख-दारिदृष्टि" में भी यही भावना है।

( ६ )

निज धर्म भली विधि जानें, निज गौरव की पहिचानें।  
स्त्रीगण को बिछा देवें, करि पतिव्रता यश सेवें ॥

(प्रतापनारायण मिश्र—प्रेमपुष्पावली)

झूठी यह गुलाल की सात्नी घोषत ही मिट जाय,  
बालव्याह को रोति मिटाओ रहे सात्नी मुंह छाप।

(प्रतापनारायण—होली है)

मिश्र जी उदार दृष्टि वाले कवि थे—धर्मात्मता इनमें नहीं थी। वे चाहते थे कि हिन्दू आत्ममर्मादा का ध्यान रखें, स्त्रियों को शिक्षा दें, बालविवाह को रोकें और अपने समाज का सुधार करके उन्नत हों। उन्हें नये-नये बाध्य-विषय बहुत

मूला करते थे। वे कभी-कभी अपने पत्र 'ब्राह्मण' में शुक्ल भी कविता-  
द्वारा मांगते थे। 'बुढ़ापा', 'गोरघा', 'मजल', 'कन्दन' आदि शीर्षक उनकी  
बहुमुखी प्रतिभा के चोख हैं।

( ७ )

खडन-भंडन की बातें सब करते सुनी सुनाई।  
गाली देकर हाथ बनाते खेरी अपने भाई॥  
है उपासना-भेद न उसके अर्थ और बिस्तारो।  
सभी धर्म के वही सत्य सिद्धांत न और दिखाओ॥

(प्रेमघन—मानंद धरणीदय)

प्रेमघन विशद कवित्वशक्ति, रम्यता और बहुलता के स्वागी थे। इनकी  
बहुत सी कविताएँ प्रजभाषा में हैं। खड़ी बोली में एक ही रंग है। इनकी अनेक  
कविताएँ अप्रकाशित हैं यद्यपि केवल पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं। इनकी  
रचनाओं में देशभक्ति, राजभक्ति, समाज-सुधार, ईश्वरविषय, धार्मिकता, हिन्दी-  
प्रचार, सभी प्रकार के सत्कामीन विषयों पर विचार मिलते हैं। इनकी मनोदृष्टि  
उदार है। ये धार्मिक वादविवाद को बुरा समझते हैं। सब धर्मों की एकता में  
इनका विश्वास है। यह पद्य उस समय के मानवतावाद का खोखल है।

( ८ )

पाही भग हूँ के गये दंडक बन थीराम।  
सातों थावन देश यह विष्णुदत्त ललाम॥  
विष्णुदत्त ललाम तीर तरवर सों छाई।  
कोतकि करय कुमुद कमल के खरन सुहाई॥  
भनत जगमोहनसिंह न शोभा जात सराही।  
ऐसी बन रमनीय गए रघुबर भग माही॥  
बहत महानद जोगिनी शिवनद तरल तरंग।  
कंक गृध्रकंचन निकर जहें गिरि अतिहि उतंग॥  
जहें गिरि अतिहि उतंग लखत नृंगन अति भाए।  
जिन पं बहुमग चरहि मिष्ट तृण नीर सुभाए॥  
सघन वृक्ष तरलता मिले गहवर पर उलहत।  
जिनमें सुरज-किरण पत्र-रंघन नहि निबहत॥

(ठाकुर जगमोहनसिंह—दयामा-स्वप्न)

प्रकृति-चित्रण की जो नई शैली शुरू हुई, उसके कई नमूने ठाकुर जी की  
कविता में मिलते हैं। उन्होंने प्रकृति के रमणीय स्वरूपों का चित्रण इस प्रकार से  
किया है कि सब दृश्य हमारे हृदय-चक्षु के सामने आ उपस्थित होते हैं। इनकी

रचनाओं में प्रकृति का मधुर और काव्योन्मुख वर्णन मिलता है। भाषा इनकी सरस और प्रवाह्यवत् ब्रजभाषा ही रही है।

( ६ )

अहो सोच कन्या विवाह का बूया हृदय नर धरते हैं,  
सर्वेश्वरितनुशत ईश कृपानिधि जोड़ी निर्मित करते हैं।  
भावी घर को जन्म प्रथम दे कन्या पीछे रचते हैं,  
'नायक' सोच करो मत कोई विधि के शंक न घबते हैं ॥

(विनायकराय)

विनायकराय उन कवियों में से थे जो हिन्दू-समाज के उद्धार के अभिलाषी तो थे, पर समाज में नये सुधारों की मांग के विरोधी थे। राधाचरण गोस्वामी और अम्बिकादत्त व्यास भी अपरिवर्तनवादी थे। ये लोग प्राचीन आदर्शों को ज्यों का त्यों देखना चाहते थे। इन्होंने बड़ी सुन्दर व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखी हैं।

( १० )

चहुँ जू साँची निज कल्मान। तो सब भित्ति भारत संतान ॥  
जपो निरन्तर एक जवान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥  
तबहिँ सुघरिहै जन्म निदान। तबहिँ भलो करिहै भगवान ॥  
जब रहिहै नितिदिन यह ध्यान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥

(प्रतापनारायण मिश्र)

'हिन्दी की हिमायत' की तरह की कई कविताएँ और लेख इस समय लिखे गये थे। इनमें बालमुकुन्द मुक्त की 'उर्दू की उत्तर' नाम की कविता बहुत प्रसिद्ध है। इस प्रकार की कविताओं से इतना तो प्रगट हो जाता है कि हिन्दी कविता के विषय क्या बन सके थे। इन्हीं के कारण इस युग की कविताओं पर इतिवृत्तात्मकता का आरोप किया जाता है। परन्तु इनके सामयिक महत्त्व से किसी का इन्कार नहीं है।

द्वितीय उत्थान

मग्न नियम काव्योन्मुख हो गकते हैं; अपना-अपना मत प्रकाशन करने की मग्न को स्वतंत्रता है; कविता अपनी बोल-चाल की भाषा में भी हो सकती है; इसमें नये-पुराने, देशी-विदेशी, छंदों का उपयोग होना स्वच्छंदता की चाहिये—इन प्रवृत्तियों का जन्म भारतेन्दु-युग में ही हो चुका प्रगति था। द्विवेदी-युग में इनका पालन-पोषण ही होना रहा है। जिस प्रकार के विचारात्मक और प्रचारात्मक विषय पिछले युग में मुख्य हुए थे, उस प्रकार के ध्वनि भी चलते रहे। इन्हीं में सबद अथवा दान

प्रेरित और विकसित दूसरे विषय भी अपनाये गये; परन्तु अपनी नवीनता और प्रवृत्ति में वे उसी शैली के थे जिसका गणेश भारतेन्दु-काल में हो चुका था। वही आशा-निराशा की होड़, वही उदारता, वही विश्वास और आत्म-सम्मान इन काल के कवियों में भी है। इन्हें सुव्यवस्था की लगन है। भ्रष्ट, विधवा, किसान, मजदूर तथा अन्य दलित प्राणियों से इन्हें सहानुभूति है। श्रीधर पाठक सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते हैं—बालविवाह के विरुद्ध वे भोजपूर्ण शब्दों में बोलते हैं। हरिऔध और नाथूराम शर्मा समाज की हानिकारक रीतियों की कड़ी आलोचना करते हैं। ठाकुर गोपाम-शरणसिंह दहेज-प्रथा और महिलाओं की निरक्षरता को हटाना चाहते हैं। मैथिलीशरण गुप्त समाज-सुधार के लिए उत्सुक हैं। ये सभी कवि संस्कृति की रक्षा में तत्पर हैं।

धर्म के क्षेत्र में भी इन कवियों की विचार-शैली में कोई विशेष अन्तर नहीं आने पाया। हा, इनकी मनोदृष्टि पहले से अधिक उदार हो गई है। इनमें गम और कृष्ण के भक्तों की कमी नहीं है। रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय आदि ने राम और कृष्ण पर उसी प्रकार से रचनाएँ की हैं जैसी धार्मिक काल में मिलती हैं। मिथारामशरण गुप्त और मुकुटधर ने ईशविनय के गीत उसी स्वर में गाये हैं जिसमें पिछले युग के कवियों ने। इन गीतों में आत्म-समर्पण के साथ-साथ रहस्यात्मकता की शलक भी मिलती है।

यह रहस्यात्मक भावना उस मानवतावाद का परिणाम है जो धार्मिक उदारता से विकसित हुआ। इन कवियों का विश्वास है कि ईश्वर की प्राप्ति मनुष्य-प्रेम से संभव है। ये ईश्वर की सत्ता का प्रमाण सेवा और सौंदर्य में देखते हैं। अधिकांश कवि गम और कृष्ण में भी मानव-प्रादुर्भाव पाते हैं और उन्हें मनुष्य ही समझते हैं। विश्व-प्रेम और मनुष्य-सेवा की भावना ने ही पागे चलकर आ्यावाद और रहस्यवाद की पुष्टि की है।

हम देखते हैं कि क्रमशः इन कवियों में भावों की प्रचुरता घाती गई है और उपदेशात्मक तथा नीति-सम्बन्धी कविताओं की कमी होती गई है। धीरे-धीरे मस्तिष्क का स्थान हृदय लेता गया है और कविता में वास्तविक कवित्व का विकास होना गया है।

इस युग की राजनैतिक चरित्राएँ भी वैसी ही उन्नत और उदार भावना से पूर्ण हैं। इन कवियों को भारतीय होने के साथ ही मानव होने का अभिमान है। इनका देश-प्रेम अस्मिन् के रूप में प्रकट हुआ है। इनकी देशभक्ति में यथार्थ परिस्थिति की ओर अधिक ध्यान है। इस काल की राष्ट्रीयता पर हम दूसरे प्रकरण के अन्त में निम्न चर्चें हैं। ये कवि अर्थान की अग्रगण्य वर्णमान के लिए

अधिक चिन्तित है। ये देश को उन्नत बनाने के लिए सारी ईश्वर से विनय नहीं करते—जनता से भी कुछ करने की प्रार्थना करते हैं। हरिश्चन्द्र-युग के कवियों ने किसानों और मजदूरों को चर्चाभात्र की है परन्तु इस युग के वे प्रधान विषय हैं। यही इन दोनों युगों का स्वच्छन्दतावाद है। इन कवियों की राजनीति में भी मानवतावाद है।

स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान में प्रकृति के प्रति अधिक प्रेम प्रगट किया गया है। अनेक कवियों ने प्रकृति को प्रधान वर्ण्य विषय बनाकर उसके विविध रूपों का सुन्दर और आँखों देखा वर्णन किया है। प्रकृति चित्रण श्रीधर पाठक ने हिमालय, काश्मीर, देहरादून, मंसूरी आदि प्राकृतिक स्थलों का चित्रात्मक विवरण और फूलों, पौधों, वृक्षों, सताग्रों का संवेदनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं में सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है। आपका प्रकृति और मनुष्य तथा अन्य प्राणी जगत में भ्रान्त्य का सम्बन्ध प्राप्त हुआ है। आपने घने जंगलों, महामुमियों, पथरीले टीलों, सूखे बालों और नये पहाड़ों का भी उनी सहानुभूति और मामिकता से चित्रण किया है जिस प्रकार ग्राम-मुषमा, हरे-भरे बागों और जल-प्रपातों का, अथवा हृदयशाही दुद्यों का। मोचनप्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, नामूराम शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यामह उपाध्याय ने प्रकृति के विभिन्न पक्षों पर अच्छी कविताएँ लिखी हैं।

इस जगह हम प्रकृति-चित्रण की उन सभी रीतियों का विवरण दे देना आवश्यक समझते हैं जो द्विवेदी-युग के अन्त तक विकसित हो गई थी।

प्रथम—प्रकृति के रूपों का स्वतंत्र रूप में केवल चित्रण। इस प्रकार का प्रकृति-वर्णन संस्कृत के महाकाव्यों और नाटकों में भी हुआ है जैसे ऋतु-वर्णन, नगर वर्णन, समुद्र-तट-वर्णन, शैल-वर्णन, शरणा-वर्णन, प्रभात-वर्णन इत्यादि। हिन्दी में भी इस प्रकार के वर्णन आख्यानों में मिलते हैं—शृङ्गारी काव्यों में भी पटु-श्रुतुवर्णन और बारहमासा इसी ढंग के हैं। परन्तु शृङ्गारी काव्य में ये वर्णन नायक नायिकाओं पर वासनामय प्रभाव दिखाने के लिए किये गये हैं। प्राधुनिक युग में इस तरह के वर्णन स्वतंत्र रूप में किये गये हैं। श्रीधर पाठक, श्रीधर शर्मा, मोचनप्रसाद पाण्डेय, रामचन्द्र शुक्ल, मदनमोहन मालवीय, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि अनेक कवियों ने प्रभात-वर्णन, निराश-वर्णन, वसन्तोत्सव, हिमालय, विध्याटवी, तरेटी, जलप्रपात, गरिमा, शरणा, मेघ, वन, तड़ाग आदि पर चित्रात्मक कविताएँ लिखी हैं। इनमें प्रकृति के विविध



रूपों को प्रार्थन मानकर उपस्थित किया गया है—उद्दीपन बना करके नहीं। इस युग के प्रारम्भ में ऐसी कविताओं का प्राधान्य था।

प्रकृति-वर्णन की दूसरी शैली संवेदनात्मक है जिसमें प्रकृति के जो-जो प्रभाव मनुष्य पर पड़ते हैं उनका भी साथ-साथ वर्णन किया जाता है। शृंगारी काव्य में ऋतुओं और प्राकृतिक वस्तुओं को कामवानना के जमाने के लिए लाया जाता था। द्विवेदी-युग में आदर्शवाद और संयम के कारण इस भावना में अन्तर पड़ा। प्रकृति आनन्द, विस्मय और उन्माद का उद्बेक करने लगी। कवि ने प्राकृतिक दृश्य देखा और उसके प्रति मृदु-भाव से उमड़ पड़े। शीघर पाठक कादमीर-मुयामा से आनन्द-विभोर हो गये। विद्याभूषण 'विभु' तितली की देखकर पागल हो गये। कोई कवि इन्द्र-धनुष देखकर 'बाह-बाह' कह उठा, कोई मेघागमन से उन्मत्त हो गया और कोई निर्झरिणी का कमलका मुनकर एकदम गीत गाने लगा।

‘पथिक’ में ऐसे अनेक दृश्य मिलते हैं।

इस युग में प्रकृति मानवीय भावनाओं और कार्यों की पुष्टभूमि बन चली। ‘प्रिय-प्रवास’ का प्रायः प्रत्येक अध्याय प्रकृति-वर्णन से प्रारम्भ होता है। ‘पथिक’ का पहला अध्याय प्रकृति-वर्णन पर है। इससे यही दिखाना अभिप्रेत है कि वातावरण का प्रभाव मनुष्य की भावनाओं पर कितना गहरा पड़ता है। इस प्रकार प्रकृति मनुष्य के निकटतर आ गई।

कवि प्रकृति को माना के रूप में देखने लगे। उन्हें दलित कुमुद की देखकर दुःख भी होने लगा। कभी-कभी उन्हें ऐसा भी अनुभव हुआ कि प्रकृति मनुष्य के सुख में मूली और दुःख में दुःखी हो जाती है। ‘प्रिय-प्रवास’ में ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं। आगे चलकर इस शैली का प्राधान्य हो गया और छायावादी कवियों ने अपनी चित्तवृत्ति के अनुरूप प्रकृति का अत्यन्त मूर्तिमान एवं भाष्यात्मक चित्रण किया। अब तो वर्णनात्मक शैली का लोप-नश हो गया है और कुछ लोग अनुभव करने लगे हैं कि हम वस्तुतः प्रकृति से बहुत दूर चले जा रहे हैं। आज के प्रायः कवि घर बैठे प्रकृति से बातें करके प्रथा-पातन कर रहे हैं। प्रकृति उनकी ‘सजनी’ बनकर न केवल उनके भौतिक जीवन में भाग लेने लगी है, यद्यपि उन्हें भाष्यात्मक जगत में ले जाने में भी समर्थ हुई है। परन्तु हमें यह सचाई नहीं है जो द्विवेदीयुग में प्राप्त होती है।

प्रकृति का तीव्रता उपमाय उपमान और रूपक के रूप में चिर-काल से होता आया है। आदिवाल, अन्तिकाल और रीतिकाल के काव्य में इसके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं।

इस युग में रूपकों की सृष्टि दो प्रकार से हुई है। प्रकृति के रूपों

का मानव-चरित्र पर आरोप और मानव-हृदय की भावनाओं का प्रकृति प्रदर्शन। एक और मानव-हृदय-गगन पर दुःख के वादना का दृग्गन्ध दिवाया गया है तो दूसरी ओर कुसुम के हृदयतन से उच्छ्वास निकलने दिवाये गये हैं। गुप्त-बन्धुओं की कविताओं में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनका विस्तृत विवरण आगे 'ध्यायावाद' के प्रकरण में दिया जायगा।

हरिदचन्द्र युग के काव्य-साहित्य में उच्च वग का नेतृत्व बना रहा परन्तु स्वच्छंदतावाद के दूसरे उत्थान में मामान्य मानवता का प्रतिनिधित्व भी होने लगा। काव्य का विषय विस्तृत हो गया। इसमें ईश्वर, महावीर, धर्म्य विषय, दृष्टक, मजदूर, धनाय, विधवा, मर का चरित्र चित्रण हुआ है। इस चरित्र-वर्णन में वैज्ञानिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण है।

प्रपञ्च के स्थान पर तात्त्विक दार्शनिक का प्रभाव अधिक है। राम और कृष्ण को 'रामचरित चिन्तामणि', 'प्रिय-प्रवास', 'जयद्रथ-वध', 'पञ्चवटी' और 'मार्केत' में महामनुष्यों के रूप में अंकित किया गया है। इनमें अनीतिक और प्रतिमानुषिक प्रसंगों का प्रभाव है। देवी-देवता तो प्राधुनिक काव्यलोक में निकाल ही दिये गये हैं।

स्वच्छंद परन्तु वासना-रहित प्रेम का जैसा चित्रण इस समय में हुआ है उसका उल्लेख हम पिछले प्रकरण में कर चुके हैं। यह याद रहे कि इस युग में प्रेम की प्रधानता नहीं है।

यहाँ पर यह बता देना उचित है कि स्वच्छंदता के समवेग में काव्य में रम उपेक्षित रह गया। कोई रम दूर तक चलना दिखाई नहीं देता। हिन्दी-काव्य रम, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के वचन में मूल्य हो गया। प्राधुनिक काव्य में भाव की प्रधानता हो गई—रम गीत रूप में रह गया। इस में काव्यत्व की बहुत क्षति हुई है। हम तो इसे प्राधुनिक साहित्य का ही प्रतिपाद समझते हैं।

अधिकतर प्रायोगिक द्विवेदी-काल की कविताओं की इतिवृत्तात्मक, स्वकी और कवित्व-हीन बहा करतें हैं। बात यह है कि स्वच्छंदता के प्रयास में कवि-गण अनेक प्रकार के अस्थायी, सामयिक और उपदेशात्मक इतिवृत्तात्मकता विषयों पर भी कविताएं बहा करने थे। मनोप, भागा, काम, शोष, दुःखता, साहस, ग्रंथों की महिमा, प्रेम की महिमा, लेखकों की विशेषता, मेघ का गुण-दोष, समय की उपयोगिता आदि तत्कालीन कविताओं के शीर्षक बतला रहे हैं कि युग में काव्य-विषय क्या बन चले थे। कवि कभी-कभी ऐसे विषय भी चुनते थे जिन पर वस्तुतः पूर्ण विवेचना कर सकें। इनमें काव्योपयुक्त कल्पना के स्थान पर बौद्धिक अंश ही प्रधान है। इन विशिष्ट

कविताओं में मधुरता, व्यंजकता और साकेतिकता का अभाव-सा है। इनमें काव्योपयुक्त कल्पना के स्थान पर बौद्धिक अंश ही प्रधान है।

कुछ-एक कविताएँ वर्णनात्मक और आस्थानात्मक शैली की भी हैं। दौर्गणिक कथाओं, पौराणिक महात्माओं, सामयिक घवसरोँ और चित्रों पर भी कविताएँ मिलती हैं। इन में कुछ वर्णन बड़े सुन्दर हैं, अधिकतर मूल्य और नीरस हैं। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विषयों पर लिखी गईं अनेक कविताएँ भी इतिवृत्तात्मक हैं। इनमें कवित्व बहुत कम है। शायद इसी इतिवृत्तात्मकता से खिल होकर सन् १९१६ ही में पं० कामताप्रसाद मुखर्जी ने 'मरसवती' में लिखा था—

"वे लोग तब और धन की सुन्दरता का वर्णन करते हैं पर मन की सुन्दरता का नाम नहीं लेते। राजभक्ति सिखाने हैं, पर देशभक्ति नहीं सिखाते। रण की कटाकट का वर्णन घर बैठे करते हैं परन्तु शूरता और साहस का उपदेश नहीं देते। शब्दालंकारों को छोड़, उन्हें अर्थालंकार सूझता ही नहीं। . . . कोई-कोई कुर्तन, मच्छड़ और खटमलों को ही कविता के योग्य विषय मानते हैं।"

इस कथन में सचाई भी है और अतिशयोक्ति भी। बात यह है कि इस काल में दोनों प्रकार की शैलियों का संमिश्रण हो रहा था। हरिश्चन्द्र-युग में भी वस्तु-प्रधान कविताएँ कही जाती रही हैं और आजकल भी इतिवृत्तात्मक कविताओं की कमी नहीं है। परन्तु यह है कि हरिश्चन्द्रयुग में अथवा आज वस्तुप्रधान तथा हृदय-प्रधान कविताएँ अलग-अलग नहीं हैं और द्विवेदी-युग में इनका समन्वय करने का प्रयोग होता रहा है। उस समय के प्रयोगात्मक काव्य से ही वर्तमान युग का भावपरा विकसित हुआ है। फिर यह बात भी नहीं है कि उस काव्य में मन की सुन्दरता पर ध्यान ही नहीं दिया गया अथवा राष्ट्रीय-मन की कविताएँ ही नहीं। भारतीय आत्मा, हरिऔष, प्रसाद और मुक्त की धार्मिक रचनाएँ भी तो इसी युग में लिखी गई थी और पहले प्रकरण में हम इस समय की राष्ट्रीय भावना का मूल्यांकन भी कर चुके हैं। प्रयोग तब भी हो रहे थे, भय भी हो रहे हैं—स्थिरता अब भी हमारे आधुनिक काव्य में नहीं आने पाई। यही तो स्वच्छन्दता का प्रमाण है। उस समय भी द्विवेदी-गम्प्रदास के कवि आदर्शवाद को लिए हुए प्रचारात्मक काव्य की गृष्टि करते रहे और पुनः प्रगतिवाद के नाम से काव्य को प्रचार का माधन बनाया जा रहा है। न उस समय भावनात्मक कविताओं की कमी थी, न आज इनका अभाव ही हो गया है और न ही नका एकच्छन्न राज्य ही।

द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक शुद्धता भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण

है। उसी में जनै: जनै: सरसता, गंभीरता और भाविकता आने से आज की हिन्दी-कविता इतनी समृद्ध हो सकी है। पृष्ठभूमि पर छायावाद, प्रगति-द्विवेदी युग का वाद और विज्ञानवाद की वर्तमान कविता खड़ी है। विकासवाद महत्त्व की दृष्टि से इस युग की रचनाओं का मूल्य बहुत अधिक है। भारतेन्दु-युग ने द्विवेदी-युग चलाया और द्विवेदी-युग ने नवीन युग। द्विवेदी-कालीन कवियों की चलाई हुई प्रवृत्तियाँ ही आज देखने में आती हैं। उन्होंने नवीन काव्य-शरीर का निर्माण किया, सभी तो आज उस में प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकी है।

इसमें सदेह नहीं कि इस काल के अधिकतर कवि भाषा के पचड़े में पड़े रहे, तो भी उनकी काव्य-वस्तु में नव-प्रबुद्ध भारत की पूरी झलक मिलती है। 'प्रिय-प्रवास' और 'साकेत' इसी युग की देन हैं। इनमें लोक-मग्न ही भावना स्पष्ट है। तरकालीन काव्य में नवीन और प्राचीन का, प्राच्य और पारश्चात्य का, साहित्य और विज्ञान का जो समन्वय हुआ है उसी से आज हमारा हिन्दी साहित्य विकसित हो रहा है।

हरिश्चन्द्र और द्विवेदी-युग मिलकर आधुनिक युग की पृष्ठभूमि बने हैं। इसी समय में पौराणिक भारतीय मस्कृति की सुरक्षा का प्रयत्न भी हुआ और नवीन युग के लिए पूर्व और पश्चिम के एकीकरण से नई भावनाओं का उद्गम भी हुआ। हरिश्चन्द्र-युग ने हिन्दी काव्य को यथार्थवादिता और स्वच्छदता दी तो द्विवेदी-युग ने उस में घादशवाद का समावेश किया। एक ने उसे रीतिकाय्य की रसिकता दी तो दूसरे ने धार्मिक काव्य की भावुकता। एक ने नवीन राष्ट्रीय विवेक उत्पन्न किया तो दूसरे ने रुढ़ियों की दुर्बलता का अनुभव। एक ने समाज की सुध ली तो दूसरे ने परिवार की भी। सामाजिक और पारिवारिक साहित्य ही इन दो युगों की विशेष देन है। दोनों में क्रमवद्धता और अविच्छिन्नता का सम्बन्ध है। हरिश्चन्द्र-युग ने नवीन चेतना प्रदान की और द्विवेदी-युग ने उसे भाषा दी। दोनों के मिलने ही नवीन युग का उत्थान हुआ।

काव्य में दो भाषाओं का होना बहुत लोगों की खटकता था। राष्ट्रीयता और देश की एवता की भावना के साथ-साथ हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने की ममाना बढ़ती जा रही थी। तब महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके प्रशिया साथियों ने अनुभव किया कि गद्य और पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिये। हिन्दी-साहित्य को भारतीय साहित्य बनाने के लिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी की एकच्छन्न सत्ता को मानना पड़ेगा और प्रातीय उप-भाषा को छोड़ना ही पड़ेगा—इस धारणा के विरुद्ध राजभाषा-प्रेमियों ने एक विरुद्धवाद खड़ा किया। हिन्दी-साहित्य के सौभाग्य से खड़ी बोली का पक्ष प्रबल रहा। खड़ी बोली

को एकवृत्त साहित्यिक प्रमुखता प्राप्त हुई। विद्यापति की मैथिली, मूर की वज्रभाषा, जायसी और तुलसी की अवधी, मोरा की राजस्थानी और केशव की बुंदेली के विभिन्न रंगों पर एक पक्के रंग की छाप लग गई। भाषा में एकत्वता आई, और काव्य तथा समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। द्विवेदी-भाप्रदाय की इस विजय से भाषाओं को स्वच्छ विचारने का अधिकार प्राप्त हुआ, कविता की प्राचीन प्रथा की रीढ़ से रिहाई मिली और नई काव्य-शैलियों को पनपने का अवसर मिला।

शुरू-शुरू में खड़ी बोली अत्यंत अव्यवस्थित थी। कवि लोग शब्दों की मोड़-मरोड़ कर लिखते रहे, वज्रभाषा के रूप में बीच-बीच में चमकते रहे और उनके वाक्य क्षिप्त एवं अशुद्ध बने रहे। द्विवेदी जी ने इन दोषों को दूर करने में बहुत काम किया। बीसियों लेखकों पर उनका प्रभाव पड़ा। दूसरा प्रयत्न हरिऔध जी ने किया। शुरू-शुरू में 'पूर्ण', किशोरोत्तम गोस्वामी, मैथिलीशरण गुप्त, सत्यशरण आदि की रचनाओं में भाषा कर्कश और अपरिपक्व रही, संस्कृत पदावली और लंबे-लंबे समास व्यवहृत होते रहे, परन्तु 'प्रियप्रवास' की भाषा सरल-गमित्र और समास-युक्त होती हुए भी मधुर और भोजपूर्ण है। मैथिलीशरण गुप्त ने भाषा को ताक्षणीकता प्रदान की, ठाकुर गोगलधरणमिश्र ने प्रवाह दिया, सनेही ने उसे प्रभावशालिनी बनाया, और रूपनारायण पांडेय, मधन द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय आदि ने उसका परिष्कार तथा प्रचार करके आधुनिक हिन्दी काव्य की नाव को सुदृढ़ किया।

बंगला, मग्रेजी और संस्कृत के प्रभाव से खड़ी बोली का शब्द-भांडार समृद्ध हुआ है। बोलचाल के उर्दू-शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी उदारता से किया गया है। सनेही और भगवानदीन ने उर्दू-फारसी के चलने शब्दों का खूब प्रयोग किया है।

वज्रभाषा का प्रचलन भी बराबर होता रहा है। पाठक, नाथूराम दाँकर, पूर्ण, सनेही, कविरत्न, दीन और हरिऔध ने दोनों भाषाओं का साथ दिया है। पाठक जी की भाषा मिश्रित है। हरिऔध ने एक ओर 'प्रियप्रवास' में खड़ी बोली का रूप प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर 'रत्नमाला' में वज्रभाषा का। पाठक वज्रभाषा को खड़ी बोली की ओर से भ्रान्त चाहते थे—रत्नाकर खड़ी बोली को भी वज्रभाषा की ओर में जा रहे थे। इस होड़ में अपरिवर्तनवादिषों को हार माननी पड़ी।

खड़ी बोली के ये कवि विविध छंदों में पूर्ण रूप से संपन्न हुए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में मसृत्त, उर्दू और हिन्दी के छंदों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, भगवानदीन और मैथिलीशरण गुप्त ने उर्दू



इनमें वर्णनात्मक स्थल बहुत कम हैं। कहानी में नाट्यत्व और प्रवाह अधिक हैं और भाषा सरल। दोन का 'वीरपंचरत्न', गुप्त का 'रंग में भंग', 'विकट भट' आदि काव्य इसी शैली के हैं।

मुक्तक अथवा प्रबन्ध-काव्य का कनेवर निश्चित करने में व्यक्तिगत रुचि और स्वतन्त्रता से काम लिया गया है। किसी ने ८-१० पक्तियों में और किसी ने १००-२०० पृष्ठों में अपनी एक-एक कविता बही है।

इस युग की प्रमुख रचनाओं के नाम ये हैं—

धीधर पाठक—'मनोविनोद', 'काश्मीर-मुपमा', 'देहरादून'  
अयोध्यासिंह उपाध्याय—'प्रिय-प्रवास', 'चौखें चौपदे', 'पञ्च-  
प्रमुख रचनाएँ प्रभू', 'बंदेही-वनवास', 'ग्रामगीत' आदि।  
भगवानदीन—'वीर पंचरत्न', 'नवीन बीन', 'नदी-मेदीन'।  
रामचरित उपाध्याय—'रामचरित चिंतामणि'।  
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेहो'—'प्रेम-पञ्चीसी', 'कुसुमाञ्जलि', 'दुखिया  
किसान', 'मानसतरंग', 'करुण भारती', 'भारत-कृपक-कन्दन',  
'कवित्त', 'सवेया'।

रूपनारायण पाण्डेय—'पत्र-पुष्प', 'मातृभूमि', 'पराग'।

रामचन्द्र शुक्ल—'शालक'।

लालचनप्रसाद पाण्डेय—'धुमाधार', 'प्रवासी', 'नीति-कवित्त'।

राय देवीप्रसाद पूर्ण—'पूर्ण-संग्रह'।

भुक्तधर—'समाज कटक'।

रामनरेश त्रिपाठी—'पथिक', 'ग्रामगीत', 'मिसन', 'स्वप्न',  
'मानसी' आदि।

गोपालशरणसिंह—'माषवी'।

मैथिलीशरण गुप्त—'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भंग',  
'वैतालिक', 'शकुन्तला', 'शाकेत'।

सियारामशरण गुप्त—'आर्द्रा', 'दूर्वादस', 'विपाद'।

इनके अतिरिक्त इन कवियों की रचनाएँ 'सरस्वती', 'जन्म-भूमि',  
'बाल-विस्तार', 'नागरी-नोरद', 'हिन्दोस्तान', 'भारतमित्र', 'शुभ-चित्तक',  
'हिन्दी-प्रदीप', 'भारत-मुद्रा-प्रवर्तक', आदि पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं।  
इस युग की कृतियों के विस्तृत अध्ययन के लिए उनका संग्रह हो जाना  
परमावश्यक है।

ध्यामाद का बीबाकुर इसी युग में गुप्तकृत 'संसार' और प्रसादकृत  
'शरत्' में मिलता है। मातनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में भी रहस्यात्मक

भावना मिलती है। इनका हम अगले ही प्रकरण में उल्लेख करेंगे।

द्विवेदी-युग की शैलियों को समझने के लिए निम्नलिखित उद्धरणों  
उदाहरण की अच्छी तरह देखा जाय।

( १ )

कितने पातक नित होत तिहारे घर में,  
कितनी अश्ला-जन गिरत दुःखसागर में।  
मातृ-विवाह कितने नहि नित होते हैं,  
जिनके फल सखि सखि कौन नहीं रोते हैं।  
यह लोह-बाल अति बुरी देश में छार्द,  
किहि रीति कुमति-पथ भिटं सकल दुखदाई।

(धोषर पाठक—मनोविनोद)

यह नमूना है द्विवेदी-युग के आरम्भ की खड़ी बोली का। इसमें ध्वजापा के रूप भी मिश्रित है, वाक्य मिश्रित और अव्यवस्थित हैं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है, व्याकरण-संमत शुद्धता की उपेक्षा की गई है और काव्य-कला का नितांत अभाव है। परन्तु इस अवस्था से चलकर थोड़े ही वर्षों में गुप्त और प्रसाद की भाषा और कला तक पहुँच जाना इस समय की आश्चर्यजनक सफलता है। पाठक जी का विषय वही है जो भारतेन्दु-सम्प्रदाय का था। परन्तु इन्हें विशेष सफलता मिली है प्राकृतिक नैर्दय के चित्रण में जिसका नमूना आगे दिया जायेगा।

( २ )

भगवान हिंदू जाति का उत्थान कैसे हो भला।  
नित यह कुरीति रहेन वाली घोंटती उसका गला ॥  
मुकुमारियां बे भोगती हैं मातना कितनी बढ़ी।  
जो पूर्ण जीवन काल में भी है बिना व्याही पड़ी ॥  
अगणित कुटुंबों का किया इस राससी ने नाश है।  
तो भी मुझो न अभी अहो इसको दधिर की प्यास है ॥

(टा० गोपालशरणसिंह)

शृंगारी और भक्ति-प्रधान कविताओं के साथ साथ आपकी देश और समाज पर भी अनेक कविताएँ हैं जिनकी शैली हरिदचन्द्र-युग से मिलती-जुलती है। आप ने सुबोध सड़ी बोली में संजीर तथा ऊँचे भावों की अभिव्यक्ति भी की है। आपकी भाषा मधुर और चतुर है।



( ३ )

ब्रह्मदेव फिर उठी देश का हित करने को ।  
 रोग शोक दारिद्र्य दुःख दुर्मति हरने को ॥  
 देतो सारा विश्व फिर क्या है सच्ची सभ्यता ।  
 पराकाष्ठा धर्म को और भाव की नव्यता ॥

(रूपनारायण पांडेय)

आप की प्रायः कविताओं के विषय इसी प्रकार सामयिक हैं । देश-भक्ति, राष्ट्र-नोदर, स्वदेश-प्रचार इत्यादि आपकी कविता के मुख्य विषय हैं । ब्राह्मणों से ध्यान की वही आया है । आप ने कुछ कहानियाँ भी पद्य-बद्ध की हैं, प्रकृति-सौंदर्य पर भी आप की सुन्दर कविताएँ हैं । प्रकृति के प्रति आप की महानुभूति भी स्पष्ट है । आपने अपनी रचनाओं में बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है ।

( ४ ) !

कहो तो भाज कहें आप की आँखों की क्या समझें ।  
 सिता सिद्धर भूगमवशुक्त अद्भुत कुछ दबा समझें ॥  
 अगर इसको न मानो तो बता दें दूसरी उपमा ।  
 सहित हल्ला हलहल-मिथित सुन्दर मुखा समझें ॥  
 न हो सन्तोष इस पर भी तो उपमा तीसरी ले लो ।  
 मुगल पद-धारिणि त्रिगुणात्मका श्रेष्ठ की श्रवा समझें ॥

(भगवान्दीन-प्राज्ञ)

उन्हें की बहुर में संस्कृत-भक्ति-वाक्यो का कैसा सुन्दर प्रयोग हुआ है । आप काव्य में चमत्कार का महसूस मानने वालों में से । आप उन कवियों में से से जिन्हें प्राचीन काव्य-विषयों से भी बराबर प्रेम रहा है ।

( ५ )

पुत्रों किसी मदीन के हों कहने को साठ ।  
 बिगड़े उनमें एक तो हों सब बाहर बाठ ॥  
 हों सब बाहर बाठ यदि हो चलना कल का ।  
 छोटा हो या बड़ा किसी की कहो न हलका ॥  
 यह देश मज्जीन सीधे सब दर्जें दर्जें ।  
 चलें मेल के साथ उड़ें क्यों पुत्रें पुत्रें ॥

(देवीप्रसाद शुक्ल)

आप प्रजभाषा और सड़ी बोली में दोनों में भक्ति, वैदांत, देश-भक्ति, समाज-सुधार, स्वदेशी, मानवभाषा तथा प्रकृति पर कविताएं करते थे । इस उद्धरण में

सड़ी बोली को कुंडली के साचे में डालने का मफल प्रयत्न है । आपने सड़ी बोली में दोहे भी लिखे हैं ।

( ६ )

मोहन कब ली मौन रहोगे ?

निज आंखों में धरं ठीकरो, कितने धीर रहोगे ?

तुम देखत भारत-मानव-कुल, आकुल दिन-दिन धीरे ?

कहा भयो पाषाण हृदय तुझ, जो नहि तनिक पसीजें ॥

(सत्यनारायण कविरत्न)

आप को वज्रमाया और सड़ी बोली में समान-रूप से प्रेम था । जातीयता आपके काव्य का प्रधान गुण है ।

( ७ )

अहह ! अथम आंखी, आ गई तू कहां से ?

प्रलय धन-घटा लो छा गई तू कहां से ?

पर-दुःख तू ने, हा, न देखा न भासा ।

कुसुम अफजिला ही, हाथ । मैं तोड़ डाला ॥

तड़प-तड़प आली अधुपारा बहाता ।

मलिन मणिनिया का दुःख देखा न जाता ॥

निदुर ! फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से !

इस नवलतिका की गीद सुनी किये मे ॥

(रूपनारायण पांडेय-वर्तित कुसुम)

( ८ )

करोनाय स्वीकार आज इस हृदय-कुसुम को ।

करे और क्या भेंट राजराजेंद्र तुम को ॥

इष्ट नहीं है इसे कि पारण करो हृदय पर ।

निज मंदिर में ठौर कहीं दो इसको प्रभुवर ॥

(सियारामशरण गुप्त)

कहीं पाऊं अवलंबन हाथ ?

रिक्त है यह भूजा का थाल,

हृदय में है भीषण भूजाल ।

भूतकर मेरा मुमनोदान,

रो रहा है निर्जन मुनसान ।

जहाँ जंते भी हैं जो भूल,

हो गये आज चिता की धूल ।

(सियारामशरण गुप्त)

भावुकता, करुणा और पर-दुःख-कातरता इनकी कविताओं की प्रधान विशेषताएँ हैं। इनकी कविताएं उन्नीस-सुखाद, व्यापावाद और रहस्यवाद का परिचय देती हैं जिसका प्रचलन द्विवेदी-युग के बाद जोरो में हो गया था। इन रचनाओं में ईश्वर के प्रति सच्चा आत्मसमर्पण है।

( ६ )

धन्य यहाँ की घूल धन्य नीरद नभ तारे,  
धन्य धवल हिम-भ्रूंग तुम दुर्गम दुग प्यारे।  
धन्य सुपर गिरिधरन सरित निर्जर-रव-प्ररित,  
तपु दीरघ तट विहंग घोस कोकिल कस कूजित।  
यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर,  
यहि अमरन को लोक यहाँ कहूँ बसत पुरंदर॥

( श्रीपर पाठक—काश्मीर-मुपमा )

इनकी कविता पढ़ने में मालूम होता है कि इन्होंने सृष्टि-सौंदर्य का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया था। इन्होंने काश्मीर, देहरादून मसूरी, हिमालय, बन, मानस्य-दृश्य, धन-शोभा आदि का अपूर्व और रमणीक वर्णन किया है—सवेदनात्मक भी और चित्रात्मक भी। इनकी भाषा का मूल्यांकन करते समय यह नहीं भूल जाना चाहिये कि ये हरिश्चन्द्र-युग और द्विवेदीयुग की सधि रेखा पर खड़े हैं। इनकी प्रतिभा के दर्शन काव्य-विषयी और छंदों के नये-नये प्रयोगों में होते हैं।

( १० )

गया उसी बेचल के पास से है ग्राम पथ,  
इधेन दरियों में कई घास की विभषत कर।  
पूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ू हरे,  
गोरज से घूमल जो खड़े हैं किनारे पर।  
उन्हें कई गाँवों पर भगले बढ़ाए हुए,  
कंठ की उठाए चुपचाप हो रही हैं धर।  
जा रही हैं घाट और ग्रामवनिताएँ कई,  
नीटती हैं कई एक घट और कलश धर॥

( रामचन्द्र शुक्ल—शालक )

ग्रामका प्रकृति-वर्णन अपनी स्वतंत्र मत्ता रखता है। प्रकृति के चित्रणों में ग्राम अपनी ओर से कुछ नहीं मिलाते और न ही प्रकृति के ऊपर अपनी भावनाओं का आरोप ही करते हैं। प्रकृति-प्रेम के कारण ही शुक्ल जी को ग्राम-जीवन अधिक पसंद रहा है। ऊपर की पंक्तियों में ग्राम-मुपमा का वही मञ्जीव वर्णन किया गया

है । आपकी भाषा परिष्कृत और प्रवाह-सम्पन्न है । आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में प्रकृति और मनुष्य पर सुन्दर कविताएं लिखी हैं । आपकी कदम्बर की कविताएं बहुत प्रभावोत्पादक हैं ।

( ११ )

चिन्ता की सी कुटिल उठतीं अंक में जो तरंगें ।  
वे यों मानों प्रकट करतीं भानुजा की व्यापणें ॥  
धीरे धीरे मृदु पवन में चाव से यों न डोलीं ।  
हालाएं भी सहित लतिका शोक से कंपिता यों ॥  
पांवों को वे यदि बल के साथ ही ये उठाते ।  
तो भी वे ये न उठ सक्ते हो गए ये मनों के ॥  
मानों यों वे गृह-गमन से नन्द को रोकते ये ।  
संशुद्ध हो प्रबल बहती शोक-धारा जहां थी ॥

(अयोध्यासिंह उपाध्याय—प्रियप्रवास)

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में हिन्दी को बहुत कुछ दिया है । आप का शब्द भंडार अगाध था । 'प्रियप्रवास' आप की महान् साधना का परिचायक है । इसमें करुणा का मार्मिक चित्रण किया गया है । काव्य में कोमलकांतपदावली का प्रयोग हुआ है । 'चोखे-चोपदे', 'अपस्विमा फून' आदि में रोत्रमर्मा की भाषा के उदाहरण हैं ।

( १२ )

जग की आंखों से ओझल कर बरबस मेरी दृष्टि उठाकर ।  
मिलमिल करते हुए गगन में तारों के पथ पर पहुँचाकर ॥  
करता है संकेत देखने को किसका सौंदर्य मनोरम ।  
आकर के चुपचाप वहाँ से यह संध्या का तम अति प्रियतम ॥

(रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न)

'पथिक', 'मिनन' और 'स्वप्न' इनके वे मउकाव्य हैं जिनमें देशभक्ति की प्रेरणा है । जगह-जगह प्रकृति के मवेदनात्मक चित्र मिलते हैं । प्रकृति के साथ इन्होंने सहानुभूति प्रगट की है । उन्हें रहस्यात्मक संदेश भी मिले हैं । इन्होंने बानर, युवा, वृद्ध मय के लिए अधिकारपूर्ण कविताएं लिखी हैं । इनकी भाषा मंजी हुई और सुन्दर है ।

( १३ )

अंधकार में दीप जनाकर जिसकी खोज किया करते हो ।  
तुम खोते खूद हो तब फिर तुम क्यों ऐसा दम भरते हो ॥

तम में नक्षत्र आज तक घूम रहे हैं उसके कारण।  
उसका पता कहाँ है किसको उसको होगा यह रहस्योद्घाटन ॥

(मुकुटधर)

अपने भाई लोचनप्रसाद पांडेय की तरह आपका भी हृदय सहानुभूतिपूर्ण है और आपका भी प्रकृति के प्रति गहरा अनुराग है। आधुनिक युग का जिज्ञासापूर्ण रहस्यवाद आपकी कुछ कविताओं में स्पष्ट है। ऊमर की पक्तियों में रहस्यात्मक खोज व्यक्त हुई है। सूफी-कवियों के समान आपको सारी प्रकृति 'उसी' की खोज में फिरती दिखाई देती है।

(१४)

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किस से होकर भाजें मैं।  
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊँ मैं ॥  
पीत घुकी है बेला सारी, किन्तु न भाई मेरी बारी।  
कलें कुटी की छत्र तप्यारी, वहीं बैठ पछताऊँ मैं ॥  
कुटी लोल भीतर आता हूँ, तो बंसा हो रह जाता हूँ।  
सुझको यह कहते पाता हूँ, 'अतिथि' बहो बया लाऊँ मैं ॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्त जी ने सब प्रकार की कविताएँ लिखी हैं—देशभक्ति, समाजसुधार, अतीत-गौरव, ईश-विनय, प्रकृति-वर्णन इत्यादि सब विषयों पर आपने अधिकार-पूर्ण रूप से लिखा है। आपकी रचनाओं में द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता भी है और नवीन युग की कोमलता, रहस्यात्मकता और मृदुमता भी। आपने भाषा और भाव दोनों का परिष्कार किया है। हिन्दी-साहित्य को आपने बहुत कुछ दिया है।

हम ने देखा कि भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग की पद्य-रचना देश में उठी नयी चेतना, नयी माहमिवता और नयी जीवनानुभूतियों द्वारा अनुप्राणित हुई। यह समाज, धार्मिक, पियेमोफिस्ट आधुनिक सोसाइटी, गन् '५७ के स्वतन्त्रता-न्याय, राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और नाना धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों ने भारतीय जीवन में धर्म, ज्ञान, संस्कृति, समाज, रीति, आचार-विचार, देश, शिक्षा, भाषा, साहित्य, कला आदि के प्रति नवीन भावना और स्वच्छ प्रवृत्ति को जागृत किया। रुढ़िग्रस्त प्रचलनों और मान्यताओं के प्रति एक बोद्धिक प्रनास्था बढ़ने लगी। धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों ने एक ओर आदर्शवादी दृष्टिकोण और दूसरी ओर मर्यादवादी दृष्टिकोण ला पड़ा किया। बाद में दूसरे प्रभावों में आकर इसी दृष्टिकोण ने हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद

आधुनिक  
काव्य

का रूप ग्रहण किया। गांधीवाद भी आदर्शवाद का ही एक पक्ष था। आदर्शवादों जागृति ने अतीत से प्रेरणा पाने की दृष्टि से ऐतिहासिक गाथाओं को काव्य में स्थान दिया 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' में ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि में नयी मान्यताओं को प्रतिष्ठित किया गया है। राजनैतिक जागरण ने आत्म-शौर्य, स्वाभिमान और भारतीय जीवन के प्रति विश्वास का भाव भरा। ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि के साथ हमारी जिज्ञासायें बढ़ी और हम ने जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश करने की चेष्टा की। कवियों की यह बहिर्मुखी प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावादी कविता के मूल में रही है।

स्वच्छन्दतावाद ने जीवन की प्रतिष्ठा के साथ व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी स्थापित की जिसके कारण आत्मविस्तेषण और अन्तर्मुखी भावना हिन्दी काव्य-पद्धति में व्यक्त हुई। छायावाद, रहस्यवाद, और निराशावाद इसी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप विकसित हुए।

जैसा कि हम अगले प्रकरण में देखेंगे छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि अनेक धाराओं ने हिन्दी कविता को पुनः सीमित विषयो और प्रणालियों में बाँध दिया।

किन्तु, इस स्वच्छन्दता का दम अविच्छिन्न रूप से द्विवेदी युग के उपरोक्त भी बना रहा है। २०-२५ वर्षों के लिए छायावादी, रहस्यवादी और प्रगतिवादी काव्यधारा ने स्वच्छन्दता में बाधा तो अवश्य उपस्थित कर दी और कविता को मतवादों की संकीर्णता में आ घसीटा, पर उस काल में भी माखनलाल बहुवर्दी, गुरुभक्तसिंह भक्त, मिथारामचरण गुप्त, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', हरिकृष्ण 'प्रेमी', उदयशंकर भट्ट, बालकृष्ण वर्मा 'नवीन', सुमद्राकुमारी चौहान, हरिवशराम 'वचन' भगवतीचरण वर्मा, सुधीन्द्र, सुमित्राकुमारी सिन्हा, आरसीप्रसाद सिंह, जानकीवल्लभ शास्त्री, हंसकुमार तिवारी आदि अनेक कवि हैं जिन्होंने अपनी मीज में स्वतन्त्र प्रेरणा से ही काव्यसृष्टि की। यह बात असम है कि इस स्वच्छन्दप्रियता में उन्होंने छायावादी और प्रगतिवादी कविताएँ भी लिखी हैं। और वचन ने उमर लंपार के अनुकरण में जो कविताएँ लिखी, उनकी प्रवृत्ति को हातावाद कह दिया गया। परन्तु वचन ही और न ही उपर्युक्त दूसरे कवि किसी वाद-विनिष्ट को मानने वाले हैं। यहाँ पर यह बताना देना भी आवश्यक है कि छायावाद अपने में स्वच्छन्दता लेकर चला या, यतः प्रसाद और महादेवी वर्मा को छोड़ अन्य सभी छायावादी कवियों ने बहिर्मुखी प्रवृत्ति का परिचय भी दिया है। निराला को एक दृष्टि से 'नयी कविता' का जन्मदाता भी माना जा सकता है। पन्ते गमयानुकूल चलते रहे हैं। वे छायावादी कवि तो हैं ही पर उनकी

प्रगतिवादिता, स्वच्छन्दतावादिता और प्रयोगवादिता में भी किसी को संदेह नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रगतिवादी कवि भी स्वच्छन्द काव्य की सृष्टि करते रहे हैं, भले ही उनकी मुख्य प्रवृत्ति प्रगतिवाद की रही है।

इन कवियों की शैली और प्रक्रिया युगानुकूल रही है, जिसका वर्णन यथा-स्थान दिया जायगा। यहाँ पर उनकी स्वच्छन्द कविताओं के नमूने संगृहीत किये जाते हैं—

( १ )

भला किया, जो इस उपवन के सारे पुष्प तोड़ डाले  
भला किया, मोठे फल वाले पे तख्तर भरोंड डाले,  
भला किया, सोंघो अपनाओ, लगा चुके हो जो कलमें  
भला किया, दुनिया उलटा दो प्रचल उभर्नों के बल में,  
तो हम तो चल दिए,  
नएँ पीछे प्यारे ! आराम करो।

(भावनलाल अतुबंदी)

आपकी कविताओं की चार श्रेणियाँ की जा सकती है—राष्ट्रीय, प्रेम-सम्बन्धी, ध्यानावादी और विविध। आपकी शैली में स्पष्टवादिता और भोज है और भावों में प्रेरणा। आप शब्दों का जाल नहीं बुनते। अपनी सरल अनुभूति को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हैं।

( २ )

घट्टे की आपबीती—

जटिल कंकड़ों की कर्कश रस  
मन-मस कर सारे तन में,  
कित निर्मम निर्दय ने मुझको  
झोपा है इस बन्धन में ?  
काँती सी है पड़ी गल में  
नीचे गिरता जाता हूँ ;  
बार-बार इस धन्य रूप में  
इधर उधर टकराता हूँ।

ऊपर-नीचे सब ही तम है  
बन्धन है अवसम्ब यहाँ !  
यह भी नहीं समझ में आता  
गिरकर मैं जा रहा कहीं।

(सियाराजप्ररण गुप्त)

श्री सियारामशरण गुप्त ने राष्ट्रीय, भाव-प्रधान, रहस्यवादी, शृंगारी, वर्णनात्मक, सब तरह की कविताएँ लिखी हैं।

( ३ )

दो टूक कलेजे के करता पछताता पय पर आता  
पेट पीठ दोनों मिलकर हूँ एक,  
घल रहा लकुटिया टेक,  
मुट्ठी भर दाने को—भूल भिटाने को,  
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—  
वह आता।

(निराला)

निराला जी का मुख्य स्वर है छायावादी, परन्तु वे प्रगतिवादी भी कहे जाते हैं, प्रयोगवादी भी, दार्शनिक भी। उन्हें स्वच्छन्द कवि कहा जाये तो अधिक उपयुक्त होगा।

( ४ )

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी,  
नग्ननग्न सी फूल उठी यह, छोटी सी कुटिया मेरी !  
मेरा मन्दिर, मेरी मस्जिद, कावा काशी यह मेरी,  
पूजा-पाठ, ध्यान, जप-तप है, घटघटवासी यह मेरी।  
'माँ ओ !' कहकर बुला रही थी, मने पूछा यह क्या लाई।  
मिट्टी लाकर आई थी, बोल उठी वह 'माँ कामो'।  
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में, हुमा प्रफुल्लित हृदय खुशी से।  
मुझे जिताने आई थी, मैं ने कहा 'तुम्हीं कामो'।

(सुभद्राकुमारी चौहान)

राष्ट्रवादी कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की इस कविता में वास्तव्य-भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। इनकी शृंगारी कविताएँ भी सुन्दर और संपन्न हैं।

( ५ )

वर्ष नव  
हर्ष नव  
जीवन उत्कर्ष नव  
नव उर्मम  
नव तरंग  
जीवन का नव प्रसंग  
नवत चाह



नवल राह

(अन्वय)

जीवन का नव प्रवाह

हालावादी कवि का नवजीवन के निर्माण की चिन्ता करना उसी वृत्ति का परिचय देता है जिस को स्वच्छन्द कविता कहते हैं।

(६)

घिर आघो उमड़ धुमड़ बादल  
घरसो पल पल पोयूप धवल  
छल छल छलके आनन्द अमल  
ओ प्यासो के आशा सम्मल ?  
जल रहे विश्व के प्राण इधर  
भूकित जीवन के अन्तर तर  
कलियों के सौरभ-सिक्त अघर  
चेतना लुप्त प्रान्तर प्रान्तर  
घरसो घरसो सरसो ओ घन।

(उदयशंकर भट्ट)

भट्ट जी आलावादी कवि हैं। उनका प्रकृति-चित्रण भावना से भरा रहता है। उनके काव्य में जीवन के समस्त पक्षों की समीक्षा मिलती है। उनके काव्य में आलावादी, प्रयोगवादी सब तरह के स्वर मिलते हैं। वे स्वच्छन्दतावादी कवि हैं।

X

X

वर्तमान काल में श्री 'नयी कविता' के नाम से जो प्रवृत्ति चली है, उसके मूल में श्री 'स्वच्छन्दप्रियता' है। भावुक कवि किसी बाद-विरोध, किसी विपक्ष-विरोध, किसी स्वर-विरोध में बँध कर नहीं लिख पाता। भाव और सिद्धान्त के अन्धधन अथवा भाषा और छंद के जाल में जकड़ कर वह नहीं लिखना चाहता। 'नयी कविता' के आधार बहुत व्यापक हो गये हैं। कुछ-एक 'नयी कविताओं' के शीर्षकों से यह अनुमान किया जा सकता है कि इतना रस किधर है—नदी के तीरे, पर्वत पृथ्वी है, मोर, तूफान, आवाजों के घेरे, नया जन्म, दीवार, मरिता, पाली जेबें पागल कुत्ते और बामी कविताएँ, चील, नरगा, तस्वीरें, ओ मरोवर, पिन्हीन ईश्वर, चाँद यह दूज का, विपुल वसन्त, ओ अग्रस्तुत मन, मकड़ी का जाला, लोहार की दुकान, मोन एक पहलू; अनागन, पोस्टर, कलाकार और सिपाही, बम्बई का मनक, मृत, पालना, स्नान, काटूनों का जुनून, शिगु, मनोरथ के घरोरि, मुँह छिपानी साध, पुन, एक भारतीय युवक को तेईसवी बर्षगाठ, यात्रा, परकीया, चन्द्रबूह, चित्र, वागड़े की छोरियाँ, आईना, मृत्यु, कवि, इत्यादि। इस

की चर्चा पुस्तक के अंतिम पृष्ठों में विस्तार से की गई है। यहाँ केवल 'नयी कविता' की मिस्तृत भावधारा का परिचय-मान कराने के लिए कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

( १ )

... खुल गये चींटियों के पपड़े वाले द्वार  
... चीनी के दाने छिटका—  
... चल दिये उधर मानव उदार !

तोतर वाले ने छोल दिये  
तोले पित्रु के

हो रही किसी की क्षुधा शान्त !

(चारागर भी सोच न पाया  
क्या ह्यात क्या भर्ज ?)

मनुज मनुज का बर्ग

यह उदारता क्या जिसमें

भीत छिपी बंदर !

... ) (सम्भोजित वर्मा —चींटो, चारा और तोतर)

; चींटो से लेकर मानव तक, मानव से लेकर दानव तक और दानव से लेकर  
पगु तक अभी विषय काव्योपयुक्त माने जा रहे हैं। सम्भोजित छोटो भी वस्तु-  
मयवा छंदन से बहुत बड़ी बात निकाल लेने की सामर्थ्य रखते हैं।

( २ )

दूध का अविरोध फैला क्षेत्र; बेतरतीब

बुलों की क्षितिज की मेड़ पर कुछ भीड़

घुलते पक्षियों की तोतली कविता

... प्रथम की सहियों में ऊँपनी सरिता ।

बरसती दृष्टि के उस छोर तक अविराम

... जाइँ की उजागर गुनगुनी-भो धाम. ...

... (कुँवरनारायण—जाइँ, ज़ो, रोपहर)

इनिवृत्तात्मकता और छायावाद दोनों के सामञ्जस्य में एक नई छेली का  
विवाम धीरे-धीरे हो रहा है।

( ३ )

में घसम्य हैं, क्योंकि घुले-नंगे पाँवों चलना

में घसम्य हैं, क्योंकि घुल की गोदी में पतना ।

मे असम्य हूँ, क्योंकि घीर कर धरती घान उगाता,  
 मे असम्य हूँ, क्योंकि डोल पर बहुत जोर से गाता ।  
 मे असम्य हूँ, क्योंकि कात कर स्वयं बनाता कपड़े,  
 मे असम्य हूँ, क्योंकि नहीं हूँ पने मेरे जड़ड़े ।

(भवानीप्रसाद मिश्र)

प्रगतिवाद की अपेक्षा उक्त शक्तियों में अधिक व्यापक मानवतावादी स्वर है ।

( ४ )

नाश भी निर्माण के दोनों ध्रुवों के बीच,  
 सारी जिन्दगी किन्ती  
 आगरण में, स्वप्न में सुख दुःख सँजोये—  
 ठीक पुतली की तरह तिरती  
 चिर-दायन बन,  
 शीश पर जब मृत्यु छा घिरती,  
 फिर नहीं फिरती, नहीं तिरती ।

(जगदीश गुप्त)

जगदीश गुप्त के कविता-संग्रह 'नाव के पाँव' की लगभग प्रत्येक कविता का विषय मिश्र है । प्रेम, ईश-विनय, प्रकृति, मानव, जीवन-दर्शन, गरीब, सब पर कविताएँ हैं । आपके माथ झलकते सुलझे हुए, भापा सरल और शैली प्रसाद-भूषणयुक्त हैं

( ५ )

फूल को प्यार करो  
 पर क्षरे तो क्षर जाने दो  
 जीवन का रस लो : देह मन आत्मा की रक्षना से  
 पर जो क्षरे उसे मर जाने दो ।

(भरोष)

भरोष 'नयी कविता' के उन्नायकों में है । भागने विविध शैलियों, विविध छंदों, विविध विषयों पर बहुत कुछ लिखा है ।

( ६ )

मे रथ का टूटा पहिया हूँ  
 सैकड़ों भुम्रों फेंकीं मत  
 बया जाने बय इस डुरुह चक्रग्रह में

अशोहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ  
 कोई दुस्ताहसी अभिमन्यु या कर घिर जाय...  
 ...तब मैं टूटा हुआ पहिया  
 उसके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ ।  
 (धर्मवीर भारती)

भारती जी जागरूक प्रगतिशील कवि हैं, और उनके स्वरों में मुंकीर्णता नहीं है ।

## काव्य के बाद

वर्तमान युग में काव्य की परत बाद के आधार पर की जा रही है; और हमारे हिन्दी के भाषोचना-शास्त्र में तो इसका इतना प्राधान्य हो गया है कि स्वयं बविगण आदर्य-वर्जित हैं कि उनकी रचनाओं पर किस बाधों का इन की समीक्षा लड़ी की जा रही है। उनकी एक-एक पंक्ति समग्र पर किसी न किसी बाद का आरोप हो रहा है। शून्यवाद, एकेश्वरवाद, ईशवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, विमृष्टाद्वैतवाद, शैल्युक्तवाद, परास्तवाद, नस्वरवाद, विपादवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, स्वच्छन्दतावाद, प्रतीकवाद, अन्धोक्तिवाद, लक्षणावाद, संकेतवाद, अल्पवाद, अनारम्भवाद, छायावाद, अभिव्यञ्जनावाद, विवेकवाद, स्वातन्त्र्यवाद, विज्ञानवाद, बुद्धिवाद, मानवतावाद, औचित्यवाद, आचारवाद, नातिवाद, प्रकृतिवाद, हानावाद, व्यक्तिवाद, समाजवाद, साम्यवाद, सौंदर्यवाद, वलावाद, प्रयोगवाद, और न जाने क्या-क्या बाद आधुनिक कविताओं से निकाल-निर्वाह कर पेश किये जा रहे हैं। हम इस सारे विमर्शवाद को साहित्य के लिए अहितकर समझते हैं। इससे न केवल पाठकों में अनिश्चितता और भ्रमिता की भावना उत्पन्न होती है, अपितु कवियों को अपनी प्रतिभा और अनुभूति का स्वतन्त्र प्रदर्शन करने में बाधा रहती है। हम मानते हैं कि उनकी कृति गभीरता की दृष्टि में पूरी उतरे-वे किंगो 'बाद' के गढ़ में पड़ सकते हैं। बल्कि

यह कहना अविश्व ठीक होगा कि कट्टर ने आधुनिक कवि 'वाद' की परिधि में रह कर ही काव्य-रचना करने का प्रयत्न कर रहे हैं। कई नवयुवक साधक न होने हुए भी प्रसाद और महादेवी का अनुकरण करके रहस्यवादी बन जाने के इच्छुक रहे हैं, कई अपने नगर की तंग गलियों में रह कर के पत की तरह प्रकृति के साहचर्य का दावा करते हैं, कई 'कवि' अपनी अमीरी का आनंद उठाने हुए भी भूखो-नगों से "बौद्धिक सहानुभूति" प्रगट करके प्रगतिवादी बने बैठे हैं और अनेकों मिडल-क्वाम नोमिनिस् प्रसाद और निराशा की सी दार्शनिक पहुँच के दावेदार हैं। जिन रुढ़ियों के प्रति हरिश्चन्द्र और द्विवेदी-ममूदाय के कवियों ने विद्रोह किया था, उन्हीं रुढ़ियों और विधानों में आज के अनेक 'कवि' फँसे हुए हैं। इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व समीक्षकों के मिर पर है। हमारा विश्वास है कि यदि काव्य-साहित्य को किसी 'वाद' की लकीर पर न बँधाकर स्वाभाविक और स्वतन्त्र गति से चलने दिया जाये तो धच्छा हो; वरना काव्य में कृत्रिमता और दलबन्दी भा जाने से उसका काव्यत्व नष्ट हो जाता है।

प्रचलितवादों के नामों में बहुत से अनावश्यक और अमूलक हैं। धृग्य-वाद और एकैदवरवाद का सम्बन्ध निर्गुणिया भक्ति साहित्य से है; अद्वैतवाद, ईश्वरद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, विमूढाद्वैतवाद आदि भक्तिकाशीन सिद्धान्त हैं। आचारवाद, प्रोचित्यवाद और आदर्शवाद भी साहित्यिक उद्देश्य के अन्तर्गत धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्ति के पहलू हैं। नस्वरवाद, परास्नवाद, त्रिपादवाद और निराशावाद एक ही प्रवृत्ति के अनेक पक्ष हैं। प्रतीकवाद, अन्धोन्तितवाद, लक्षणवाद, मकेतवाद, अरूपवाद, अभिव्यञ्जनावाद हमारे साहित्य में रहस्यवाद के अन्तर्गत भाव और कला के भिन्न-भिन्न पक्षों के नाम हैं। सौंदर्यवाद, कलावाद, प्रोत्सुक्नवाद आदि भी छायावाद और रहस्यवाद के ही रूप हैं। इसी प्रकार ज्ञानवाद, स्वातन्त्र्यवाद, विज्ञानवाद, साम्यवाद, समाजवाद, मानवतावाद आदि नाम एक ही प्रवृत्ति के धोतक हैं। मथार्थवाद और आदर्शवाद का सामंजस्य भी प्रगतिवाद में हुआ है।

निराशावाद भी कोई स्वतन्त्र प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि अनुप्य सत्ता से अपनी परिस्थितियों में प्रमत्तपुष्ट चला आया है। हम अभी बताना चाहेंगे कि निराशावाद की प्रेरणा से हो एक ओर छायावाद और दूसरी ओर प्रगतिवाद का विकास हुआ है। बात यह है कि जिस स्वच्छन्दतावाद की चर्चा हम पिछले प्रकरण में करते रहे हैं उसकी प्रगति में समाज के बचन, देश की राजनैतिक दशा और भाविक परिस्थितियों बाधा डालती रही है। इधर एक ओर जिज्ञासा और सौंदर्य-प्रेम की भावना जागृत हुई तो दूसरी ओर प्रगतिशील और बेदना का समावेश

हुआ। जिज्ञासा, सौंदर्य-प्रेम और वेदना के मेल से छायावाद सड़ा हुआ। साहित्य-क्षेत्र में जो दूसरा सम्प्रदाय था उसने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और धार्मिक विरोधियों के प्रति विद्रोह किया। असन्तोष के कारण उन लोगों की चेतना अन्तर्वृत्तिपरक नहीं बनी, वे जीवन को प्रवरद्ध करने वाली अवस्थाओं से विमुख होकर परमात्मा की धारण में नहीं चले गये, बल्कि इनका सामना करने को खड़े हुए। यही लोग प्रगतिवादी कहलाते थे।

कहा जाता है कि छायावाद द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध और प्रगतिवाद छायावाद की पलायन-वृत्ति के विरुद्ध प्रतिवर्तन के रूप में खड़े हुए हैं। वही यथार्थवाद और आदर्शवाद जो हरिश्चन्द्र-युग में एक साथ समाज, धर्म, और राजनीति के क्षेत्र में दिखाई देते हैं, कुछ विकसित रूप में प्रगतिवाद के नाम से चल रहे हैं। वही प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-भावना तथा उदार भक्ति जो पिछले युग में विस्तृत रूप से काव्य-विषय बन रही थी, आगे चलकर छायावाद और रहस्यवाद बन गई। प्रकृति-वर्णन, प्रेमाभिप्रेयसि और ईश्वर-विनय की जो नीलियाँ द्विवेदी-युग में बन रही थी, वही कलात्मक रूप से छायावाद और रहस्यवाद में चल रही हैं। हमारी दृष्टि में तो छायावाद और रहस्यवाद द्विवेदी-युग की प्रवृत्तियों का कलात्मक रूप ही है। पूर्व और पश्चिम को, प्राचीन और नवीन को, स्थूल और सूक्ष्म को, भाव और भाषा को, प्रकृति और मनुष्य को, काव्य और जीवन को एव आत्मा और अनात्मा को एक दूसरे के निकट लाने की जो क्रिया द्विवेदी-युग में हो रही थी उसी के फलस्वरूप छायावाद और रहस्यवाद का विकास हुआ है।

सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक रुढ़ियों के प्रति जो विद्रोह भारतेंदु-युग और द्विवेदी-युग में शुरू हुआ था वही आज उस रूप में हमारे सामने प्रगतिवाद बनकर आया है। साहित्य को समाज के निकट लाने की जो भावना पिछले कुछ वर्षों से दिखाई दे रही थी वही आज उत्कट रूप में इस प्रवृत्ति का मूलधार बनो है।

### छायावाद-रहस्यवाद

आज की कविता में प्रकृति एक प्रधान विषय है। प्रकृति-वर्णन की नयी और पुरानी शैलियों का प्रयोग बड़े रोचक और मनोरम ढंग से हुआ है। प्रकृति के बाह्य रूप का चित्रण पन्त, गुरुभक्तमिह भक्त, दिनकर, मनोरंजनप्रसाद मिह आदि की कविताओं में

अत्यन्त विशद, विविध और उल्लासोत्पादक है। पन्त ने पर्वत, मैदान, झील, निर्धर, फूल, कली, कोकिल, काम, वसन्त, पतझड़, मलय-पवन, प्रातः, संध्या आदि के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। उन्होंने प्रकृति के सुन्दर और भीषण दोनों प्रकार के रूप दिये हैं। गुरुभक्तसिंह भक्त की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति सराहनीय है। कवि ने "नूरजहाँ" में ईरान, काश्मीर और भारतवर्ष की प्राकृतिक शोभा का विस्तृत चित्रण किया है। इस काव्य में भी एक घोर पहाड़, जंगल, झील, प्रभात आदि के मनोहर चित्र हैं और दूसरी ओर खंडहर, रेगिस्तान, मैदान और रात के भयानक चित्र; परन्तु दोनों प्रकार के चित्रों में भावपूर्ण और सौंदर्य है। नेपाली को छोटे-छोटे दृश्य और उपकरण अधिक आनन्द देते हैं। घर के आस-पास की घाम, पीपल, फूल-पत्ती, सुग्गा आदि उन्हें आनन्दित करने के लिए पर्याप्त है। श्रीधर पाठक, रामचन्द्र शूक्ल, मोचनप्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी आदि द्विवेदी-काल के कवियों के चित्रात्मक वर्णन ठून्-वह इसी प्रकार के हैं। अलवस्तः प्रकृति-चित्रण की जो दूसरी सवेदनात्मक शैली बही गई है, इसमें कवि की व्यक्तिगत भावुकता प्रकृति के रूप-रूप में लक्षित होती है। प्रकृति के दृश्यों में उसके हृदय की कथा लिखी मिलती है। रामकुमार को ऐसा दिखाई देता है कि 'ये शिलाखंड मानो अनेक पापों के फँसे हैं समूह'। पन्त को कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि 'आज सोने का माध्यकाल जल रहा है जंतुगृह सा विकराल' और कभी आनन्द की मन-स्थिति में 'लहरें उठती थी मानो 'चूमने को मुझको'। तारा पाडे को ऐसा जान पड़ता है कि 'नीरव नभ भी है रोता'। बहुत से कवि इसी प्रकार प्रकृति में मानव-भावनाओं का आरोप करते हैं। वे प्रकृति और मनुष्य में कोई भेद नहीं समझते। निराला ने प्रकृति को 'माँ' कहा है। बहुत से कवि उसे अपनी सहचरी, सजनी अथवा रानी मानते हैं। उन्होंने इस बहाने अनेक वासना-मय चित्र भी उपस्थित किये हैं। कवियों की कल्पना में प्रकृति साकार नारी, पुरुष, धालक, पशु अथवा पक्षी के समान उछलती, खेलती, रोती, सोती, घगड़ा-इयाँ सेती, चलती, फिरती, जीती, मरती, दृग्ग होती, विह्वल होती, शोध करती, प्रेम करती, आनंद मनाती है। कवि जब प्रकृति के बीच में अपने को पाते हैं तो उन्हें ऐसा जान पड़ता है कि वे किन्हीं पुराने साथों में मिले हैं और उममे घात-चीन करने का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। कभी-कभी कवियों को प्रकृति के साथ क आध्यात्मिक सम्बन्ध का अनुभव होता है। प्रकृति में अपनी अभिन्नता का अनुभव करने हुए ही आज के कवि उमके रहस्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रकृति उन्हें रहस्यात्मक मकंत करती जान पड़ती है। प्रसाद को नदी में सवेत मिनते हैं। महादेवी वर्मा को प्रकृति द्वारा विसों का निमंत्रण मिलता है। पन्त भी वसंत की



मुपमा में अनुभव करते हैं कि 'सौरभ के मिस' उसे कोई 'मीन संदेश' भेजता है, और निराशा को यमुना की लहरों में 'अतीत के गौरव-गान' सुनाई पड़ते हैं। इस प्रकार के आध्यात्मिक वर्णन में कवि की अपनी भावना प्रगट होती है। प्रतीको द्वारा ऐसे वर्णन करने की शैली का नाम ही छायावाद है।

प्रकृति का तीसरा उपयोग साम्य या तुलना के लिए हुआ है। प्रायः कवि प्राकृतिक रूपों की योजना किसी वस्तु, पुरुष अथवा ईश्वर का वर्णन करने के लिए करते हैं। निराशा ने 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में इसी शैली का प्रयोग किया है। पंत ने प्रेमी को अनेक दशाओं की व्यञ्जना प्राकृतिक रूपों द्वारा की है। 'शामू' में वे प्रेम के आरंभ को वसंत और अंत को शीतल की लू कहते हैं। इसी से प्रेमी के हर्ष और विषाद की व्यञ्जना हो जाती है। प्रसाद ने भी मिलन और विरह की दशाओं की व्याख्या प्रकृति में की है।

यही छायावाद का दूसरा पक्ष है।

कुछ कवियों ने प्रकृति के द्वारा दृष्टान्त अथवा उपदेस देने की पुरानी प्रणाली का अनुसरण भी किया है; जैसे पंत ने 'गुजन' में।

जन की झूनी डाली पर  
सीला कलि ने मुस्काना,  
मैं सील न पाया अब तक  
मुख से दुख को अपनाता।

परन्तु इस प्रकार के उपदेसात्मक प्रकृति-वर्णन नवीन कविताओं में बहुत कम है।

इसमें सदेह नहीं कि आज के कवियों में प्रकृति के प्रति अग्रास्य प्रेम है और उन्होंने अपने प्रेम का परिचय मृन्म-मृन्म शैलियों में दिया है। छायावाद का कलापूर्ण उत्कर्ष इन्हीं शैलियों की आलंकारिता का परिणाम है।

नवीन युग की शृंगारिक कविता के सम्बन्ध में निम्न प्रकार में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। हमने देखा है कि इस समय काव्य में अधिकांश स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण हो रहा है। कवि और कवियित्रियाँ

प्रेम प्रेमभाव को प्रगट करने में कोई संकोच नहीं करती। उन में स्वच्छन्दता, सचाई, मधुरता आदि गुण मिलते हैं। बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौंदर्य का वर्णन अधिक होता है और यह वर्णन साम्य, समतलता उदात्त रहता है। वाचना का हममें उद्रेक नहीं होता। कवियों को भीचर्य और शिष्टता का बहुत ध्यान रहता है। यौवन और सौंदर्य का वर्णन भावपूर्ण होता है। हममें गर्भोग-शृंगार की अपेक्षा विषोय-शृंगार की अधिकता होती

हैं। आज के कवियों की अधिकतर कविताओं में विवशता, सदेह, निराशा और दुःख की छाया स्पष्ट है। आह्लाद, स्फूर्ति और आनन्द-भरे गीत बहुत कम हैं।

आधुनिक कविता में प्रेम का राज्य है। प्रकृति-वर्णन में अथवा राजनीति में, ईश-विनय में अथवा सौन्दर्य-चित्रण में प्रेम और शृंगार अवश्य रहता है। अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनके दो-दो अर्थ निकाले जा सकते हैं—जो एक ओर ईश्वर के सम्बन्ध में और दूसरी ओर प्रियतम के सम्बन्ध में कही जा सकती हैं, अथवा जो प्रकृति और प्रिया दोनों का एक साथ वर्णन करती हैं। प्रतीकवाद के कारण कुछ कविताओं में अस्पष्टता भी आ गई है जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। इतना याद रहे कि आज के शृंगारी काव्य ने प्रकृति, ईश्वर और पुरुष को एक जगह ला कर सड़ा दिया है। इसी से हम में अमात्मक 'वादों' की रमार हो गई है।

हिन्दी में धार्मिक काव्य का कभी अभाव नहीं रहा। धर्म साहित्य का एक आवश्यक उपादान है और ईश्वर धर्म का एक गूढतम विषय। आधुनिक काल की सामाजिक और राजनैतिक विपत्तियों के कारण कवि ईश्वर की ओर पहले से अधिक उन्मुख हैं। भक्ति-काल में भी सत और वैष्णव कवियों ने राजनैतिक परिस्थितियों से घबरा कर उपासना और भक्ति की राह ली थी। आधुनिक प्रवृत्ति के और भी कई कारण हैं। प्रकृति-प्रेम की भावना इस युग के काव्य की प्रधान विशेषता है। प्रकृति के पीछे जो मत्ता काम करती है उस के ज्ञान की इच्छा होना स्वाभाविक ही है।

धर्म-समाज, ब्रह्म-समाज और सनातनधर्म सभाओं के प्रचार से हिन्दुओं में जो धार्मिक जागृति उत्पन्न हुई है उसके फल-स्वरूप वेदों, दर्शनो, उपनिषदों और पुराणों के पढ़ने का चाव बढ़ने लगा है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की चर्चा फिर से चली है। कवियों ने भी इस अध्ययन और मापना में भाग लिया है और अपने-अपने अनुभवों की अभिव्यञ्जना नयी आलंकारिक शैली-द्वारा की है। इसी का नाम रहस्यवाद है। कुछ कवियों ने पुरानी भक्ति-कालीन परंपरा के अनुसार ईश्वर-भक्ति के गीत लिखे हैं, कुछ-एक ने दार्शनिक-मिथान्तों के आधार पर कविता कही है, और कुछ ने बौद्धमत के दुःखवाद की व्याख्या की है। इनका विस्तृत विवरण हम आगे देंगे। यहाँ इतना दिखाना अभीष्ट है कि प्राचीन भक्ति-भाव को नये-नये ढंगों से अभिव्यक्त करने का नाम ही रहस्यवाद है। साध्य नहीं है साधना में विविधता और विभिन्नता आ गई है। प्रकृति-वर्णन और प्रेमाभिव्यक्ति की जो नयी प्रणालियाँ चली हुई हैं उन्हीं के अनुरूप भक्ति-भावना भी प्रगट हुई है। वैशा ही आनन्द, उल्लास, मोलुब्य, दुःख, विरह,

आत्मत्व और शृंगार जो प्रकृति और प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में सन्निहित होते हैं, भक्ति-काव्य में आकर रहस्यवाद का रूप धारण कर चुका है।

## छायावाद

धार्मिक हिन्दी कविता में फूल का वर्णन तीन प्रकार से हुआ है। एक में कि फूल की इतनी कविर्मा है, उसमें पराग है और वह ऐसा है, यह फल हल्का है, पवन के झकोरो से झूमता है इत्यादि—यह सर्वाङ्ग वर्णन परिभाषा इतिवृत्तात्मक कहलायेगा। दूसरे यो कि यह फूल हँसता है, पवन आती है तो उसे कहता है मुझे तेरे प्रेममय थपेड़ों से आनन्द मिलता है, रात की चाँदनी के प्रेमालिखन से मिल उठता है, परन्तु प्रातः होते ही विरह-वेदना से मुरझा जाता है—यह सप्राण वर्णन छायावाद कहलायेगा। तीसरे यह कि फूल में बँठा हुआ मेरा प्रियतम मुझे देख कर हँस रहा है, परन्तु मैं हूँ कि प्राँचें रखता हुआ भी उसके दर्शन नहीं पा सकता, उसकी हँसी मेरे कानों में गूँजती है और फिर मेरे भीतर से उसका शब्द उठता है परन्तु कान रखते हुए भी मैं उसे सुन नहीं पाता इत्यादि—यह है रहस्यवाद। किसी विषय की इति-वृत्तात्मक व्याख्या ज्ञान-विज्ञान के अन्तर्गत रहती है और स्थूल शरीर से सम्बद्ध होती है। उसका छायावाद भाव के अन्तर्गत होता है और सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखता है। आत्मा का आत्मा से सन्निवेश छायावाद कहलाता है, और आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्धी की चर्चा रहस्यवाद। विद्वत् की वस्तुओं में आत्मा की छाया देखना एवं मानव और मानवोत्तर जीवन में तादात्म्य पाना छायावाद है; परन्तु जिन संकुचित अर्थों में यह शब्द हमारे वाक्य में प्रयुक्त हो रहा है उसके अनुसार प्रकृति के पदार्थों में केवल व्यक्तित्व आरोपण कर देने का नाम छाया-वाद नहीं है। छायावाद के साथ भाषा की लाक्षणिकता, भाषा की सूक्ष्मता, प्रसङ्गता और मार्केतिवता आदि कई बातें और भी हैं।

प्रारम्भ में जब द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता (वस्तुवाद) में ऊँच कर नवयुवक कवियों ने भावनात्मकी धारा को प्रवाहित किया तो तत्कालीन आलोचकों ने उपहाम में उस को यह नाम दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार वास्तविक गमार् विचारमय गमार् की छायामान डी है। जयभकर प्रसाद ने बताया कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'छाया' वा अर्थ है मोती की धामा। छायावादी काव्य भी मोती की धामा की तरह पवित्र, मृदुल और सूक्ष्म होता है। बात भी ठीक है कि छायावाद की कोमलता और स्वप्नमयता छाया के समान है। छायावाद विद्वत् की प्रत्येक वस्तु में आध्यात्मिकता और स्थूल में सूक्ष्म की

ग्रामा देखता है। महादेवी वर्मा सर्वात्मवाद को छायावाद का मूल दर्शन मानती हैं। जयशंकर प्रसाद उसे बाह्य वर्णन से भिन्न वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति बताते हैं।

याद रहे कि छायावाद भारतीय साहित्य में एकदम नयी चीज नहीं है। वेदों के द्वारा दिया गया ऊषा और संध्या का सूक्ष्म व्यक्तित्व इसका प्राचीनतम उदाहरण है। उपनिषदों में स्थूलता का प्रत्याख्यान करके व्यापक सत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इधर हिन्दी-साहित्य में विद्यापति, कबीर, जायसी, मूर, तुलसी आदि की कविताओं में इसके घनैक उदाहरण मिलने हैं। विद्यापति ने मालती और भँवर को लेकर उनमें प्रियतम प्रेयसी का व्यक्तित्व निरूपण किया है। कबीर को इन उक्तियों में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों हैं—

(१) समंदर लागी आग नदियाँ जल कोइला भई।

(२) काहे रे प्रसिनी ! तू कुम्हिलानी।

तेरी ही नालि सरोवर पानी।

मूर के बाल-वर्णन में और तुलसी के ऋतु-वर्णन में भी छाया का ग्रामास प्राप्त होता है। जायसी ने पद्मावती की वृद्धावस्था और स्वेत बागों का चित्रण “भँवर छपान हूँ प्रगट” कह कर किया है।

प्राधुनिक काल का छायावाद प्राच्य और पाश्चात्य एव प्राचीन तथा नवीन विद्वानों के मेल से बढ़ा हुआ है। पाश्चात्य भीतिवाद न प्रशान्ति का जो बवंडर चलाया तो कवि मूर्धमता तथा मूर्धमावना में आन्मिक शान्ति का अनुभव करने लगे। जिस पश्चिम ने हमारे देश में ‘स्वर्ण’ की पूजा का प्रचार किया, उसी पश्चिम के प्रभाव से इस ‘स्वर्ण’ के विरुद्ध एक प्रचार का विद्रोह सुरू हुआ। बंगाल में सर्वप्रथम इसका प्रचलन हुआ और रवीन्द्र ठाकुर की कृतियों से हिन्दी कवियों को भी प्रेरणा हुई। मैथिलीकरण गुप्त, भारतीय आत्मा और मुकुटधर पाण्डेय ने द्विवेदी-युग में बंगला-साहित्य का अनुसरण करते हुए इसका प्रचार किया। इसमें ईसाई भक्तों के छायाग्राम तथा योग्योय काव्य के प्रतीकवाद की शैलियों की छाप स्पष्ट है। कुछ दिनों तो पेंसिली और बंगला की पदावली का ज्यों का त्यों अनुवाद ही चलता रहा, पीछे कुछ स्वतन्त्र कृतियाँ सामने आने लगीं। पहले प्रवृत्तिचित्रण में रहस्यात्मकता, अभिव्यक्तता-शैली में लाक्षणिक प्रतीकात्मकता, कल्पना में विमृशकता और प्रेम-मान में मधुमयी विचित्रता सा देने का नाम छायावाद रहा; पीछे कुछ कवि इस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकल कर जीवन और जगत् के भिन्न-भिन्न पक्षों की ओर भी झुके और काव्यमयी में गरलता लाने के लिए प्रयत्नशील हुए।

इसमें सन्देह नहीं कि द्विवेदी-युग में हिन्दी कविता के विषय प्रधानतः इतिवृत्तात्मक थे, परन्तु उम काल में काव्यदोस्ती और भाषा का परिष्करण इस सीमा तक हो गया था कि कवियों ने अब उसे अपनी मौलिक भावनाओं और आत्मा की गूढ़तम चेतनाओं को प्रगट करने में समर्थ पाया। कविता अन्तर्मुखी हो गई। द्विवेदी-युग की धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक कविताओं में जो मानवतावाद आ गया था उसी की भाव-भूमि पर छायावाद का हृदयपक्ष तय्यार हुआ। मानवतावाद में विश्व-प्रेम का जो मदेश है उसी के उत्प्लाव में छायावादी कवि अपने आत्म-पाम की वस्तुओं में अनिष्टता चाहता है। वह जगत को मिष्पा नहीं समझता। छायावादी कवि आरे मसार से प्रेम करता है। वह भागीन और अभागीय सब में आत्मा देखता है। इन कवियों ने विश्व-प्रेम की वे भावनाएँ अभिव्यक्त की हैं, जिन्हे किसी भी देश का प्राणी अपनी निजी भावनाएँ कह सकता है। प्रसाद को ये पक्षियाँ कोई भी देशप्रेमी अपने देश के सम्बन्ध में गा सकती हैं—

उड़ते लग जिस ओर मुंह किये समस्त नीड़ निज प्यारा,  
अरण्य यह सधुमय देश हमारा।

छायावादी सभी मस्कृतियों का समन्वय चाहते हैं। वे मानव जाति के नाना भेदो-प्रभेदों को मिटाकर एक अन्तर्ध्यापी सूत्र उपस्थित करते हैं।

सिद्धान्त रूप में समाधिवादी रहते हुए भी छायावादी व्यक्ताहार में व्यष्टिवादी हैं। आज व्यक्ति ही समाज का प्रतीक है। उसका सुख-दुःख समाज का सुख-दुःख है। व्यक्ति ही समाज है। आज कवि की भावधारा का केन्द्र वह स्वयं है। वह अपने सुख-दुःख, अपनी अभिज्ञता, अपनी अनुपति और अपनी कल्पना के माध्यम से विश्व-प्रेम अथवा विश्व-चेतना की अभिव्यक्ति करता है। नवीन काव्य में गीतियों की प्रचुरता का यही कारण है। इसी से कविता में अनेकाल्पना, नवीनता, मर्मता और (कुछ-कुछ) उच्छृङ्खलना आई है। कोई-कोई कवि लोगों की मामान्य अनुभूति में बहुत दूर जा पड़े हैं।

यह याद रहे कि छायावाद का मुख्य आलम्बन प्रकृति है। प्रकृति के प्रति वही विस्मय की भावना, वही शृंगार की और वही करुणा की भावना अभिव्यक्त की गई है।

हम यह मानने के लिए कभी तय्यार नहीं हैं कि छायावादी कविता समाज से दूर है। हममें कोई मदेह नहीं कि कवि कभी-कभी जीवन की वास्तविकता से भाग कर बलिष्ठ एकान में धरण लेना चाहता है। परन्तु इसका मूलाधार

वही अमन्तोष, निराशा और दुःख है जो आज के जीवन में पाया जाता है।  
कभी-कभी वही कवि आशापूर्ण होकर भी बोल उठता है। पन्त लिखते हैं—

जग-जीवन उल्लास मुझे,

नव आशा, नव अभिताप मुझे।

और सुन्दर विश्वासों से हो

बनता रे सुखमय जीवन।

महादेवी की सहानुभूति “कह दे माँ क्या देखूँ” इत्यादि शक्तियों में प्रगट हुई है। निराला जो ने विषया के प्रति सहानुभूति प्रगट करते हुए छायावाद के प्रगतिशील पक्ष को स्पष्ट किया है।

छायावाद में आशा भी है और निराशा भी—निराशा कुछ अधिक है। परन्तु कौन नहीं जानता कि आज भारतीय समाज के जीवन में निराशाएँ अधिक और आशाएँ बहुत कम हैं। कविता का समाज से अविच्छेद्य सम्बन्ध है और छायावादी कविता में भारतीयों के भावों का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व है। यह कविता परिस्थितियों से अनुप्रेरित हुई है। यदि समाज को ऊँचा उठाना ही साहित्य का काम है तो छायावाद में जीवमात्र की एकता का जो संदेश है उससे भी इसका महत्त्व आँका जा सकता है। अज्ञाति में शांति पाने की मनोवृत्ति भी इसकी महत्वपूर्ण देन है। अज्ञाति और निराशा से अनेक छायावादी कवि घबरा उठे हैं। कुछ तो आत्मघात कर लेना चाहते हैं और व्यक्तित्व ही नष्ट कर देना चाहते हैं। इसी में उन्हें शांति की आशा मिलती है। कुछ एक हवाई महल बना कर उन्हीं में आनन्द की सम्भावना चाहते हैं। प्रसाद और निराला दूसरे जगत में चले जाने की कामना करते हैं। साहित्यकार अपने वातावरण से ऊँचकर किसी ऐसे एकान्त निर्जन स्थान में चले जाना चाहता है जहाँ उसे कुछ शांति मिल सके।

ले चल मुझे भुलावा देकर,

मेरे नाविक धीरे धीरे

जिस निर्जन में सागर तहरी...

तज कोलाहल की अवनो रे।

(प्रसाद)

पन्त तारों पथवा पत्तियों में अपने को खो देना चाहते हैं। छायावाद की प्रमुख विशेषताओं में सौंदर्य-भावना, प्रकृतिप्रियता, सुकुमारता, जीवन-दर्शन विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

छायावाद में सबसे अधिक खटपट बानी और प्रधान विशेषता है इसकी अग्रगण्यता। इस का सम्बन्ध छायावाद के वलापक्ष (शैलीगत-स्वरूप) से है

जिस पर हम 'रहस्यवाद' की व्याख्या करने के पश्चात् विचार करेंगे ।

## रहस्यवाद

कुछ समालोचक छायावाद और रहस्यवाद को एक ही वस्तु समझते हैं । इस कारण से आधुनिक समीक्षा में अस्पष्टता और दुस्वहता आ गई है । इन दोनों को अलग-अलग रखने से आधुनिक काव्य की विचारधारा को समझने में आराम रहता है । यह धतला दिया गया है कि आत्मा और (हमारे) आत्मा की चर्चा छायावाद के अन्तर्गत है और आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की चर्चा रहस्यवाद के अन्तर्गत है । रहस्य का अर्थ है गुप्त अथवा अव्यक्त । इस गुप्त, अव्यक्त और प्रच्छन्न (परमात्मा, अथवा आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध) को व्यक्त करने की काव्य-प्रवृत्ति का नाम रहस्यवाद है । डा० केंसरीनारायण शुक्ल ठीक कहते हैं कि ब्रह्म या ईश्वर से आत्मा के ऐक्य या साभिध्य की धारणा 'रहस्यवाद' कहलाती है । प्रसाद के शब्दों में "काव्य में आत्मा की सकरपात्मक अनुभूति की मुख्य धारा का नाम रहस्यवाद है" ।

अव्यक्त को व्यक्त करने की इच्छा, गुप्त की जिज्ञासा, आत्मा और परमात्मा और प्रकृति के रहस्यों को देखने का कुतूहल आदि-काल से चला आता है । वेद के 'ऊषा' और 'नासदीय' सूक्तों में, अधिकांश उपनिषदों में, गीता के विभूति-योग अध्याय में, शैवशाक्ततादि आगमों में, 'सौंदर्य-लहरी' आदि रहस्य-काव्यों में, शंकराचार्य के मायावाद में, सहजानन्द के उपात्मक भागरव्या, बन्हव्या आदि सिद्धों की रचनाओं में, और रामानन्द के निर्गुणवाद में रहस्यपूर्ण उक्तियों और रहस्यात्मक निष्ठाओं का उल्लेख मिलता है ।

इधर हिन्दी में कबीर, ज्ञानमी, मीरा आदि में रहस्यवाद का 'माधुर्यभाव' मिलता है । कभी तो परमात्मा को प्रेमी और अपने को प्रेमिका, कभी उसे प्रेमिका और अपने को प्रेमी, कभी उसे स्वामी और अपने को सेवक, कभी उसे पिता-माता और अपने को शालक, कभी उसे जगन्निर्गमता और अपने को शुद्ध जीव मान कर उन्होंने प्रेम और विरह की अनौकिक अभिव्यंजना की है । सब ने ईश्वर के प्रति प्रेम की भावना प्रगट करने की चेष्टा की है । चूँकि ईश्वर निराकार और निर्गुण है, इस लिए उसका आभास देने के लिए मंतो ने ज्ञानमार्ग का आश्रय लिया है और भूक्तियों ने प्रेममार्ग का । तुलसी और मूर में भी रहस्यात्मक शक्ति मिलते हैं ।

आधुनिक रहस्यवाद पर उपनिषदों और कबीर आदि का गहरा प्रभाव पड़ा है । परन्तु आज का रहस्यवाद भाव-गंध और कला-गंध दोनों की दृष्टि से मध्यकाल के रहस्यवाद से बहुत कुछ भिन्न है । जैसे तो आधुनिक हिन्दी काव्य में

अनंत शक्ति के प्रति आकर्षण, आश्चर्य और विस्मय, मिलन की तृष्ण, जीवन और भौतिकता की विस्मृति, परमात्मा के सहवाम का अनुभव, प्रेम की एकाग्रता, और तल्लीनता, आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता और एकरूपता, उन्माद, थढ़ा, भय, आदि परिस्थितियों का वैसा ही वर्णन मिलता है जैसा धार्मिककालीन कविताओं में। परन्तु इनकी अभिव्यञ्जना-शैली में बहुत अंतर है। कबीर आदि मतों और भक्तों ने अपना अनुभव प्रायः सीधे-सादे ढंग पर प्रगट किया है—प्राज्ञ के कवि प्रकृति के पीछे उम परोक्ष सत्ता का अनुभव करते हैं और प्रतीकों द्वारा उसको अभिव्यञ्जना करते हैं। उनका रहस्यवाद संतोषमय है, इनका अमंजोषमय। कबीर विशेषतया चिन्तनशील और मस्तिष्क-प्रधान है, आधुनिक कवि भावनाशाल और हृदय-प्रधान है। कबीर आदि प्राचीन कवियों में अनुभूति की प्रधानता है, प्रसादादि में कल्पना की प्रधानता है। प्राचीन काल में हठयोग, यम-नियम, नाम-स्मरण आदि की साधना थी, आधुनिक काल में विरह के दुःख की साधना है। विरह-वेदना में भी कल्पना ही है। प्राचीन काल के रहस्यवाद में भारतीयता है, आधुनिक रहस्यवाद पश्चिमी रीति से प्रभावित है।

आधुनिक काव्य में रहस्यवादी चिंतन की अनेक शैलियाँ हैं, जैसे—

- (क) आध्यात्मिक रहस्यवाद,
- (ख) दार्शनिक रहस्यवाद,
- (ग) धार्मिक रहस्यवाद,
- (घ) प्रकृति-संबन्धी रहस्यवाद।

आध्यात्मिक रहस्यवादी ईश्वर के अपरोक्ष साक्षात्कार का प्रयत्न करता है और प्रकृति में व्याप्त उस एक दिव्य सत्ता को देखने की चेष्टा करता है। भारतीय आत्मा, वियोगी हरि, पत, नेपाली और निराला मुख्यतः इसी कोटि के कवि हैं। दूसरी कोटि में गुप्त, प्रसाद, निराला, उदयशंकर मट्ट आदि दार्शनिक कवि हैं। इनका रहस्यवाद उपनिषदों अथवा बौद्ध शास्त्रों के दार्शनिक सिद्धांतों के आधार पर है। गुप्त और निराला में उपनिषदों की छाप है और प्रसाद तथा गुप्त में बौद्ध सिद्धांतों का दुःखवाद। धार्मिक उपासना-शैली का विशेष बहि तो प्राज्ञ कोई नहीं है लेकिन मोरा की भावना महादेवी, महतो वियोगी तथा सिमारामशरण गुप्त की कई कविताओं में मिलती है। पन्त के 'परिवर्तन' में हमें प्रकृति-संबन्धी रहस्यवाद की झलक मिलती है।

अधिकतर कवियों में इन सभी सिद्धांतों का आविर्भाव और अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का परिचय मिलता है। महादेवी वर्मा इस सामंजस्य और स्वाभाविक आत्मचिंतन की प्रमुख प्रतिनिधि हैं। उन्होंने उपनिषदों के दिव्य



दर्शन, महात्मा बुद्ध की शिक्षा, सतों की वाणी, प्राचीन और अर्वाचीन कला-सामग्री, पूर्वी और पश्चिमी शैली को मिलाकर हिन्दी-साहित्य को एक अपूर्व दान दिया है। उन्हीं की शैली का अनुकरण बहुत से कवियों ने किया है।

रहस्यवादी काव्य की विशेषताएँ हैं—

(१) 'उस' अज्ञात, रहस्यमय के प्रति कुतूहल और जिज्ञासा, जैसे—  
मे का जानूँ राम को, नैना कबों न दीठ । (कबीर)

है अनन्त रमणीय कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता ।

कैसे हो, क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ॥

(प्रसाद-कामायनी)

कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता धनसित ?

(महादेवी वर्मा),

(२) 'उस कौन' के दर्शन की चाह और तउप—

नयन अवण-मय अवण नयनमय,

भाज हो रही कंसी उत्सन्न,

क्या प्रिय जाने वाले हैं ?

(महादेवी वर्मा)

(३) विरह और कष्ट—

नित जलता रहने दो तिल-तिल,

अपनी ज्वाला में उर मेरा ।

(महादेवी वर्मा),

(४) 'उस कौन' से एकाकारिता—

पद खल गये और दोनों हो हुए एक अन्तर्पट झोटा ।

## छायावाद और रहस्यवाद का कलापक्ष

छायावाद और रहस्यवाद का कलापक्ष अत्यन्त जटिल और पहले से बहुत भिन्न है। इसकी नूतनता को देख कर कई लोगों को ऐसा जान पड़ता है कि छायावाद है ही केवल अभिव्यञ्जना-विधान। इस में सदेह नहीं कि छायावाद में शार्वविभ्य का प्राधान्य है। हमारा तो विचार है कि इसकी नवीनता इसी बात में है कि इस ने द्विवेदी युग की भावना पर कला का एक बाना ओढ़ा कर अपना एक स्वतंत्र साहित्यिक राज्य स्थापित किया है। प्रसाद ने ठीक कहा है कि "छाया भारतीय दृष्टि में अनुभूति और अभिव्यक्ति को भविष्य पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लासलिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा

उपचार, वक्षता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर् स्पर्श करके भाव-समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है।” परन्तु इतना याद रहे कि इस काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, विरोध श्लेष आदि की योजना भावों की तीव्र अनुभूति कराने के उद्देश्य से हुई है। यमक और अनुप्रास का प्रयोग भी प्राचीन कविता की सी कलावाजी दिखाने के उद्देश्य से नहीं हुआ है। प्राचीन काव्य में भावों की अभिव्यक्ति प्रायः अभिधा-द्वारा ही होती थी, परन्तु नवीन काव्य में लाक्षणिकता का आश्रय लिया गया है जिससे भाव अधिक व्यक्त हुए हैं। माधवी प्रतीको द्वारा उन्हें स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

हमने देखा है कि द्विवेदी-काल में स्वयं द्विवेदी जी संस्कृत की कोमलकात-पदावली का प्रयोग चाहते थे। हरिऔध और गुप्त के अतिरिक्त दूसरे कवि जो खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता करते थे खड़ी बोली में भी ब्रजभाषा की रंगात्मकता, भाविकता और सलित बोली लाना चाहते थे। बगला से प्रभावित होकर उन्होंने उस भाषा से लाक्षणिक और व्यक्त प्रयोग ग्रहण किये। अंग्रेजी कवियों का चित्रमय वाक्य-विन्यास भी अनुवादो-द्वारा आने लगा। मुकुटधर और बदरीनाथ भट्ट ने इस अनुठी बोली में अनेक गीत लिखे। धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ा। धर्मभूतक क्षुब्धारिक, वर्णनात्मक सब प्रकार के विषयों में इसका प्रयोग होने लगा और एक क्षेत्र के वाक्य-विन्यास दूसरे क्षेत्र में आने लगे। इंगित-द्वारा सदेश अभिसार, अनंत प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, धूल-मिचौनी करना, मद में झूमना आदि का व्यवहार शृंगारी कविता के साथ-साथ प्रकृति-चित्रण और ईश्वर-भक्ति में भी होने लगा। इसके साथ ही उर्दू के शराब, मुराही, प्याला, साकी आदि भी इन क्षेत्रों में घुस आये। ‘कला कला के लिए’ है—इसका प्रचार भी हुआ। यह समझा जाने लगा कि काव्य का लक्ष्य गौर्धम की सृष्टि करना है—‘काव्य में वस्तु या वर्ण्य विषय कुछ नहीं, जो कुछ है वह अभिव्यञ्जना के ढंग का अनुशासन है’।

यतमान काव्य में उपमान-योजना प्रभाव-साम्य के आधार पर हुई है। प्राचीन कवियों को रूप-साम्य और धर्म-साम्य का विचार रहता था। आज मनोवृत्ति बदल गई है। नायिका और मित्र की कटि में रूप साम्य प्रतीक-योजना तो है परन्तु प्रभाव साम्य नहीं है। आधुनिक कवि इस प्रकार का साम्य ग्रहण नहीं करते। आज चन्द्रिका सुख के लिए, मधवार दुःख के लिए, मधुमाम आनन्द के लिए, पनजर विपाद के लिए, मोती शुभता के लिए, मधुप प्रेमी के लिए, बलिका प्रेमिका के लिए, अंसा मानसिक भावुन के लिए, और लहर भावों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जिस वस्तु के प्रति

हमारे हृदय में उसकी विजेषता को देख कर जो धारणा बनती है, उसी का प्रयोग कविता में प्रतीकत्व होता है। चन्द्रिका के द्वारा हमारे हृदय में सुख का ही संचार होता है और भयंकार के द्वारा दुःख का। प्रभात को देखकर आनंद का उद्रेक होता है। ऊषा स्फूर्ति, जीवन के आरंभ और मूल का प्रतीक मानी गई है। संध्या जीवन के अवसान, एकांत और विपाद की संकेतक है। स्वर्ण में दीप्ति और कर्तव्य की भावना है। प्रभात ने निम्नलिखित पंक्तियों में शशा को मधुर्पण के लिए, विजली को वेदना के लिए, और नीरदमाला को मधुम्रो के लिए व्यवहृत किया है—

शशा शकोर गर्जन या, विजली थी नीरदमाला ।

भाकर इस भ्रूय हृदय को सब ने आ डेरा डाला ॥

पत ने गगानल का प्रयोग पवित्रता के लिए, मदिरा का कलुषता के लिए किया है—

हुई भूमको ही मदिरा आज हाथ क्या गगानल की धार ।

निराला की उक्ति 'बहु नयनों में केवल प्रातः, चन्द्र-उपोत्पत्ता में केवल प्रातः' में प्रातः स्फूर्ति का और चन्द्रउपोत्पत्ता शक्ति का प्रतीक है।

'शूलों का दर्शन भी हो, कलियों का चुम्बन भी हो' में महादेवी ने शूलों को दुःख का और कलियों को सुख का संकेत माना है। इनके निम्नलिखित गीत में कठोरता, कृष्ण, शीतलता, मादकता, पीडा, अवसोप, क्षणभंगुरता और अविच्छिन्नता के लिए कितने सुन्दर साधनिक प्रयोग मिलते हैं—

बुगों में सोते हैं अज्ञात

निदाघी के दिन, पावस रात,

सुषा का मधु, हाता का राग,

अथा के धन, अतृप्ति की प्राय,

द्विधे मानस में पवि-नववीत

निमित्त की गति-निर्गम के गीत ।

निम्नलिखित प्रतीकों के अर्थ देखिए—

गमूद, निर्गम, मर्ण, दीपक = घातमा

पथिक, पथी = साधक

जुगनू = बुद्धि

शरण-किरण = प्रेम

मधुप = प्रेमी

सूयो, कभी = प्रेमिका

बुन्दकनी, नलिनी, भस्मिका = प्रेमिका

मधु=प्रेम-रस  
मकरद, सौरभ=इच्छा  
रश्मि=आशा, ज्ञान  
तम=निराशा, अज्ञान  
सागर=ससार  
तरी=जीवन  
पतवार=साहस  
जलचरबृंद=कुवामनाएँ  
शीष्म=रोष  
वर्षा=वह्मणा  
शिशिर=जड़ता  
पतसङ्ग=दुःख  
वमन्त=धैर्यता, आनन्द

प्रतीक-योजना रहस्यवादी-छायावादी काव्य की कुजी है ।

प्रतीकों के व्यवहार में दो-तीन बातों का विचार रखना आवश्यक होता है । प्रथम, प्रतीकों में मूलवस्तु की किसी स्थितिविशेष का साम्य होना चाहिये । रहस्यवादी दाम्पत्य-प्रेम द्वारा अपनी रहस्यात्मक भावनाओं को सफल अभिव्यक्ति करते हैं । कवि को अपने देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु, प्रकृति और साधारण-विचार के अनुरूप ही प्रतीकों की योजना करनी चाहिये । योरोप में शीष्म उत्ताम का प्रतीक हो सकता है, परन्तु हमारे देश में वह नरक की ज्वाला का प्रतीक है । यही कारण है कि बच्चन के साँको और प्याला हमारे पाठकों के लिए अर्थहीन है । प्रतीकों की सार्वभौमिक भावना को ग्रहण करना चाहिये । व्यक्तिगत प्रतीक जिन कवियों ने प्रयुक्त किये हैं उनकी रचनाओं में अस्पष्टता आ गई है ।

आधुनिक प्रतीकों में कुछ पुराने हैं छ नये । सूर्य, चन्द्र, उषा, प्रभात, विजयी, इन्द्रजनुष, ज्योत्स्ना, किरण, तिमिर, लहर, हिमरुण, समीर, मुरमि आदि प्रकृति से लिये हुए प्रचलित अस्तित्वों के अतिरिक्त चम्पना, मृन्मि, विस्मृति, मूच्छंता, भावता, लालमा, आकाश, चाह, लज्जा, मुकुमारता आदि नवीन अस्तित्व का प्रयोग भी हुआ है । इनकी संख्या बहुत अधिक है ।

छायावाद-रहस्यवाद में एक ओर मूर्धन्य भावों की व्यञ्जना मूर्त वस्तुओं के चित्रणों द्वारा की जाती है और दूसरी ओर मूर्त को मूर्धन्य भाव के रूप में परिवर्तित करके कहा जाता है । महादेवी वर्मा मध्याह्न के भाये पर मुद्रा-रेखा लगा कर उसे हेमता हुआ देखती है तो निराना विषय को 'पूजा भी', ताँटव

की स्मृति-रेखा तो' कहकर उसकी कल्पना और भ्रमंकरता का वर्णन करते हैं। स्थूल के लिए स्थूल प्रतीक भी ग्रहण किये जाते हैं। नासिका के लिए शुक, मुख के लिए चन्द्रमा, घेणी के लिए सर्प, नेत्र के लिए कमल अथवा मौन का प्रयोग बहुत दिनों से होता आया है, किन्तु छायामावाद में इनका सांज्ञिक प्रयोग बहुत अधिक हुआ है।

नर्तमान कवि भाषा का शब्द-शोधन और शब्द-चयन अधिकारपूर्ण सावधानी से कर रहे हैं। अच्छे कवि शुक मिलाने के लिए शब्दों की तोड़-मरोड़ नहीं करते। हा, जब भाषा भावों का साथ नहीं देती तो वे नये प्रक्रिया शब्द गढ़ लेते हैं। मस्कृत पदावली को भरमार से इस कविता में मधुरता और तड़क-भड़क तो अवश्य है परन्तु इस में प्रवाह नहीं है। अंग्रेजी मुहावरे भी नहीं मजे। 'अजान नयन', 'नये जीवन का पहिला पृष्ठ देखि तुमने उलटा है आज' आदि प्रयोग बड़े ग्यारे-न्यारे लग रहे हैं। अरबी-फारसी के शब्द भी प्रमुक्त हुए हैं परन्तु वे छायामावाद की प्रकृति के अनु-कूल नहीं हैं। हर्ष की बात है कि कुछ वर्षों से भाषा को सरल, व्याकरण-संगत और शुद्ध बनाने का प्रयत्न हो रहा है और खड़ी बोली का अपना रूप निकल रहा है।

छायामावाद-रहस्यवाद के कलापक्ष में लक्षणा के भिन्न-भिन्न प्रयोगों का उपयोग भी हुआ है। कार्य-कारण लक्षणा, उपादान लक्षणा, आधार-आधेय लक्षणा और व्यय-व्यञ्जक लक्षणा के नमने प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में मिलने हैं।

प्रत्यकार-योजना में पुराने चलवारा के अतिरिक्त अंग्रेजों के दो नये चलकार (मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय) भी अपनाये गये हैं। प्रातः, मध्याह्न, रात्रि, बादल, सूर्य, चन्द्रमा, मृत्यु आदि में जो मानवी भावनाओं का आरोपण किया गया है उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। विशेषण-विपर्यय में विशेषण का जो स्थान अभिधावृत्ति के अनुसार निश्चित है उसे वहाँ से हटा कर लक्षणा द्वारा दूसरी जगह आरोप किया जाता है। पन्त ने बच्चों के 'तुलने भय' का प्रयोग उनकी तुलसी वाली में व्यञ्जित भय के लिए किया है। द्विज ने भूखे भिगारी की झोली की जगह 'भूखी झोली' कहा है।

छायामावाद का गीति-वाक्य छंद और संगीत की दृष्टि में उच्च कोटि का है। हम में प्राचीन छंदों का उपयोग भी हुआ है और नवीन छंदों का निर्माण भी किया गया है। मुक्त छंद और अनुकूल कविताएँ भी लिखी गई हैं और भिन्नभूत कविता के अनिश्चित अछंद पद्य भी लिखे गये हैं—इन्हें 'खड़' छंद कहा गया है। वही-वही कविता गद्य के निजटनम आ गई है। प्रायः कवियों

ने अप्रचलित छंदों, लोकगीतों के छंदों का प्रयोग किया है, कुछ-एक ने दो अथवा तीन छंदों के मेल से नये छंद की संयोजना भी की है। कुछ ने उर्दू छंदों का प्रयोग भी किया है। पुराने छंदों का परिमार्जन भी किया गया है।

छंद की अपेक्षा संगीत और लय का इस कविता में अधिक ध्यान रखा गया है। इस में कोई सन्देह नहीं कि छायावाद-रहस्यवाद अपने युग की एक रटि बन गया। शब्दाडम्बर और उक्ति-चमत्कार पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। प्रकृति और 'कौन' दो ही विषय रह गये। हमारी कविता जीवन से बहुत दूर हो गई। 'निराशा' और 'भ्रासू' हमारे गले का हार हो गये। काव्य में एकरसता भर गई और 'वाद' के रूप में इसका प्रभाव धीरे-धीरे स्थिर हो गया।

छायावाद और रहस्यवाद पर बीसियों काव्यग्रन्थ मिलते हैं। सन् १९२० और १९३५ के बीच में जो कविताएँ लिखी गईं उनके प्रधान विषय यही रहे हैं।

हम केवल कुछ-एक के नाम देना पर्याप्त समझते हैं। इन ग्रन्थों प्रमुख रचनाएँ में भी सभी कविताएँ इस विषय पर नहीं हैं।

मैथिलीशरण गुप्त—'झकार', 'ढापर'।

नियारामशरण गुप्त—'दुर्वादल', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'मानन्द-सप्रह'।

'भारतीय आत्मा'—'सीमा', 'असीमा', 'व्यक्त', 'अव्यक्त', 'क्षेप', 'अक्षेप', 'जीवात्मा', 'परमात्मा', 'सूंगी दर्पण छीन', 'स्मृति के मधुर वसन्त', 'खीझमयी मनुहार', 'भ्रासू' आदि कविताएँ।

जयगंकर प्रसाद—'प्रेमपथिक', 'सहर', 'कामायनी', 'झरना', 'भ्रासू'।

रायकृष्णदास—'भावुक' में 'परिग्रह', 'सम्बन्ध', 'सीप', 'खुला द्वार' आदि कविताएँ।

सूर्यभानु त्रिपाठी निराला—'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'ग्रन्थ'।

सुमित्रानन्दन पन्त—'पल्लव', 'वीणा', 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना' आदि।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र—'त्रिलोचन', 'विश्वरूप', 'महामृत्यु', 'विस्तर भाव', 'विश्व-मुन्दरी', आदि कविताएँ।

मोहनलाल महतो वियोगी—'निर्मात्य', 'एकतारा', 'कल्पना'।

महादेवी वर्मा—'नीहार', 'रश्मि', 'सान्ध्यगीत', 'नीरजा'।

भगवतीचरण वर्मा—'मधुकण', 'प्रेम-संगीत' ।

रामकुमार वर्मा—'अभिज्ञाप', 'अञ्जलि', 'रूपराशि', 'निशीथ',  
'विशरेखा', 'चन्द्रकिरण' ।

सुभद्राकुमारी चौहान—'मकुल', 'विखरे मोती', 'उन्मादिनी' ।

रामेश्वर शुक्ल अञ्जल—'मधूलिका', 'वर्षा के बादल' ।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'—'अनुभूति' ।

उदयशंकर भट्ट—'विसर्जन', 'राका', 'मानसी' आदि ।

हरिकृष्ण प्रेमी—'आँखों में', 'जादूगरनी', 'अनन्त के पथ पर' ।

नीचे प्रकृति-चित्रण, प्रेम, रहस्य, और छाया-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न शक्तियों पर लिखी गई कविताओं के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं । इससे उदाहरण इस विषय पर और भी प्रकाश पड़ेगा ।

### ( १ )

पावस-श्रुतु धी, पर्वत-प्रदेश,

पल-मल परिवर्तित प्रकृति-वेद ।

मेललाकार पर्वत अपार,

अपने सहस्र दुग-सुमन काङ्,

अवलोक रहा है बार-बार,

नीचे जल में निज महाकार,

जिसके घरणों में पला ताल

दर्पण-सा कंठा है विशाल ।

(पन्त—उच्छ्वास)

पन्त जी प्रकृति के चित्रकार हैं । आप के प्रकृति-चित्रण में उल्लास, आनन्द विम्वय और कल्पना की ऊँची उड़ान तथा अनुभूति की गहराई रहती है । प्रकृति के जितने चित्रात्मक दृश्य आपकी कविता में हैं उनमें हिन्दी के किसी कलाकार में नहीं मिलते । प्रकृति के रूप-चित्रण में आप अद्वितीय हैं । आप की आवा मधुर और अपेक्षाकृत सरल होती है ।

### ( २ )

फूलों पर मधुपों का गुंजन, फुल-चुम्पी का मंजुल रन-मून ।

सुगों का फल खाना चुन-चुन, यह सब बन में सख-सख सुन-सुन ॥

कंठा मन जो उठता न थोत, रे पद्मी मंजुल खोल खोल ।

मन बँटे नौड़ में हाँसों पर, सुहसा-सुहसा घोंघों में पर ॥

गदगद होकर धाँगू भर-भर, कुछ गीत न गाया रे क्षण भर ।  
तो इस जीवन का कुछ न मोल, रे पंछी भंजुल बोल बोल ॥

(नेपाली-उमंग)

नेपाली के प्राकृतिक चित्रणों में भी बड़ा आनन्द मिलता है । आप उन थोड़े से कवियों में हैं जो अब भी प्रकृति के चित्रात्मक और उत्साहपूर्ण वर्णन उपस्थित करके पाठकों को कविता का रसास्वादन कराते हैं । आप ने छायामाद, शृंगारी और प्रगतिशील कविताएँ भी लिखी हैं । उनमें किसी एक विशेष प्रवृत्ति के लिए मोह नहीं है ।

( ३ )

धयकती है जलदों से ज्वाल, बन गया नीलम प्योम प्रवाल ।

आज सोने का सांध्यकाल, जल रहा जलुगुह सा बिकराल ॥

(पंत-पल्लव)

यह पद्य उस गीनी का उदाहरण है जिसमें प्रकृति का चित्रण बहि की मन-स्थिति के अनुसार होता है । इस प्रकार के संवेदनात्मक वर्णन पत की कृतियों में बहुत मिलते हैं ।

( ४ )

यमुने ! तेरी लहरों में किन अक्षरों की आकुल तान,

पक्षि-प्रिया सी जगा रही है, किस अतीत के गौरव-गान ।

(निराला)

दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या-सुन्दरी परी सी

धीरे धीरे धीरे,

तिमिरावस में चंचलता का नहीं वही आभास ;

मधुर मधुर हैं दोनों उसके अक्षर,

किन्तु गंभीर,—नहीं है उनमें हास-बिलास ।

(निराला—संध्या-सुन्दरी)

निराला और पंत इस युग की सभी काव्य-प्रवृत्तियों का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करते हैं । निराला जो प्रकृति के आध्यात्मिक पक्ष के चिन्ते हैं । मोदय-पियामा, अनुभूति की गहराई, भाषा में शब्द और संगीत आदि गुण आपकी अनेक कविताओं में मिलते हैं । निराला के पांडित्य और पत की बला पर अधिकांश आलोचक मुख हैं ।



( ५ )

शशिमुख पर घूंघट झाले, भंचल में दीप छिपाए,  
जीवन की गोधूति में, कौतूहल से लुभ भाए ।  
बस गई एक बसती है, स्मृतियों की इस हृदय में,  
मक्षत्र-लोक फंसा है मेरे इस मोल-निलय में ।

( प्रसाद—प्रांसू )

प्रकृति में मानव-भावनाओं और मानव में प्रकृति के दृश्यों की योजना के लिए प्रसाद प्रसिद्ध है ।

( ६ )

देख वसुधा का जीवन-भार  
गूँज उठता है जब मधुमास,  
विपुल उर के-से भृश उद्गार  
कुतुभ जब लुल पड़ते सोच्छ्वास,  
म जाने, सौरभ के मिस कौन  
संदेशा मुझे भेजता मौन । ( पंत्—मौन निमंत्रण )

पत ने प्रकृति के चित्रात्मक और मवेदनात्मक दोनों प्रकार के चित्र उपस्थित किये हैं । प्रकृति में आपकी " मौन निमंत्रण " भी मिले हैं ।

प्रेम

( ७ )

तुम कनक-किरण के अंतराल में, लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?  
नतमस्तक सब कहन करते, जीवन के धन रसकन ढरते ।  
अधरों के मधुर कगारों में, कल-कल ध्वनि की गुंजारों में,  
मधु-सरिता सी मह हँसी तरल, अपनी पीते रहते हो क्यों !

( प्रसाद—चन्द्रगुप्त )

प्रसाद जी प्राधुनिक शैली के एक थोप्ट बसाकार हुए हैं । रामनाथ मुमन के शब्दों में " इस कवि में जो मस्ती है, भावना एवं धनुभूति की जो मृदुता है और मानव जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है, उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति-नाट्य की रचना के अत्यंत उपयुक्त थी । . गीति-नाट्य के लिए कवि में सौंदर्य-वृत्ति होनी चाहिए, वह कवि प्रसाद में शोधप्रोत थी । इस प्रकार के काव्य के लिए स्वानुभूति दूसरा अनिवार्य गुण है, जिस की भावा ' प्रसाद ' में पर्याप्त थी ।" प्रसाद प्रेम और सौंदर्य के उपासक थे । उनकी प्रेम-कविताओं में धनुभूति और कल्पना का परिचय मिलता है । ' प्रेम की पीर ' का गफल और प्रभावपूर्ण वर्णन करने वालों में प्रसाद बहुत प्रसिद्ध है ।

( ८ )

ठहर जाओ, घड़ी भर और  
 तुमको देख लें आँखें,  
 तुम्हारे रूप का मित आवरण  
 कितना मुझे शीतल,  
 तुम्हारे कंठ की मधु बांसुरी  
 जल पार सी बंचल,  
 तुम्हारी चितवनों की छाह  
 मेरी आत्मा उग्वल,  
 उलझनी फड़फड़ाती प्राण-  
 पंछी की लक्ष्म पाँखें ।

(रामेश्वर शुक्ल 'बंचल')

बंचल जी की कविताओं में मधुर्य कम और प्रेम की कोमल तथा प्रवाह-  
 स्निग्ध अभिव्यक्ति अधिक है। इनमें प्रेम के शीतल और मंद प्रवाह की प्रचुरता  
 है और उत्तेजित मधुवा आँखें प्रेम की कमी। आपको नेत्र-प्रेम का उपासक कहा  
 गया है। कुछ चिर से आप प्रगतिवाद की ओर आकर्षित हुए हैं। मधुबक  
 कवियों में आप ने अपना स्थान निश्चिन्त कर लिया है।

( ९ )

यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,  
 सत्य कहता हूँ, न मैं असहाय या निरुपाय होता ।  
 व्यर्थ है पर स्वप्न यह—“फिर भी मिलेंगे ।”  
 आज के बिछड़े न जाने कब मिलेंगे ?  
 आह, अंतिम रात वह ! बंठी रही तुम पास मेरे,  
 शीश बंधे पर धरे, धन कुंतलों से गात धरे ।  
 लीन स्वर में यों कहा था—“कब मिलेंगे ।  
 आज के बिछड़े न-जाने कब मिलेंगे ।”

(नरेन्द्र शर्मा—कब मिलेंगे।)

शर्मा जी की कविताओं में लौकिक प्रेम और मयार्थवादी गीतों की  
 अभिव्यक्ति है। संयोग और वियोग-गुंजार, प्रकृति-प्रेम, ममाजमुषार और  
 देवप्रतिभापकी रचनाओं के विषय हैं। इनमें प्रेम के गीत अधिक मधुर,  
 व्यंग्य और मौलिक बन पड़े हैं।

वेदना

( १० )

मैं कई बार तो गिर पड़ा,  
 गिर-गिर कर फिर हो गया खड़ा,  
 फिर लगा हिचकियों का झटका, टूटा घोरज का बंध कड़ा ।  
 भ्रम तो प्रवाह ने लिया घेर, टुक रो लेने दो जरा डेर ॥  
 मानस-दिग्मंडल झुझ गिरा,  
 काले सेधे से भाज चिरा ।  
 झंझियारी छाई हो तल पर, नाटक का परदा भान गिरा ।  
 सब राग-रंग हो गये डेर, टुक रो लेने दो जरा डेर ॥

(बासकृष्ण शर्मा नवीन—छोड़ो न)

नवीन में भाजकल की सभी शैलियों पर सुन्दर रचनाएँ की हैं। इनकी प्रणय-सवग्धी रचनाओं में प्रेम, उन्माद और वेदना का सम्मिश्रण है। इस प्रकार की कविताएँ कुछ लम्बी हैं, परन्तु इनका सामिक प्रभाव भावुक पाठकों के हृदय पर निरन्तर रहता है। इनकी भाषा घेंसी बड़ी उच्छृङ्खल और झटपटी है। उर्दू और बजभाषा के अतिरिक्त प्रांतीय शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। शब्दों को मोड़ा-तोड़ा भी है। प्रारम्भ में इनकी कविता सूक्ति-प्रधान थी, भव रागीत-प्रधान हुआ करती है। नवीन किसी वाद के बश में होकर कविता नहीं कहते। वे अनु भक्ति-प्रान कवि हैं।

( ११ )

हास्य कहाँ है ? उसमें भी है  
 रोदन का परिणाम;  
 प्रेम क ह ? घृणा उसी में  
 करती विभ्राम ।  
 दया कहाँ है ; झुलित उसको  
 करता रहता रोष;  
 पुण्य कहाँ है ? उसमें भी तो  
 क्षिपा हुआ है दोष ।  
 घूल हाव ! बनने ही को  
 विसता है फूल अनूप ;  
 यह विकास है मुरझा जाने  
 ही का पहला रूप ।

(रामकुमार—भगवत)

दा० वर्मा की कविता में वैराग्य और निराशा भरी है। हास्य में रदन, प्रेम में घृणा, दया में रोष, पुण्य में पाप आदि देख कर आप उदास रहते हैं। इनकी कविता की विशेषताएँ हैं प्रतीक-चमत्कार, ऊँची कल्पना और वेदना की अद्भुत अभिव्यक्ति।

( १२ )

वेदना ! कैसा कलम उद्गार है ?  
वेदना ही है अखिल जगड़ांड यह,  
तुहिन में, तृण में, उपल में, सहर में,  
तारकों में, व्योम में है वेदना ।

(निराला—ग्रन्थ)

इस प्रकार की वेदना निराला के अनुभूति-वोषित काव्य की परिचायक है। इनके गीतों में व्यथा के साथ भाव, अलंकार, संगीत और माधुर्य भरे हैं। इनकी शैली पर बंगला-कवियों की छाया है। इसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। कुछ समय से आप उर्दू-शैली के प्रयोग भी कर रहे हैं। अनेकरूपता और स्वाधीनता आप की रचनाओं की विशेषता है।

( १३ )

मैं उन्मत्त प्रेम का लोभी हृदय दिताने आई हूँ,  
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ।  
वरणों पर अर्पण है, उसको चाहो तो स्वीकार करो,  
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो।

(सुभद्राकुमारी चौहान)

सुभद्राकुमारी के काव्य-विषय इस लोक से सम्बन्ध रखते हैं। आपके प्रेम में लौकिक और अलौकिक दोनों शक्तियाँ मिल जाती हैं, परन्तु आप को क्षितिज के उस पार के अद्भुत प्रियतम का विशेष रोह नहीं था। देशभक्ति, वात्सल्य और प्रेम आप की रचनाओं के प्रधान विषय हैं। आप की भाषा मधुर और भरल है।

रहस्यवाद

( १४ )

किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका, तुझे झाँकना पाप हुआ,  
भाग सगे वरदान निगोड़ी मुझ पर आकर शाप हुआ,  
जाँच हुई नभ से भूमण्डल तक का व्यापक माप हुआ,  
कितनी बार समाकर भी छोटा हूँ यह संताप हुआ,

भरे शशेष ! शेष की गोदी तेरा बने बिछीना सा,  
आ भरे आराध्य खिला लूं, मे भी तुझे खिलौना सा ।

(भाखनलाल चतुर्वेदी)

भाखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में देव-भक्ति, प्रेम, प्रकृति-चित्रण, रहस्यवाद, सब कुछ है। इनमें अनुभूति का भग्न बहुत अधिक है। आप का रहस्यवाद भक्ति-सिद्धांत के आधार पर प्रतिष्ठित है। आप की कविता में भावुकता और सूक्तियों की प्रधानता रहती है। आपको हिन्दी में उर्दू-काव्यशैली का प्रतिनिधि कहा जाता है।

( १५ )

भरा नयनों में मन में हृष,

किसी छलिया का घमसत अनूप ।

जल, धल, भासत, ध्योम में जो छाया है सब शोर,

सोज-सोज कर लो गई ये पागल प्रेम विभोर ।

भाग से भरा हुआ यह कूप,

भरा नयनों में मन में हृष ।

धमनी की तंत्री बजी, तू रहा सगाये कान,

बलिहारी मैं, कौन तू हूँ मेरा जीवन प्राण ।

तेलता जैसे छाया धूप ।

भरा नयनों में मन में हृष ॥

(प्रसाद)

प्रसाद सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि थे। वहाँ की खोज में जो अनुभूति आप को प्राप्त हुई उसका दार्शनिक वर्णन आपने अग्र्यन्त कलापूर्ण शैली में किया है। इसका प्रभाव आधुनिक कान की कविता पर बहुत गहरा पड़ा है। गिफ्टता, अतीतिक नावण्य, कलापूर्ण अग्रस्तुन-विधान, भाषा की प्रीतिना मादि आपकी कविताओं के विशेष गुण हैं। आपने नारी, युग, बालक, वृद्ध, रस, रक्त, भले-बुरे गये का जीवन अंकित किया है। आपने प्राचीन संस्कृतियों में समन्वय की भावना उपस्थित की है।

( १६ )

दिर विकल हूँ प्राण मेरे !

सोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी

देख लूँ उस ओर क्या है ?

जा रहे जिस पंथ से युग-

बत्प उसका छोर क्या है ?

क्यों मुझे प्राचीर बन कर  
प्राज्ञ मेरे श्वास घेरे ?

(महादेवी)

महादेवी वर्मा आधुनिक युग की भीरा हैं। उनके गीतों में वही प्रेम, आस्तिकता, आत्मसमर्पण, विरह, करुणा और मधुरता है जो भीरा के 'भजनों' में है। उन्होंने रहस्यवाद की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर अनुभूतिपूर्ण प्रतीतियाँ मिली हैं जिनकी सरमता और गम्भीरता को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। निस्संदेह उनकी अधिकतर रचनाओं में वेदना की भावना रहती है, परन्तु 'भीरा' तथा 'माध्यगीत' में ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जो आत्मानन्द की अनुभूति से पूर्ण हैं।

( १७ )

हुआ था जब संव्या-शालोक  
हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर,  
बिहग-रस बन कर मैं चित्तचोर  
था रहा था गुण किन्तु कठोर !  
रहे तुम नहीं वहाँ भी, शोक !  
निष्ठुर ! यह भी कैसा अभिमान

(पंक्त)

पंक्त भैदातिक रहस्यवाद के पक्ष में नहीं है, परन्तु, रहस्यमय 'प्रियतम' की अनुभूति इनकी कविताओं में अवश्य है। इनका रहस्यवाद प्रकृति की पृष्ठभूमि पर चलता है। ये रहस्यवाद के स्वभाविक-बहि हैं। पन की कल्पना अत्यन्त मौलिक और भावपूर्ण है। भाषा पर पूरा अधिकार है—इन्होंने कुछ नये शब्द और प्रयोग भी गढ़े हैं।

छायावाद

( १८ )

पाकर विशाल कच-भार एड़ियाँ धंसतीं  
तब नल-ज्योति मिल मृदुल अंगुलियाँ हँसती ।  
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,  
तब अरण्य एड़ियों से सुहास सा झड़ता

(मंथिलीनारण गुप्त)

गुप्त जी की रचनाओं में सभी शक्तियाँ मिल सकती हैं, प्राचीन भी और नवीन भी। वंशता-साहित्य का छायावादी कविताओं में स्पष्ट प्रभाव है।

( १६ )

पंख खोले उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा,  
 फूल उठता शून्य में मेरा हृदय उच्छ्वास मेरा ।  
 दूँदने जाऊँ कहीं मैं आँख में आत्मीक फोका,  
 पर सरजाने लगे हैं जी हुआ है भार जी का ।

उष जग के शेष-पूरति ध्येय को दिस खोल सहता ।  
 और जग के राग में इन आमुष्मों को घोल कहता ॥  
 पागलों के स्वप्न से उड़ चंद्र-मंडल आज घेरा ।  
 पंख खोले उड़ रहा है आदि मेरा अंत मेरा ॥

(उदयशंकर भट्ट)

मबीन दौली की कविताएँ लिखने में भट्ट जी ने अन्धवी प्रतिभा का परिचय दिया है । इनमें भाव, कल्पना और अनुभूति सभी सुन्दर हैं । आप दार्शनिक छायावाद की कविता भी अधिकारपूर्ण करते हैं और प्रगतिवाद की ओर भी आकृष्ट हैं । आप की कल्पना में सचाई और ईमानदारी रहती है ।

( २० )

कहो, तम रूपति कौन ?  
 प्योम में उतर रही चुपचाप  
 छिपी निज छाया छवि में आप,  
 सुनहला फंसा केश-कलाप  
 मधुर, मंथर, मृदु, मौन !  
 मूँद अक्षरों में मधुपासाप,  
 बलक में निमिष, पक्षी में चाप,  
 भाव-संकुल, बंकिम, भू-चाप,  
 मौन, केवल तुम मौन !

अनिल पुतलित स्वर्णविल सोल,  
 मधुर नूपुर-ध्वनि राग-कुल-रोल,  
 सीप से जसदों के पर खोल,  
 उड़ रही नग में मौन !

(पंत)

प्रकृति में उस अज्ञात की शक्त पाना रहस्यवादी कवियों की विशेष अनु-  
 -- १ ,

( २१ )

गुत्तालों से रवि का पथ खोल,

जला पश्चिम में पहला दीप,  
विहँसती संध्या भरी सुहाग  
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग ।

(महादेवी)

स्मित से प्रभात आता नित  
दीप दे संध्या जाती,  
दिन डलता सोना बरसा  
निशि मोती दे मुस्काती ।

(महादेवी)

हिन्दी में रहस्यवाद का अध्ययन करने वालों के लिए महादेवी की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। आपने शुद्ध छायावादी गीत भी लिखे हैं। ये गीत हिन्दी-साहित्य की निधि हैं। इनमें वाक्यकला का सौष्ठव भी है और भावों की प्रचुरता भी। इस प्रयोगवाद के युग में आप भव भी प्रतीकात्मक शैली का अनुसरण करती हैं भयवा मौन रहती हैं।

( २२ )

प्रेम का प्रथम प्रणय-चुम्बन,  
पाश डाले थे. कोमल हाथ ।

(भगवतीचरण वर्मा)

भगवतीचरण की कविता में मुसलमानी सिद्धांतों और अंग्रेजी शब्दयोजना की छाया है। आपके काव्य-विषय प्रधानतः प्रेम, मानव और छायावाद है। आपकी शैली विलम्ब परन्तु मनोहर है। आपके गीत कुछ सम्बे-सम्बे हैं, पर इनकी भावुकता, कल्पना, सरलता और तन्मयता निर्विवाद है।

( २३ )

शोभा समेट कर सारी अपने आंचल में लेकर  
रजनी जाती थी रोती कोयल के स्वर में जी-भर ।  
यह तारकावली उसकी अलकों के हैं च्युत मोती,  
यह गई दूध में मानी इनकी विमोर हो बोती ।

निद्राभिभूत कर जग को ज्योत्स्ना से और पवन से,  
शशि चरा रहा है मृग को बदली में छिप गोपन से ।  
प्रातः समीर धीरे से जा चूम-चूम कलियों को;  
है झुता जगाता डाली निद्रित, चञ्चल, अलियों को ।

(मोहनलाल महतो)

बिहार के आधुनिक कवियों में आप बहुत प्रसिद्ध हैं। न तो आप की



कल्पना विलुप्त है और न ही भाषा अस्पष्ट। आप की रचना प्रेम, करुणा और भक्ति से पूर्ण है। बाद में आप आतिवादी कविता भी करने लगे थे।

केवल झलकार

( २४ )

प्रिय मुद्रित दृग खोलो !

गत स्वप्न निशा का तिमिर-जात नव-किरणों से धो लो

मुद्रित दृग खोलो !

जीवन-प्रसून यह अन्तहीन खुल गया उषा-नभ में नवीन,

घाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर यह खलीं अतुल्य कर्म-लीन

तुम भी निज सहण-तरंग खोल नव अरण-संग हो लो—

मुद्रित दृग खोलो !

(निराला)

निराला जी ने इस प्रकार की कविताएँ भी लिखी हैं जिन का विषय न तो छायावाद है और न ही रहस्यवाद—यत्त्वत्त. कलात्मक शैली का प्रयोग अवश्य हुआ है।

( २५ )

मेमनों-से मेघों के बाल

फुदकते थे प्रमृवित गिरि पर।

(पंत)

यह पद्य उस शैली का उदाहरण है जिस में छायावाद अथवा रहस्यवाद नहीं है—अलक्ष्य अलंकार-योजना नवीन शैली की है। पद्य ने ऐसे अनेक गीत लिखे हैं जिनका विषय छायावाद नहीं—समीक्षकों को भले ही उसमें कोई 'वाद' मिला जाता हो।

( २६ )

निर्दयता की निष्ठुर मूर्ति-सी, हृदय की जय-गंड़ी-सी।

उरण सहिर की व्यासी जो, नित रहती है रण-बंदी-सी॥

हुष्ट जनों की कुटिल प्रीति-सी, बाढ कामिनो-चितवन-सी।

नोच हृदय की स्वार्थ नीति-सी, पराधीनता-वधन-सी॥

जीर्ण रुढ़ियों के हठ-सी, साम्राज्यवाद की काया-सी।

विषया के संतप्त हृदय-सी, नित अनर्थ की व्याप्ता-सी॥

(कैरव—तत्तवार)

बिहार के छायावादी कवियों में आरमीप्रसादमह, विद्योभी और कैरव का श्रेष्ठ स्थान है। कैरव की कविताओं में छायावाद और पद्यतिवाद की शैलियों

का सुन्दर नामजस्य हुआ है। आप का प्रतीक-विधान स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण रहता है। मग्नता और सरमता आप के गीतों की विशेषताएँ हैं।

( २७ )

दिपा उर में कोई अनजान !

खोज-खोज कर सांस थिफत बाहर आती जानी है;

पुनर्लो के बाले बादल में वर्षा सुख पाती है !

एक बेइना विद्युत-सी लिच-लिच कर चुभ जाती है,

एक रागिनी चातक-स्वर में सिहर-सिहर गाती है।

कौन समझे-समझावे गान !

दिपा उर में कोई अनजान !

(रामकुमार वर्मा)

रहस्यवादी कवियों में ये भी प्रसिद्ध हैं। इनका रहस्यवाद महादेवी वर्मा की धँसी के अनुसार है। इसमें इनके अध्ययन और कल्पना का परिचय मिलता है। उनकी अलंकार-योजना सुन्दर होती है। इन्हें प्रकृति के दैवी बिम्बों के आघार पर रहस्य-भावना की मुकुमार अभिव्यक्ति करना ही प्रिय रहा है। इनके गीत सज्जन, भावपूर्ण और प्रभावशाली हैं।

प्रगतिवाद

गजर्नालि में जो समाजवाद (अथवा साम्यवाद) है, वास्तव में उसी का साहित्यिक मॉर्चा प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी ऐसे साहित्य की सृष्टि चाहता है जो वर्गहीन समाज की स्थापना में सहायक हो। वह व्यक्ति की कल्पनायुक्त पीढ़ी को सुनना नहीं चाहता, वह समष्टि की वास्तविक पीढ़ी से शुरु है। वह आध्यात्मिक आवश्यकताओं की अपेक्षा पेट की भूख को पथार्थ आवश्यकता मानता है। इसलिए वह द्वायावाद—रहस्यवाद को 'पनायनवाद' कहता है। उनका कहना है कि जो साहित्य समाज की प्रगति में सहायक नहीं होता वह विलास मात्र है, उस साहित्य का कोई उपयोग नहीं है।

पथार्थवाद का ध्यान व्यक्ति और समाज में फैली हुई गंदगी और उस में उत्पन्न बीमारियों की ओर रहता है। प्रगतिवाद उस गंदगी के कारणों की खोज करके उस गंदगी को हटाने के उपाय बताना है जिससे समाज प्रगति की ओर अग्रसर हो।

काल में चली आ रही है। दूसरा समुदाय कुछ उदार है—वह समस्त मानवता का उदार चाहता है। उसे पीड़ित यहूदियों से भी सहानुभूति है और हबशियों पर किये गये अत्याचारों पर भी रोष है।

छायावाद और प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों का मुकाबला करके इस प्रसंग को और भी स्पष्ट करना उचित है।

( १ ) वेदना और दुःख के विषय दोनों में हैं, परन्तु छायावाद की वेदना व्यक्तिगत है और प्रगतिवाद की वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों। एक और प्रगतिवादी समाज की विषमता से घाक्रात है, दूसरी और मानव के अतर्क्य से। उसे समाज से भी लड़ना पड़ता है और अपने से भी। परन्तु जहाँ छायावादी इस संघर्ष से घबराकर निराशावादी हो जाता है, प्रगतिवादी आशा से पूर्ण है। उसे विश्वास है कि वह इस दुःख को दूर करने में सफल होगा और वह दिन आयेगा जब ये विषमताएँ मिट जायेंगी। उसमें इनका सामना करने की शक्ति और स्फूर्ति तथा मानव जीवन के विकास की प्रेरणा है। छायावादी उस स्वर्लोक की कामना करते हैं जो इस जगह से दूर कहीं आकाश में है। प्रगतिवादी इसी जगह में स्वर्ग चाहते हैं। वे ऐसा ससार बसाना चाहते हैं जिस में वर्गभेद, शोषण और रुढ़ि का नाम तक न होगा।

( २ ) प्रेम के गीत दोनों प्रकार के कवियों ने गाये हैं। प्रगतिवादी प्रेम के दुष्परिणामों पर भी दृष्टि रखता है। वह प्रेम को निषिद्ध स्वर्ग की वस्तु नहीं समझता। वह जानता है कि जहाँ अमृत है वहाँ विष भी है। प्रगतिवाद का शृंगार कभी-कभी अश्लील भी हो जाता है—स्वाभाविकता के नाते वह किसी चीज की गोप्य नहीं रखता। 'प्रभातफेरी' और 'शाम्पा' में यथार्थता के नाम पर अश्लीलता की बीभत्सता बड़ी जगह लक्षित होती है।

( ३ ) प्रकृति से दोनों समुदायों के कवियों को प्रेम है। बहुत से कवि छायावाद में प्रगतिवाद की ओर झार पड़े हुए हैं। प्रगतिवादियों को प्रकृति-प्रेम का मुख्य कारण साम्य जीवन का आकर्षण है। वे सहृदयों से तम हैं। आभोग लोगों से उन्हें पूरी-पूरी सहानुभूति है।

( ४ ) गन्धर्व की प्रति ठा दोनों प्रकार के कवियों ने की है। परन्तु प्रगतिवादी धर्म का व्यावहारिक रूप लेते हैं। वे उस धूर्त की धोर निन्दा करते हैं जो ईश्वर को गिज्ञाने का प्रयत्न तो करता है परन्तु मनुष्य पर अत्याचार और पाप करना बुरा नहीं समझता। वे धर्म की भी मानवजाति के कल्याण के लिए लगाना चाहते हैं। वे उसी को धार्मिक कहते हैं जो मिथ्या में सहानुभूति रखता है, नंगे के शरीर को टैंक देना है और समाज के हित में लगा रहता है।

( ५ ) यह मानना पड़ेगा कि छायावादी कविता माघना और अभ्यास के कारण कवित्व की दृष्टि से बहुत ऊँची थी। प्रगतिवादी कविता में कभी वह गम्भीरता, वह तन्मयता, वह अभिव्यञ्जना, वह अनुभूति की गहराई और वह कला नहीं था पाई जो छायावाद की अपनी विशेषता रही है। स्वाभाविकता के नाम पर जो गिलवाड़ इसमें देखने को मिलता है उसका नमूना देखिए—

सिगरेट के खाली डिब्बे, पगो घमकौली,  
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली-पीली  
भासिक पत्रों के कवरों को, धौ 'बन्दर से,  
किलकारी भरतें खुस हो, अन्दर से,  
बौड़ पार भांगन के फिर हो जाते शोझत,  
मे नाटे छः-सात साल के सड़के मांसत।

प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार गिना जा सकता है—

- ( १ ) रुढ़ियों का विरोध;
- ( २ ) धार्मिकों के प्रति सहानुभूति, शोषकों की निन्दा;
- ( ३ ) धार्मिक जीवन की निन्दा, वैज्ञानिक जीवन की प्रशंसा;
- ( ४ ) शान्ति की भावना;
- ( ५ ) रूस और कम के राजनैतिक नेताओं का गुणगान;
- ( ६ ) मैदानिक विवेचन; और
- ( ७ ) संली की सरलता।

यह कह देना आवश्यक है कि आधुनिक काव्य में प्रगतिवाद और छायावाद की सीलियाँ बराबर चल रही हैं। कई कवि दोनों धर्मियों का सुन्दर समन्वय करने की उत्सुक हैं। रामावनार यादव 'शक्र' ने गरीब की शोषड़ी को रखाया है और दिनकर ने दिल्ली की कृपकमेध की रानी वह कर खूब बोमा है। आधुनिक कवि भड़े से भड़े विषय को काव्योपयुक्त बनाने में मगध हैं।

यह भी देखने में आया है कि जिस प्रकार इस से पिछली दो दशाब्दियों में बड़े-बड़े कवियों की देगा-देगो छोटे-मोटे कवि अनुकरण-मात्र करके कविकर्म निभाने रहे, इसी प्रकार अनेक आधुनिक कवि दूसरों के स्वर में स्वर मिलाकर निश्चित प्रणाली पर चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। भाव-शेख में प्रगतिवाद भी रुढ़िग्रस्त हो गया है।

प्रगतिवाद का स्वर हिन्दी काव्य में न तो महुद्यों और रसिकों के

लिए आकर्षक रह पाया है और न ही उसे लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इसके अनेक कारण हैं, जैसे—

- ( १ ) कल्पना, स्वानुभूति, संवेदनशीलता और भाव की कमी,
- ( २ ) यथार्थ का नग्न और घृणास्पद चित्रण; विकृतियों की प्रतिष्ठा, कही-कही अश्लीलता का समावेश;
- ( ३ ) जीवन की स्थूल समस्याओं का समावेश करके मानव मूल्यों का निरादर, क्योंकि मानव में धरीर से अधिक महत्त्व आत्मा ही का माना गया है और रोटी-कपड़े के अतिरिक्त हमारी और आर्काशाएँ भी रहती हैं।
- ( ४ ) प्रत्येक बात में अथद्वा, असन्तोष, अमानि, और जीवन-सम्बन्धी कुठा,
- ( ५ ) शोषितों के प्रति वास्तविक सहानुभूति की अपेक्षा मात्र

बौद्धिक सहानुभूति,

- ( ६ ) कविता के गौरव की अवहेलना।

सच तो यह है कि अद्य प्रगतिवाद एक दल के विचारों की पुष्टि करता है, उसमें न तो उदारता है और न ही सहनशीलता। इसका प्रभाव हिन्दी के बहुत थोड़े (और वह भी साम्यवादी—कम्युनिस्ट—विचारधारा के) नवयुवकों पर रहा है। बाद के रूप में अब यह मृतप्राय है।

प्रगतिशील काव्य के न केवल रंग और भाव अपितु भाषा, छंद और अलंकार भी प्रगतिवान, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक रहे हैं। बच्चन, नरेन्द्र,

मुमन आदि अनेक कवि भाषा को सरल और सुन्दर बनाने में प्रयत्नशील रहे हैं। छायावाद की स्मृतमयी पदावली, क्लिष्ट

प्रक्रिया प्रतीतिवादमकना और सांज्ञिक योजना के विरुद्ध विद्रोह के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। यह भी हमें याद है कि छायावादी कविता के गुणों को अपनाने की उत्सुकता बराबर बनी हुई है। छंदों की विविधता, भाषा की मधुरता और सरल अलंकारों की परम्परा आधुनिक काव्य में योग्यतापूर्ण ढंग से चल रही है। हाँ, इसमें अभी वह मगीत नहीं था पाया जो छायावाद का विशेष गुण है। बहुत-सी कविताएँ गद्य से भी अधिक रूढ़ी हैं।

प्रगतिवादी काव्यभाषा को जनभाषा के निवट रखने की चेष्टा करते हैं।

आज कवि प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि करने में तत्पर हुए हैं। किन्तु कुछ ही की रचनाएँ उच्चकोटि की बनें — गकनी हैं। केवल मुख्य-मध्य रचनाओं की सूची

सूरदास द्वितीय 'निगना'—'छन्ननिवा', 'छन्ननिवा' आदि के छन्द  
गान ।

प्रतिनिधि मुनिबानन्दन पन्ना—'मुगल', 'मुगलापी', 'उगोत' ।  
रचदार 'साम्ना' ।

महादेवी वर्मा—'बगन गन बंरना से' ।

हरिवंशराय बच्चन—'हलाहल', 'बगल का अकाल', 'आहुत पत्र' ।

रामधारीमिह दिनकर—'हुंकार', 'रेणुका', 'डड-गोत' ।

अनूप शर्मा—'मुमनावलि' ।

बापकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'विलव-मान', 'पराजय-गीत' आदि  
कविताएँ ।

गोपालमिह नेपाळी—'रातिनी', 'नवीन', 'घोर', 'पत्नी' ।

भगवतीचरण वर्मा—'मानव', 'भैसा गाड़ी' आदि कविताएँ ।

रामेश्वर दाबल अञ्जल—'मधूलिका', 'अपराजिता' ।

सोहनलाल द्विवेदी—'गाती', 'चित्रा', 'बागुरी', 'भैरवी',  
'युगाधार' ।

नरेन्द्र शर्मा—'दूल-फूल', 'कर्णफूल', 'प्रभात-केरी' ।

शिवममर्गासिह सुमन—'प्रताप-गूजन', 'जीवन के गान', 'हिमोग'  
आदि ।

केदारनाथ अग्रवाल—'युग की गंगा' ।

जैमिन्द्र जैन—'गुटर कविताएँ' ।

गमतेर बहादुर—'गुटर कविताएँ' ।

नागार्जुन—'गुटर कविताएँ' ।

नरेण मेहता—'गुटर' ।

भारत भूषण अग्रवाल—'गुटर' ।

इनके अतिरिक्त 'धर्म-दर्शन' में निगना, बच्चन, रामकृष्ण वर्मा,  
भागनान चतुर्वेदी और गुरु बन्धु की कविताएँ, निरंजनदेव मेवडा का  
'धर्मार्थ का गान', मेदनाथ अग्रवाल, हेमकृष्ण निवासी, केरव, रामचन्द्र  
सुमन, रामचन्द्रदास अग्रवाल, देवराज दिनेश आदि कविताओं की कृष्ण रचनाएँ  
इन दर्शन भाग की प्रतीति हैं ।

प्रतीति का अर्थ यह है कि ये कविताएँ गायक के हृदय में  
गहरी छापों में आती हैं और गूढ़ की भाँति छिपी हैं ।  
उदाहरण के लिए 'धर्म-दर्शन' भाग में 'धर्म' शब्द गूढ़ अर्थ में  
नहीं है ।

( १ )

कह दो मां क्या देखूं ।  
 देखूं ललित की कलियों या  
 प्यासे सूखे अघरो को,  
 तेरी चिर यौवन-सुषमा  
 या जर्जर जीवन देखूं ।  
 देखूं हिम हीरक हंसते  
 हिलते नीले कमलों पर,  
 या मुरसाई पलकों से  
 सरते आसू कण देखूं ।  
 तुम में अम्लान हंसी है  
 इस में अजल आसू-जल,  
 तेरा बंधन देखूं या  
 जीवन का बन्धन देखूं ।

(महादेवी बर्मा)

छायावादी कवि मानवता के प्रति उदासीन नहीं है । वे भी सामाजिक विषमता को सहन नहीं कर सकते । महादेवी जी के बंगाल के पीछितों के संवेग में लिखे गये गीत करुणा और समवेदना से पूर्ण हैं । वैसे भी आपकी कृतियों में यश-तश जीवन-मर्ष का परिचय और नव-जीवन का संदेश मिलता है

( २ )

मेरे पड़ोस के बे सज्जन, करते प्रतिदिन सरिता-पूजन ।  
 झोली से घुमे निकाल लिए, बढ़ते कपियों के हाथ दिए ।  
 देखा भी नहीं उधर फिर कर, जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ।  
 चिल्लाया किया दूर मानव, झोला 'भे धन्य खेड मानव' ।

(निराला—अनामिका में 'दान')

विषवा और भिक्षु के प्रति निराला जी की समवेदना सब पाठकों को विदिन है । 'जागो फिर एक बार' में कवि वर्तमानपालन की प्रेरणा देते हैं । ऊपर के पद्य में आप उन मंडो की निन्दा करते हैं जो बन्दरों को तो मिलाना जानते हैं पर भिक्षुओं को धिक्कारते हैं । निराला अतीत से मुड़कर वर्तमान और भविष्य की चिन्ता में व्यस्त हैं ।

( ३ )

हाथ, मृत्यु का ऐसा घमर अपाचिध पूजन,  
 जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !

शव को दें हम रूप-रङ्ग आदर मानव का,  
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का !

(पंत)

पंत एक आस्तिक और आशावादी कवि हैं। उनका कर्म में विश्वास है, वैराग्य में नहीं। वे जीवन के बन्धन में रहना मुक्ति पाने की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं। उनके हृदय में मानवता के प्रति हादिक सहानुभूति है। इन कविताओं को पढ़कर कौन कह सकता है कि छायावादी जीवन से दूर भागते हैं ?

( ४ )

कुदृष्ट व्यक्ति को विकसित हो भव बनना है जन मानव ।

सामूहिक मानव को निर्मित करनी है संस्कृति नव ॥

(पंत—युगवाणी)

नवीन संस्कृति के विषय में पंत जी की यह व्यवस्था है। वह समष्टि के आधार पर लड़ी है। वे गांधीवाद और साम्यवाद का समन्वय चाहते हैं।

( ५ )

न हाथ एक अस्त्र हो,

न साथ एक अस्त्र हो,

न अन्न, नीर, वस्त्र हो,

हटो नहीं

डटो नहीं

बड़े चलो

बड़े चलो :

अशेष रक्त तोल दो

स्वतंत्रता का भोल दो,

कड़ी युगों की खोल दो

डरो नहीं

मरो नहीं

बड़े चलो

बड़े चलो

(सोहनलाल द्विवेदी)

द्विवेदी जी ने अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। आप मुफ्त जी की 'भारत-भारती' की परंपरा का पालन करने वालों में से हैं। अतीत से प्रेम करते हुए भी आप भविष्य के निर्माण के लिए चिंतित रहते हैं। आप गांधी जी के आहिमा-



चाद के समर्थक हैं। नवीन जागृति और नवीन संस्कृति की प्रगति में आप पूर्ण रूप से सहयोग देते रहे हैं। सुधीन्द्र और आप पक्के आस्तिक और आशावादी कवि हैं।

( ६ )

ओ मदहोश बुरा फल हो शूरों के शोणित पीने का ।  
 देना होगा तुझे एक दिन गिन गिन मोल पसीने का ॥  
 मजिल दूर नहीं अपनी दुख का बोझा ढोने वाले ।  
 सेना अनल-किरीट भाल पर ओ आसिक होने वाले ॥

(बिनकर—हुंकार)

प्रगतिवादी कवियों में दिनकर का स्थान बहुत ऊँचा है। आप के विचारों में मौलिकता, सीली में ओज और सचाई होती है। आप की भाषा भोजपूर्ण, परिमार्जित और आलंकारिक होती है, परन्तु है अभ्यवस्थित। आपके काव्य में भारतीय स्वर विशेष रूप से रहता है।

( ७ )

भूल अलख शौर्यशाली है,  
 ... ..  
 भूल भवानी भयवनी है,  
 अगणित पद, मूल, कर वाली है,  
 बड़े विजाल उदर वाली है  
 भूल धरा पर जब घलती है,  
 वह जगमग-जगमग हिलती है  
 अन्यायी को खा जाती है,  
 वह अन्याय घवा जाती है,  
 और निमत जाती है पल में  
 अन्यायी का दुःमह शासन,  
 हड़प चुकी अब तक कितने ही  
 अत्याचारी सघाटों के  
 झट्ट किरीट, उबड़, गिहासन

(वचन—बंगाल का काल)

वर्तन हिन्दी के कवियों में बड़े प्रसिद्ध है। निराशा को 'मधुमाला' में पीकर आप अब समादगुधार और नवजीवन-निर्माण की आशा करने लगे हैं। आप के गीतों में दुःख का चित्र अत्यन्त मार्मिक हुआ है। गतका हृदय की वेदना,

पीड़ित प्राणियों की पुकार की प्रतिध्वनि और भाषा की सरलता भाव की प्रगतिशील कविताओं की विशेषता हैं।

( ८ )

कंटा ताल घुआं शोषित का चारु हृद्रा जाता दिग्मण्डल,  
घमक रही शमशीर नृशंसों की पीने युग का तप-सम्बल ।  
प्यासी आज विजय की प्यासी क्षुब्ध विजेता की हुंकारें,  
ध्वंसमयी ओ सुनो न जातीं मानवता की विरल पुरारें ।  
मानताइयों की हिंसा से कंपता अम्बर, घरती रोती,  
युग-युग की, जीवन प्रतिमा, तुम आज पड़ी खेतों में सोनी ।  
देखो मूढ़ों भर दानों को तड़प रही वृषकों की काया ;  
कब हैं सुप्त पड़ी खेतों में जागो इन्कलाव घिर आया ।

(अंधत—सबंहारा)

प्रेमी और जीवन के मनवाले अंचल जन-जीवन की प्रगति के लिए जी उन्मुक्त हैं। पूँजीपतियों का विरोध करने के लिए और श्रमियों के प्रति समवेदना प्रगट करने के लिए आपकी लेखनी में पूरा बन है।

( ९ )

आओ हृषकड़ियां तड़का दें, जागो-रे नतशिर बन्दी !  
उन निर्जीव शव्य श्वाभों में आज फूंक दूँ नवजीवन,  
भर दूँ उन में तूफानों का अगणित भूधतलों का कंपन  
प्रलयवाहिनी हो स्वर्नन हों तेरी साँतें फिर बंदी ।

(नरेन्द्र—प्रभात फेंरी)

गृहसुख से नर्गसित कर दी हृष मानवी बनी सपिणी  
यह निष्ठुर अन्धाय, आओ बहल !  
अरी सपिणी, आ तेरे अणिमय मस्तक पर मे  
अक्षित कर दूँ निर्धन घुम्बन, आ सपिणी, आ  
से नाई का निर्वंत आलिंगन ।

(नरेन्द्र—प्रभात फेंरी)

आज का कवि सामाजिक और राजनैतिक दोषों के लिए मनुष्य को ही उत्तरदायी समझता है। धर्मा जी बेइया के साथ सहानुभूति प्रगट करते हुए उनके पत्रों का उत्तरदायित्व समाज पर रखते हैं। भाव की कविता में धोख, कन्हा और संगीन होता है।

( १० )

दुनिया भर के घमजीजी जागो, कुछ घपनी तावन जानो

तुम में जितना बल है प्यारे, कुछ तो अपने को पहचानो ।।  
 और न सोचो अपने मन में एवमस्तु प्यारे अब योतो ।  
 महाद्वन्द्व का नयन तीसरा, प्रत्ययंकर गति से तुम बोलो ।।

(विश्वंभरनाथ)

यह उस शैली की आधुनिक कविता का नमूना है जिस में हरिश्चन्द्र-युग और द्विवेदी-ममूदाय के कवि लिखते रहे हैं। अतः 'अस्त' इस में श्रुति और नाश की भ्रमकी नयी है।

( ११ )

छोल सीना, घोंघकर मुट्ठी कड़ी  
 में खड़ा सलकारता हूँ,  
 ओ निपति तू सुन रही है ?  
 मैं खड़ा तुझको यहाँ सलकारता हूँ ।  
 हाँ, वही मैं  
 जो कि कल तक कर रहा था खरब में तेरे निवेदन फूल पूजा के  
 कहण छोली को भिगोकर  
 काँपती भंगुलियों की भंजलि संजोकर ।  
 हाँ, वहाँ मैं ।

(भारतभूषण प्रमदाल)

भारतभूषण, रामसेर बहादुर, नेमिचंद जैन आदि अनेक कवि अद्य नये-नये प्रयोग करते हुए दिखाई दे रहे हैं। लगता है कि इन साम्यवादी मतावलम्बियों का कवि भी अब जागा है और वे प्रगतिवाद की अद्विवादिता से डब चुके हैं।  
 —देखिए आगे 'नई कविता'।

( १२ )

जित में मानवता की दानवता फैलाए है निज राजपाट  
 साहूकारों के घरों में है, जहाँ धीरे धीरे गिरह-काट ।  
 है अभिजातों से सदा जहाँ पशुता का कलुषित ठाठ-भाट,  
 उसमें चांदी के टुकड़ों के बदले में लुटता है अनाज,  
 उन चांदी के ही टुकड़ों से यह खलता है सब राजकाज ।

(भगवतीचरण वर्मा)

समाज का वैषम्य इन शक्तियों में स्पष्टतः चित्रित हुआ है। वर्मा जी के 'मानव' नामक काव्य-संग्रह में समाजवादी विचार मिलने हैं। किन्तु यास्तव में भार स्वच्छन्दनामिय कवि है—किमी जाद विशेष में पटककर आप कविता नहीं लिखते ।

( १३ )

नियम और उपनियमों के बंधन टूक-टूक हो जाएं ॥

विद्वंभर की पोषक धीणा के सब तार भूक हो जाएं ॥

नाश-नाश, हाँ महानाश की प्रत्यक्षकरी आँख खुल जाए ॥

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे अंग-अंग झुलसाए ॥

(नवीन—कुंकुम)

नवीन की यह कविता बहुत प्रसिद्ध है। आप की रचनाएँ देव-भक्तिपूर्ण हैं। हाल ही में आप प्रांति के गान गाने लगे हैं। इनमें बड़ा ध्योज और प्रभाव होता है। आप की भाषा में उर्दू, हिन्दी, संस्कृत तथा ग्रामीण शब्दों का संमिश्रण होता है। वही-वही ठेठ प्रयोगों के कारण आप की भाषा में मरल मोलापन भी आ जाता है।

प्रयोगवाद—नई कविता

पिछले प्रकरण में जिस स्वर्णदत्ताप्रिय नई कविता का परिचय दिया गया है, उसे ही 'प्रयोगवाद' कहा गया है। प्रयोग तो हमारे साहित्य में सदा से होने आ रहे हैं। बीरगाथाकाल से लेकर आज तक का हिन्दी साहित्य विषयवस्तु, भाव, भाषा, छंद, अलंकार सभी की दृष्टि से प्रयोगों की एक लम्बी शृंखला है। साहित्य के विकास के मूल में प्रयोग ही प्रयोग है।

गन महायुद्ध के उपरान्त और विरोधतया स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से, प्रमुखतः प्रगतिवाद की मकीर्ण काव्यशैली की प्रतिक्रिया में हिन्दी में नये-नये प्रयोग किये जाने लगे हैं। परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही आ उपस्थित हुई हैं जैसी कि सन् '१७ के बाद थी देश, समाज, धर्म, संस्कृति, मानव, व्यक्ति के सम्बन्ध में नये प्रश्न, नये परिप्रेक्ष्य, नये मूल्य, नये सत्य आ खड़े हुए हैं। "प्रयोगशील कविता में नये सत्यो या नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है, उन सत्यों के माथ नये रागात्मक सम्बन्ध भी, और उनको पाठक तथा महदय तक पहुँचाने यानी माधारणीकरण करने की शक्ति भी है"—(धत्तेय)। द्वितीय महायुद्ध के समय में ही कुछ जागरूक साहित्यकारों ने राजनैतिक और सामाजिक स्थिति में अग्रतम का अनुभव किया। निराला ने अपनी अमृतुष्टि को 'कुवतुरमुता' और 'नये पत्ते' के माध्यम से अभिव्यक्त किया। यहाँ से नई कविता का आरम्भ माना जाता है। 'प्रतीक', 'तार सप्तक' और 'दूमरा तारसप्तक' ने इस प्रवृत्ति को उभारा और भाव-भाषा-शैली के प्रयोगों का स्पष्टीकरण किया।

इधर ध्यानावाद और प्रगतिवाद की भारतीय जन-जीवन की उपेक्षा के प्रति

चिता और यौग प्रगट की गई। छायावाद ने वस्तुजगत् को भुताकर भावजगत् को और 'सर्वनीरुक्तता के स्थान पर वैयक्तिकता' को अपनाया। "उसने वास्तविकता से आत्ममिचौनी खेलकर स्वप्न तथा भाशा की सृष्टि की, एक कल्पना का सौंदर्य-पट बुना।" "नयी कविता ने मानव-भावना को छायावादी सौंदर्य के घडवने हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन-समुद्र की उत्तल लहरों में पेग भरने को छोड़ दिया है, जहाँ वह साहस के साथ मुख-दुःख, भाशा-निराशा के घात-प्रतिघातों में बढ़ती हुई युग-जीवन के आँधी-तूफानों का सामना कर मके। नयी कविता विश्व वर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा भाज के प्रत्येक पल बढ़ते हुए युग पट को अपने भुवत् छदों के सकेतों की तीव्र-मन्द गति-लय में अभिव्यक्त कर, युग-मानव के लिए नवीन भावभूमि प्रस्तुत कर रही है।"—पन्त।

इस नई कविता को प्रयोगवाद का नाम दिया गया है, पर यह कोई बाद नहीं है। हम धारा के प्रवर्तक भी इसे इस नाम से अभिहित करना नहीं चाहते। मत हम भी इसे 'नई कविता' कह कर इसका विवेचन करेंगे।

नई कविता का आरम्भ सन् १९४३ में 'तारसन्तक' के प्रकाशन के साथ माना जाता है। सन् १९४७ में 'प्रतीक' नामक पत्रिका के अंकों में इसका और अधिक परिचय मिला। सन् '५१ में दूसरा तारसन्तक प्रकाश प्रमूख रचनाएँ में छाया। पटना से प्रकाशित 'दृष्टिकोण' और 'पाठन', रायनऊ की 'युगचेतना' एवं प्रयाग से प्रकाशित 'नयी कविता' और 'निरप' वा नई कविता को प्रोत्साहित करने में बड़ा हाथ है।

अजय—इत्यलम्, बाबरा अहेरी, हरी पास पर क्षण भर, प्रियकु।

कुंभारनाथ—चयःपूह।

केशवनाथ मिह—कुटकर कविताएँ।

गजानन माधव मुक्तिश्रीव—कुटकर।

गिरिजागुप्त माधुर—मजीर, धून के धान।

अगदीश गुप्त—नाय के गीत।

जानकी कानन शास्त्री—रूप और धर्म।

दुष्मन्त कुमार त्यागी—गूरज का स्वागत।

धर्मश्रीर भार्गवी—उठा नौका, तीन गीत वपे।

नगेन मेहता—कुटकर कविताएँ।

बल्लभ—अजय-कविता।

वानरुष राय—रान योनी।

नरानोप्रसाद मिश्र—गो-फिरोज, आदि।

प्रयागनारायण त्रिपाठी—फुटकर कविताएँ

भारतभूषण अग्रवाल—मुक्ति-ग्रन्थ ।

मदन वात्मायन—फुटकर कविताएँ ।

महेन्द्र भटनागर—नारों के गीत, ददनना युग ।

रघुशंकर महाय—फुटकर कविताएँ ।

सरमोचान्त वर्मा—पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ ।

राजेश्वर किशोर—विविधा ।

विजयदेव नारायण साहू—पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विविध कविताएँ ।

रवीन्द्र भ्रमर—फुटकर कविताएँ ।

गम्भीरनाथ सिंह—दिवालोके ।

गमरीर बहादुर सिंह—पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ ।

मवेदवरदयाल सक्सेना—फुटकर कविताएँ ।

फुटकर कविताओं के लिए देखिए 'आधार' वाग्यई, 'नयी कविता', इलाहाबाद, 'अव्यक्तिका' पटना, 'पाटल' और 'तारसप्तक' आदि ।

नई कविता एक ओर हिन्दी काव्य की समस्त परंपराओं का समाहार और समन्वय है तो दूसरी ओर नई परंपराओं की जीव रखने का प्रयास है । इनमें विषयबस्तु, भाव, कला, और सत्र को मावधानी के साथ सन्तुलित वाच्यशैली रूप में रखने की चेष्टा है । द्विवेदी युग की कविता में जननाधारण का मत्व तो था, पर लोक-रसि की कला नहीं थी । छायावाद में कला आई तो जनमाधारण का मत्व छूट गया । प्रगतिवाद सामाजिक चेतना को लेकर चला अवश्य, पर अन्ततः एक राजनैतिक नारा बन कर रह गया । नई कविता प्रगतिवाद का एक उदार, चेतन, बौद्धिक और सर्वथा नया रूप है । यह एक अधिक बमबर्ती प्रेरणा है जिसकी ओर सत्र प्रगतिवादी कवि नी—नागार्जुन, गमरीर बहादुर, नरेन्द्र मेहता, प्रभाकर माचवे, आदि—सूके हुए हैं । इस में विषयबस्तु, अनुभूति, प्रवृत्ति और कला की नवीनता तो है ही, साथ में व्यक्ति और समाज, बुद्धि और कल्पना, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावना का सामंजस्य भी है । इस में प्रगतिवादियों का समाज भी है और छायावादियों का व्यक्ति भी उभर कर आया है । प्रगतिवादी धारा ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य को दबाकर समाज-कल्याण की चिन्ता की, लेकिन व्यक्ति-स्वातंत्र्य सम्पन्न प्रगति का मूलधार है—यह पुढोत्तर युग की माँग है । कुछ समीक्षकों को लगता है कि वैयक्तिकता पर अधिक बल देकर नई कविता ने अहंकार, आत्मप्रकाशन और वैविध्य-विषयन को प्रोत्साहित करके आत्मोन्नति को डेग पट्टेबाई है । हमारी परंपरा में कवि ने अपने को मान्यता नहीं दी थी ।

नई कविता के विषय भारत की सीमाओं में परिवर्द्ध नहीं। प्रायः लोग इस प्रवृत्ति को पश्चिमी प्रभाव का फल मानते हैं और इलियट-मार्सेट की शैली का अनुकरण कहते हैं। किन्तु, वास्तविकता यह है कि आज का मानव सम्पूर्ण विद्वद और मानवता के प्रति अधिक जागरूक दिखाई देता है।

नई कविता सौन्दर्यबोध के नये धरातल और नये अनुभव-क्षेत्र प्रस्तुत करती है। वह मानव जीवन के बदलते हुए स्तरों को नये मानदण्ड प्रदान करती है। आज का कवि पिटी-पिटार्ई, घिसी-घिसाई लकीर पर नहीं चलना चाहता, वह अपना मार्ग आप निकाल रहा है। लोग उसको उद्धत, भराजक, विद्रोही और अहम्य कहकर निन्दित करते हैं, पर वह अपने प्रति पूर्ण निष्ठावान् है। नई कविता के उद्धान से तीन वर्गों के लोगों को बहुत चिढ़ है—एक वे जो संस्कारबद्ध रुढ़िग्रस्त कविता के उपासक रहे हैं, दूसरे वे जो कविता की छाड़ में राजनीति और साम्प्रदायिकता का प्रचार करते आये हैं और तीसरे वे जिनका औद्धिक स्तर फिल्मी गीतों की रुचि से हीन बना है। एक बात यह भी है कि प्रायः आलोचक नई कविता के उन वेदाहरणों को सामने रखते हैं जो भारम्भिक अवस्था में हैं। उनका भाव भी अस्पष्ट है और प्रभाव भी नहीं है, जैसे

मेरे सपने इस तरह टूट गये  
जैसे भुंजा हुआ पापड़।

प्रथमा

अगर कहीं मैं होता तोता !  
तो क्या होता ?  
तो क्या होता,  
तोता होता !

इत्यादि

य कविताएँ निश्चय ही सुन्दर नहीं हैं। अनेक कवि जीवन-सिद्धान्त, मानव चेतना और 'नयी कविता' के वादों की व्याख्या में भी कविताएँ लिखते हैं। नव ऐसा लगता है कि वे कविता का दुरुपयोग करते हैं और उमे अपने 'ग्रह' का माध्यम बना देते हैं। जैसे—

करने को मट्ट कुत्त है

बहते नहीं यनता।

(राजेन्द्र विशोर)

हमें किसी बलिपत कजरता का मोह नहीं।

(धर्मेय)

टूट गया मैं

मुझे क्या ने तोड़ दिया ॥

(प्रयागनारायण त्रिपाठी)

हम छोटे नये लोग  
सोनों के पीछे पागल हूँ ।

(पुरुषोत्तम खरे)

बोमबों सदी की जटिल समस्याओं ने मुझे उत्पन्न किया ।

(राजेन्द्र विश्वर)

कनी-कमी इन कविताओं में ऊँचे-ऊँचे नारे लगाये जाते हैं—‘कर्मरत ही, स्वप्न मन देखो’ । कनी-कमी इतिवृत्तात्मकता खटकने लगती है, जैसे भारत-भूगण और गिरिजाकुमार माधुर की कविताओं में । ऐसी कविताएँ किन्हीं-किन्हीं को नीरस, प्राणहीन और निच लगती हैं ।

इस तरह के आरम्भिक प्रयोग वस्तुगन न होकर गैलीगन थे—नये उपमानों की चाह में वे हास्यास्पद भी हो गये । लेकिन धीरे-धीरे काव्य-वस्तु में उन्नत और अभिव्यक्ति में नितार आना आ रहा है । आज भी नई कविता अपनी मजल पर नहीं पहुँची । दूसरी बात यह भी है कि नई कविता के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, वह सब न तो काव्य है और न ही इस प्रवृत्ति का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करता है ।

नई कविता अपनी शैली, छंद-रचना, रस-अलंकार योजना, भाषा और अभिव्यक्ति की रीति में बिलकुल नई है । आज का कवि मानना है कि काव्य के पिते-पिते परम्परागत शब्दों में न प्रेषणीयता रह गई है, न प्रश्रिया प्रभाव । वह नये-नये शब्दों की खोज में रहता है । उसके लिए भाषागत कोई भी बाधन नहीं है—वह अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, बोलचाल की हिन्दी अथवा ग्राम्य भाषा का यथावसर प्रयोग करने में संकोच नहीं करता है । जैसे,

१. हम कुँज-कुँज यमुना तीरे

—भक्तेश्वर

२. गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग तरदाई  
मितारों की जलन से बादलों पर भाँव बब छाई ।

—भारती

३. कुछ और डिजाइन भी है, ये इल्मी—  
पह लोखे चलती चौड, नयी फिस्मी  
हूँ भीत बेचना बेते बिलकुल पाप  
क्या करूँ, अगर साधार हारकर  
भीत बेचता हूँ ।

—अशानीप्रसाद मिश्र





हम छोटे नये लोग  
छोड़ों के पीछे पागल हैं ।

(पुरयोत्तम खरे)

बीसवीं सदी की जटिल समस्याओं ने मुझे उत्पन्न किया ।

(राजेन्द्र किशोर)

कभी-कभी इन कविताओं में ऊँचे-ऊँचे नारे लगाये जाते हैं—'कर्मरत हो, स्वप्न मत देखो' । कभी-कभी इतिवृत्तात्मकता खटवने लगनी है, जैसे भारत-भूयण और गिरिजाकुमार मायुर की कविताओं में । ऐसी कविताएँ किन्हीं-किन्हीं को नीरस, प्राणहीन और निच लगनी हैं ।

इस तरह के आरम्भिक प्रयोग वस्तुगत न होकर ध्वनीगत थे—नये उपमानों की चाह में ये हास्यास्पद भी हो गये । लेकिन धीरे-धीरे काव्य-वस्तु में उभार और अभिव्यक्ति में निखार आता जा रहा है । आज भी नई कविता अपनी गजिल पर नहीं पहुँची । दूसरी बात यह भी है कि नई कविता के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, वह सब न तो काव्य है और न ही इस प्रवृत्ति का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करता है ।

नई कविता अपनी शैली, छंद-रचना, रम-प्रलकार योजना, भाषा और अभिव्यक्ति की रीति में बिलकुल नई है । आज का कवि मानता है कि काव्य के धिसे-पिटे परम्परागत षध्दों में न प्रेयणीयता रह गई है, न प्रिया प्रभाव । वह नये-नये शब्दों की खोज में रहता है । उसके लिए भाषागत कोई भी बधन नहीं है—वह अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, बोलचाल की हिन्दी अथवा ग्राम्य भाषा का यथावसर प्रयोग करने में संकोच नहीं करता है । जैसे,

१. हम कुंज-कुंज यमुना तीरे

—प्रमोद

२. गुनाहों से कभी घेली हुई बेदाम तरनाई

सितारों की जलन से बादलों पर आँव कम आई ।

—भारती

३. कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इत्मी—

यह सीजे चलती खोज, नयी फिल्मों  
हैं गीत बेचना बैसे बिलकुल पाप  
क्या कहें, मगर साचार हारकर  
भीत बेचता हूँ ।

— प्रेमनाथ सिंह

४. राह लहरीली चले हम जा रहे उस पार  
हाथ में गह हाथ, छोड़ जा रहे पथ शीघ्र  
श्रीर कितना श्रीर कितना पथ का अवशेष  
सहपथिक की बीठियों में भरा प्रदल अर्धप  
बिछड़ते थे गाछ, पत्थर मील, बिजली-तार  
सभी का है साथ हम पर, सभी का आभार ।

—प्रमोद गुप्त

नवमी का चांद धुआ

हवा रही उल

—दाम्भूनार्यासिंह

इन प्रयोगों में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियों का रहना स्वाभाविक है, लेकिन यह भाषा को जा गऊती है कि समय पाकर इन में निखार आयेगा । यह निखार दृष्टिगोचर भी होने लगा है ।

प्रत्येक कवि वर्तमान शब्दों को नये अर्थ देने में प्रवृत्त है । वे अनुभव करते हैं कि भाषा जब भाव को व्यक्त करने में असमर्थ होती है तो नये शब्द चलाना तो सम्भव नहीं होता, प्रचलित शब्दों को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जा सकता है ।

नई कविता में उपमान-योजना का निरालापन है । उस में हंस, कमल, चकोर, चन्द्रमा आदि में सम्बन्धित कवि-समयों और रुढ़ उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का अभाव-सा है और व्यापक जीवन के जाने-पहचाने उपमानों का प्रयोग अधिक है ।

१. लुप्त गये बीठियों के पपड़े वाले द्वार

२. चांदनी उस रुपये सी है जिस में

अमक है पर अनक घायब है ।

३. यातना की घोर अंधी तहो में

४. क्यों इस धौनस से तन का

लुप्त को धारण ।

५. यर्मामोटर के पारे सी

छुपचाप भावनाएँ चढ़ती हैं उतरती हैं ।

६. प्राणों पर ज्वालागिरि, पत्तों पर सिन्धु सदा ।

७. मुंद रहे से पत्तक धातों में भरी उन्माद की मिथता

दूध सी दूध कर नियाहें हो रहीं दुहरी :

अङ्गुलीय पत्तियों सी यातनाओं के

कंटोसे अंग निखरे हैं ।

आज गीत की रचना आवश्यक नहीं मानी जाती । युग बदल गया है । पक्की चलाने के साथ तो गीत का सम्बन्ध हो सकता है, पर टाइपराइटर चलाने समय गीत नहीं गाया जा सकता । बैनगाड़ी पर बैठे या हल चलाने समय गीत बन सकता है, पर मोटर-नारी या ट्रैक्टर चलाने में गीत गाने का मजा नहीं है । आज का बुरा गीत कम गाता है । गीत की इन मिनेमा-फिल्मों ने बहुत बदनाम कर दिया है । सम्मेलनों गायकों ने कविता के नाम पर 'दहृत अच्छे', 'बाह-बाह' में गा-गा कर काव्य को बदनाम कर दिया है । इसीलिए नई कविता में गीतों का अभाव-ना है । परन्तु यह कहना ठीक न होगा कि नई कविता में लय ही नहीं है ।

नई कविता छंदमुक्त कविता है । इस से कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह काव्य न होकर गद्य ही है । भगवतीचरण वर्मा का कहना है कि "मुक्त छंद की कविता को अधिक से अधिक में गद्य-काव्य मान सकता हूँ, कविता नहीं ।" किन्तु उनके इस कथन ही में विरोध है । वे इसे काव्य मानते हैं, कविता नहीं । नये कवियों का भी यह कहना है कि कविता और पद्य में अन्तर है । न तो सब पद्य काव्य है और न ही सब काव्य पद्य हो सकता है ।

इस युग के कवि रस के चक्कर में नहीं पड़ते । वे प्रेयशीयता (अथवा प्रभाव) पर अधिक बल देने हैं ।

काव्य की दृष्टि से और कला की दृष्टि में अनेक सुन्दर कविताएँ निम्नी गई हैं । अब नई कविता आरम्भिक स्थिति में निवसकर बड़े प्रौढ़ और परिपक्व रूप में विद्यमान है । अभी इस का भविष्य उदाहरण देखने की है, अतः यहाँ थोड़े से उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा—

( १ )

यह वह विश्वास नहीं जो अपनी सपना में भी काँपा  
वह पीड़ा, जिसकी गहराई की स्वयं उसी ने नापा  
कुस्ता, अपमान, अवज्ञा के धुंधलाते बड़बे तम में  
यह सदा-द्रवित, चिर जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,  
उलसम्ब-बाहु, यह चिर-प्रसन्न अपनाया ।  
जिज्ञा, प्रबुद्ध, सदा यद्गामय  
इसको ? भवित को दे दो ।

(अन्तेय)

आप को 'नई कविता' का प्रवर्तक माना जाता है । बहुतों की आपसी हृदियों में वाद अधिक मिलना है और मार्मिकता कम ।

( २ )

जीवन है कुछ इतना विराट इतना व्यापक  
 क्षम में है सब के लिये जगह सब का महत्त्व  
 ओ भेजों की कोरों पर भाषा रस कर रोने वाले  
 यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सब का है  
 सब ने पाया है प्यार, सभी ने खोया है  
 सब का जीवन है भार  
 और सब जीते हैं ।

(समंवीर भारती)

भारती प्रतिभा-सम्पन्न और निष्ठावान् कवि हैं। नई कविता के इतिहास में छाप का स्थान गण्यमान रहेगा। छापकी कविताओं में नई कविता के विरोधियों को भी रस की प्राप्ति हो जाती है।

( ३ )

मैं आज भी जिन्दा हूँ  
 उस हस्ताक्षर की भाँति  
 जो मझाक मझाक में यों ही किसी घटवृक्ष के नीचे  
 पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था  
 एक तेज धार वाले फौलाद की नोक  
 छाय भी मेरी छाती में गड़ी है  
 और उस घटवृक्ष का घायल सीना  
 उस बाण की रक्षा हर मौसम में करता है  
 दिल्ली हुई पणड़ी पर छाल चढ़ जाती है,  
 दुधिमारे पत्तों में बात बस जाती है,  
 जटाएँ भी झुकती हैं भूतल छूती है  
 घरवाहे की बंशी की टेर भटक जाती है  
 अगर  
 एक में हूँ : फौलाद की खाती लिये  
 जीता हूँ—

मैं आज भी जिन्दा हूँ ।

(समोबान्त वर्मा)

समोबान्त बड़े विद्रोही और आन्विवादी कवि हैं। उनकी कविता में मोक्ष तो है, पर वही-कही शिथिलता भी आती है।

( ४ )

अलवार के बेकार टुकड़ों की तरह ही उड़ रहे विश्वास  
हलका पड़ रहा अस्तित्व  
तिनकों की तरह लाचार भटके जा रहे विश्वास  
जीवन मूक उड़ता जा रहा  
जाने कहीं किस ओर  
हृदय का हर एक कोना सनसनाहट से रहा भर  
ओर मन की खिड़कियों का हर किवाड़ा—  
फड़फड़ाता पंख जंता  
किसी हस्तके क्षीण बादल ना  
कल्पना के शीश पर आँचल नहीं टिकता ।

(जगदीश गुप्त)

आप ब्रजभाषा में रुढ़ कविता और खड़ी बोली में सर्वथा रुढ़िमुक्त कविता  
लिखते हैं । आपकी भाषा परिमार्जित और भाव स्पष्ट होते हैं ।

( ५ )

खण्ड खण्ड होकर जिसने  
जीवन बिय दिया नहीं  
मुलमय सम्पन्न भर गया जो जग में आकर  
रित रित कर लिया नहीं  
उसकी भीलकता का दम्भ निरा मिथ्या है  
निष्कल सारा कृतित्व  
उसने कुछ किया नहीं ।

(दुष्यंतकुमार)

नवयुवक कवियों में आपने विशेष ख्याति प्राप्त की है ।

( ६ )

बादल को हक दो—वह हर नन्हें पौधे को छाँह दे, दुसारे,  
फिर रेशे-रेशे में हल्की हल्की सुरधनु की पत्तियाँ लगा दे,  
फिर कहीं भी, कहीं भी गिरे, बरसे, घहरे, टटे—  
धुक जाये—  
नये बादल के लिये !  
डगर को हक दो—वह कहीं भी, कहीं भी, किसी  
वन, पर्वत, खेत, गली-माँव-चौहटे जाकर  
सीप दे धकन अपनी,

( २ )

जीवन है कुछ इतना विराट इतना व्यापक  
 उस में है सब के लिये जगह सब का सहस्व  
 ओ भेड़ों की कोरों पर माया रख कर रीने वाले  
 यह ध्वं तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सब का है  
 सब ने पाया है प्यार, सभी ने खोया है  
 सब का जीवन है भार  
 और सब जीते हैं ।

( धर्मवीर भारती )

भारती प्रतिभा-सम्पन्न और निष्ठावान् कवि है । नई कविता के इतिहास में भाष का स्थान गण्यमान रहेगा । भाषकी कविताओं में नई कविता के विरोधियों को भी रस की प्राप्ति हो जाती है ।

( ३ )

मैं भ्राज भी जिन्दा हूँ  
 उस हस्ताक्षर की भाँति  
 जो मज्जाक मज्जाक में यों ही कितो बटबुझ के नीचे  
 पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था  
 एक तेज धार वाले फौलाद की नोक  
 अब भी मेरी छाती में गड़ी है  
 और उस बटबुझ का घायल सीना  
 उस दाघ की रक्षा हर मौसम में करता है  
 टिली हुई पपड़ी पर छाल चढ़ जाती है,  
 दुधियारे पत्तों में घात घस जाती है,  
 जटाएँ भी झुकती हैं भूतल छूती हैं  
 खरवाहे की बंशी की देर भटक जाती है  
 अगर  
 एक में हूँ : फौलाद की घाती लिये  
 जीता हूँ—  
 मैं भ्राज भी जिन्दा हूँ ।

( लक्ष्मीकान्त वर्मा )

लक्ष्मीकान्त बड़े विशेषी और नान्तिवादी कवि हैं । उनकी कविता में मोड़ तो है, पर कहीं-कहीं निधिलता आ जाती है ।

( ४ )

अलवार के बेकार टुकड़ों की तरह ही उड़ रहे विश्वास  
हलका पड़ रहा अस्तित्व  
तिनकों की तरह लावार भटके जा रहे विश्वास  
जीवन सूक उड़ता जा रहा  
जाने कहीं किस ओर  
हृदय का हर एक कोना सनसनाहट से रहा भर  
ओर मन की लिङ्कियों का हर किवाड़ा—  
फड़फड़ाता पंख जैसा  
किसी हलके क्षीण बादल सा  
कल्पना के शीश पर आँवल नहीं टिकता ।

(जगदीश गुप्त)

आप ब्रजभाषा में रुद्र कविता और खड़ी बोली में सर्वथा रुद्रिभूक्त कविता लिखते हैं । आपकी भाषा परिमार्जित और भाव स्पष्ट होते हैं ।

( ५ )

खण्ड खण्ड होकर जिसने  
जीवन बिप विषा नहीं  
मुखमय सम्पन्न मर गया जो जग में आकर  
रिस रिस कर जिया नहीं  
उसकी मौलिकता का दम्भ निरा मिथ्या है  
निष्फल सारा कृतित्व  
उसने कुछ किया नहीं ।

(दुष्पंतकुमार)

नवयुवक कवियों में आपने विशेष ख्याति प्राप्त की है ।

( ६ )

बादल को हक दो—वह हर नन्हें पीपे को छाँह दे, दुतारे,  
फिर रेते-रेते में हल्की हल्की मुरझानु की पत्तियाँ लगा दे,  
फिर कहीं भी, कहीं भी गिरे, बरसे, पड़े, टटे—  
धुक जाये—  
नये बादल के लिये !  
बगर को हक दो—वह कहीं भी, कहीं भी, किसी  
वन, पर्वत, खेत, गली-गाँव-बोहटे जाकर  
सीप दे पवन अपनी,



बाहें अपनी—

नयी रंगर के लिये ।

भाटी को हक दो वह भीजे, सरसे, फूटे, धँधुधाय,

इन मेड़ों में लेकर उन मेड़ों तक धाये,

घोर कभी हारे,

(यदि हारे)

तब भी उसके भाये पर हिले

घोर हिले,

घोर उठती हो जाये—

पह दूध की पताका—

नये मानव के लिये ।

(कैदारनाथ सिंह)

खड़ी बोली में ग्रामीण प्रयोग करने वाले अनेक कवियों में आप की भाषा अधिक सुसज्जित और परिष्कृत रहती है । इस में आप की कविता प्रसादगुण-गम्पन्न होती है ।

( ७ )

हँ मुझे स्वीकार

मेरे घन, अकेलेपन, परिस्थिति के सभी काँटे ।

ये दमोघी हृद्भिर्घा

हर दाह में तप लें,

न जाने कौन देवी आसुरी संचर्य जाकी हो अभी,

जिस में तपायी हृद्भिर्घा मेरी

मशखी हों ;

न जाने किस घड़ी की रैन में मेरी

करोड़ों त्याग के धावन

विमयी हों ;

जिसे मैं आज सह लूँ

बल यी देखते हो जाये,

न जाने कौन सा उत्सर्ग

बड़ अमरत्व हो जाये ।

(कुँवरनारायण)

नई कविता के अग्रणी कलापारो में अनेक नाम आते हैं । उन का ऊपर बड़े आदर में उल्लेख कर दिया गया है । यही उन सब की कविताओं के उदाहरण ज़ना गम्भय नहीं है । इन में कौन-कौन इस रात पर चलते रहेंगे—यह तो भविष्य ही बताएगा ।

